विजय

संपादक

सर्वप्रथम देव-पुरस्कार-विजेता

श्रीदुलारेलाल

(सुधा-संपादक)

गंगा-पुस्तकमाला का १६२वाँ पुष्प

विजय

(द्वितीय भाग)

लेखक
श्रीप्रतापनारायण श्रीवास्तव
बी० ए०, एल्-एल्० बी०
(बिदा, विकास, आशीर्वाद आदि के यशस्वी लेखक)

मिलने का पता—
गंगा-ग्रंथागार
३६, लाटूश रोड
लखनऊ

द्वितीयावृत्ति

सजिल्द ३॥)] सं० २००० वि० [सादी २॥)

प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

(१०)

माता के स्नेह ने, पिता के आदर ने, भाई के प्यार ने, दार्जिलिंग की शीतल वायु ने और हिमालय के आशीर्वाद ने रानी मायावती के व्याकुल मन को किंचित् शांति प्रदान की। कुचला हुआ उत्साह करवट बदलकर उठने का आयोजन करने लगा, और रानी किशोरकेसरी के उपचार से वह चैतन्य होकर मुस्किराने लगा। वह सदैव मायावती को अपनी आँखों के सामने रखतीं, और एकांत में बैठकर ख़याली पुलाव पकाने का अवसर न देतीं।

रानी किशोरकेसरी ने अभी तक राजा प्रकाशेंद्र के संबंध में कोई बातचीत नहीं की थी। यद्यपि उनसे मायावती ने कुछ नहीं कहा था, फिर भी उसके भावों से और रेणुका की ज़बानी उन्हें सब हाल मालूम हो गया था। मायावती की दशा देखकर उन्हें यह भी ज़ाहिर हो गया था कि रूपगढ़ का भावी उत्तराधिकारी उसके गर्भ में है, केवल इस विश्वास ने उनकी बहुत-सी चिंताएँ दूर कर दी थीं। वह उस घड़ी की प्रतीक्षा कर रही थीं, जब मंगल-गीत गाकर उस उत्तराधिकारी का स्वागत करने का अवसर मिलेगा।

दोपहर का समय था। राजा भूपेंद्रकिशोर भोजन के उपरांत आराम कर रहे थे। लखनऊ से लाया हुआ ख़मीरा चिलम में जलकर अपनी मनोहर सुगंध से कमरे को सुरभित कर रहा था। उनकी आँखें बंद थीं—वह किसी सोच में लीन थे। इसी समय रानी किशोरकेसरी ने अपने हाथ में पानों की डिब्बी लिए हुए प्रवेश किया। राजा भूपेंद्रकिशोर अपने नेत्र बंद किए लेटे रहे।

रानी किशोरकेसरी ने उनकी ओर देखते हुए कहा—"क्या सो गए ?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने आँखें बंद किए हुए कहा—"नहीं, जागता हूँ।"

रानी किशोरकेसरी ने दो पान निकालकर देते हुए कहा—"पान खाओगे ?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने वैसे ही आँखें बंद किए हुए कहा—"तुम खाओ, मेरा मन नहीं है।"

रानी किशोरकेसरी का माथा ठनका। उन्हें मालूम हुआ कि आज कोई विशेष घटना हुई है, जिससे वह इस प्रकार मौन हैं। यह राजा भूपेंद्रकिशोर का स्वभाव था कि जब कोई विशेष घटना घट जाती, तो चुपचाप उस पर घंटों सोचा करते। जिस प्रकार आँधी आने के पहले प्रकृति शांत हो जाती है, उसी प्रकार राजा भूपेंद्रकिशोर का क्रोध प्रकट होने के पहले अद्भुत रूप से गंभीर हो जाता था। रानी किशोरकेसरी कुछ चिंतित होकर उनकी ओर देखने लगीं। राजा भूपेंद्रकिशोर आँखें बंद किए लेटे रहे।

रानी किशोरकेसरी ने एक कुरसी पर बैठते हुए कहा—"क्या बात है ?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने उठकर बैठते हुए कहा—"बात क्या है, तुम्हारे साध के जमाई का पत्र आया है। न-मालूम तुमने कहाँ से ऐसे नराधम को ढूँढ़कर अपना जमाई बना लिया। तुमने मेरी सलाह न ली, मेरा मत नहीं लिया, और स्वेच्छा से ऐसी ज़िम्मेवारी का काम कर उठाया। क्या तुम्हारे गंदे दिमाग़ में यह ख़याल कभी आया था कि यह बंदर हमारी सोने की पुतली माया के लायक़ नहीं है ? तुम यह कहाँ से सोच सकतीं ? तुमने दुनिया देखी नहीं, घर के बाहर कभी पैर उठाकर रक्खा नहीं, फिर कैसे तुम्हारे विचार विशद

हों, कैसे तुम्हारा ज्ञान बढ़े। कूप-मंडूक की भाँति अपने ही विचार में तुम उच्च हो। तुमने मेरी माया का जीवन नष्ट कर दिया है, और इसकी ज़िम्मेवार तुम हो।"

रानी किशोरकेसरी ने शांत स्वर में कहा—"आख़िर बात क्या है, कुछ कहो तो।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने अपने सिरहाने से एक पत्र निकालकर देते हुए कहा—"पढ़ो, अपने जमाई का ज़रा पत्र तो पढ़ो, तुम्हें आप मालूम हो जायगा, तुम्हारे देवता-जैसे जमाई क्या लिखते हैं। सुनो, मैं पढ़ता हूँ।"

राजा भूपेंद्रकिशोर राजा प्रकाशेंद्र का पत्र पढ़ने लगे—

"आप उस दिन अचानक आए, और मुझसे बिना कोई बात पूछे अनधिकार रूप से मेरी स्त्री को बहकाकर ले गए। इसके लिये मैं आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ, क्योंकि आपके इस कार्य से हम लोगों का मनोमालिन्य आगे नहीं बढ़ा। आपने आते ही मेरे प्रति जो सम्मान प्रदर्शित किया, जिन-जिन आदर-सूचक शब्दों का—मसलन चोर, पापी, नराधम वग़ैरा-वग़ैरा—व्यवहार किया, उससे मेरी मर्यादा में बिलकुल फ़र्क़ नहीं आता, बल्कि वह आपकी भलमनसाहत और अशराफ़ियत के ज़बरदस्त नमूने के रूप में सभ्य संसार के सम्मुख पेश किया जायगा।

"आपने मेरे सामने दो पिस्तौलें रखकर मुझे द्वंद्व-युद्ध के लिये ललकारा, और उस समय मेरी हिचकिचाहट देखकर आपने मुझे कायर समझा, और बुरा-भला कहा। मैं आपको यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं कायर नहीं। आपको पिता-तुल्य जानकर ही मैंने वह हिचकिचाहट दिखलाई थी। यदि अब भी आपके मन में यह इच्छा है, तो मैं आपका चैलेंज स्वीकार करता हूँ। समय और स्थान निर्दिष्ट करके सूचना दें, मैं द्वंद्व-युद्ध के लिये सेवा में उपस्थित

होऊँगा। परंतु इतना कह देना आवश्यक है कि भारत में यह द्वंद्व-युद्ध क़ानूनी क़रार नहीं दिया जा सकता, और इसकी सज़ा—जो दो में से एक को मिलेगी—फाँसी का फंदा ही होगा। इसलिये अगर हम लोग योरप चलकर अपने भाग्य की आज़माइश करें, तो बेहतर होगा। जहाँ तक मुझे मालूम है, फ़्रांस में यह क़ानून विहित है। और अगर वहाँ न भी हो, तो स्विटज़रलैंड में तो है ही।

"अब कृपा कर मुझे अपने विषय में कुछ कहने का मौक़ा दीजिए। मैं चोर किस तरह हूँ? जिन आभूषणों को मैंने अपनी प्रेमिका मिस ट्रूवीलियन (क्योंकि यह भेद तो बिलकुल प्रकट हो ही [illegible]का है) को दिया है, वे रूपगढ़ की संपत्ति हैं, न कि आपकी लड़की [illegible] हाँ, यह अवश्य है कि उन्हें व्यवहार में लाने का अधिका[illegible] दिया गया था। अगर वे आभूषण आपके दिए होते, या किसी प्रकार का 'स्त्री-धन' होते, तो बेशक मैं चोर कहलाता। लेकिन रूपगढ़ और रूपगढ़ की संपत्ति का मैं एकमात्र मालिक हूँ। मुझे यह अधिकार प्राप्त है कि मैं इस संपत्ति का कोई भाग किसी को दे दूँ। इसलिये मैं चोर नहीं कहा जा सकता।

"अब तीसरी बात यह है कि मैंने अपनी स्त्री के साथ विश्वास-घात किया है। हाँ, इस अपराध को मैं स्वीकार करता हूँ। इसे स्वीकार करने से मेरा कुछ नुक़सान नहीं, क्योंकि हिंदू लॉ में एक स्त्री रहते दूसरी से प्रेम करना कोई अपराध नहीं। इसके लिये मैं हिंदू-शास्त्रकारों को हृदय से धन्यवाद देता हूँ। हाँ, मैं यह स्वीकार करता हूँ कि अक्सर अपनी स्त्री को दवा के ज़रिए सुलाकर दूसरी स्त्रियों के साथ ऐश-आराम करने गया हूँ। मैं पुरुष हूँ, और राजा, इसलिये यह मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है कि जितनी स्त्रियों से चाहूँ, संबंध स्थापित करूँ। आप क्या, कोई भी मेरी

इस स्वतंत्रता को हरण नहीं कर सकता, जब तक हिंदू-समाज का यह क़ानून बदला नहीं जाता। मेरे जीवित रहते तो बदला नहीं जा सकता, और मेरे मरने के बाद, अगर बदल भी जाय, तो मेरा कोई नुक़सान नहीं होता।

"मुझे तो अपनी स्त्री की बेवक़ूफ़ी पर हँसी आती है। वह ज़हर-ज़हर कहकर छ-सात दिन तक चिल्लाती रही, और इसी आशंका से वह अपने को एक कमरे में बंद करके पड़ी रही। उसने सरकारी भोजनालय से कोई चीज़ नहीं खाई। उस बेवक़ूफ़ ने यह कभी नहीं सोचा कि मैं उसे क्यों ज़हर दूँगा। मैं तो अपने इच्छानुसार काम बिना ज़हर दिए हुए कर सकता हूँ, फिर व्यर्थ एक ख़ून कर अपने गले में फाँसी का फंदा डालने के लिये आतुर नहीं। और, सबसे ज़्यादा आश्चर्य मुझे यह है कि आप तो ज्ञानी, बुद्धिमान् पुरुष हैं, एक बेवक़ूफ़ स्त्री के कहने से विश्वास कैसे कर लिया!

"ख़ैर, मुझे इन बातों से बिलकुल बहस नहीं। आप और आपकी लड़की जो कुछ सोचें, सोच सकते हैं, मेरा कुछ नुक़सान नहीं। मैं तो आपको हृदय से धन्यवाद देता हूँ कि आपने मेरा रास्ता साफ़ कर दिया, और कई अप्रिय प्रसंगों से मुझे बचा लिया। अंत में मैं यह फिर कह देना चाहता हूँ कि द्वंद्व-युद्ध के लिये हमेशा तैयार हूँ। अगर आप मुझे सूचना न देंगे, तो यह दोष आपका होगा।

"शेष कुशल है। पूजनीय अम्माजी से मेरा सादर प्रणाम निवेदन कीजिएगा, और नरेंद्र को आशीर्वाद।

विनीत—

प्रकाशेंद्र"

रानी किशोरकेसरी पत्र सुनकर अवाक् रह गईं। वह चुपचाप

मंत्र-मुग्ध की भाँति बैठी हुई राजा भूपेंद्रकिशोर का मुँह ताकती रहीं। उन्हें स्वप्न में भी अनुमान न हुआ था कि राजा प्रकाशेंद्र ऐसा पत्र लिखने में समर्थ होंगे। यह पत्र क्या था, एक पापी की अपने पाप-कर्म की आकाश-भेदी स्वर में पाप-घोषणा थी, जैसा आज के पहले किसी ने न देखा, और न सुना था। यह पापी की विजय-भेरी का नाद था, जो रानी किशोरकेसरी को राजा भूपेंद्रकिशोर के सामने लज्जित कर रहा था।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने पूछा—"सुन ली अपने साध के जमाई की कीर्ति-कहानी ?"

रानी किशोरकेसरी ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह उठकर चुपचाप कमरे के बाहर हो गईं। राजा भूपेंद्रकिशोर फिर लेटकर कुछ सोचने लगे। कमरा ख़मीरे की ख़ुशबू से सुरभित होता रहा, लेकिन उन्होंने एक कश भी न खींचा।

(११)

राजा प्रकाशेंद्र के पत्र ने रानी किशोरकेसरी की उद्विग्नता किसी हद तक बढ़ा दी थी। उन्होंने यह अनुमान कभी न किया था कि राजा प्रकाशेंद्र का पतन इतनी शीघ्रता से इतना गहरा हो जायगा। वह न जानती थीं कि पतन के लिये एक क्षण-भर की आवश्यकता होती है—एक क्षण पहले मनुष्य सच्चरित्र होता है, और दूसरे क्षण वह पशु से भी गर्हित हो जाता है। सच्चरित्रता और अध:पतन के बीच में केवल एक सूक्ष्म रेखा है, जिसे उल्लंघन करने में न किसी प्रयास और न समय की आवश्यकता होती है। एक निमेष-मात्र में सब कुछ हो जाता है।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने यह पहले कभी नहीं कहा था कि उन्होंने राजा प्रकाशेंद्र को द्वंद्व-युद्ध के लिये ललकारा था, ऐसा प्रसंग ही न उठा था, और न रेणुका ने ही इस विषय पर कुछ कहा था। इस द्वंद्व-युद्ध का हाल तो उन्हें राजा प्रकाशेंद्र के पत्र से मालूम हुआ, और इस बात ने उन्हें बहुत दुखी और चिंतित बना रक्खा था। श्वशुर-दामाद का युद्ध! यह एक नवीन और अद्भुत बात थी। इस युद्ध में जीत चाहे किसी की हो, हानि उन्हीं की थी। राजा भूपेंद्रकिशोर की हार से उनका सुहाग नष्ट होता था, और राजा प्रकाशेंद्र के निधन से माया विधवा होती थी। वह परिणाम सोचते-सोचते सिहर उठतीं।

मायावती इस दुःखद समाचार से अवगत न थी। वह अपनी दूसरी चिंताओं में विभोर थी। इधर उसकी उमंगें धीरे-धीरे आश्रत हो रही थीं, और वह अनेक उपाय करती कि अपने

पिछले जीवन का दुःखमय अध्याय भूल जाय, परंतु उसकी याद उसे सहसा हो आती थी। शांत होता हुआ बलतोड़ फिर कसकने लगता, और उस समय उसकी सारी उमंगें कुचल जातीं। उमंग का लँगड़ाता हुआ बालक फिर निःशक्त होकर गिर पड़ता।

रानी किशोरकेसरी को चिंतित देखकर मायावती ने पूछा—"बाबा ने क्या कहा? आज इतनी परेशान क्यों हो?"

रानी किशोरकेसरी ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

मायावती ने प्रेम के साथ कहा—"लाओ मा, आज तुम्हारे केश बाँध दूँ।"

यह कहकर वह उनके श्वेत केश खोलने लगी।

रानी किशोरकेसरी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह चुपचाप बैठी रहीं।

मायावती ने बालों की लट खोलते हुए कहा—"तुम आज इतनी गुमसुम क्यों हो?"

रानी किशोरकेसरी ने उत्तर दिया—"नहीं, गुमसुम तो नहीं हूँ। आज मेरा सिर दुख रहा है, इसलिये किसी काम में मन नहीं लगता।"

मायावती ने पूछा—"तो क्या 'क्राफ़ियास्पिरिन' की दो गोलियाँ ला दूँ?"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"नहीं, दवा-ववा कुछ नहीं खाऊँगी।"

मायावती चुप रही। दोनो अपनी-अपनी चिंता में लीन हो गईं। लेकिन मायावती की उँगलियाँ अपनी मा के बाल सुलझाने में व्यस्त रहीं।

रानी किशोरकेसरी ने थोड़ी देर बाद कहा—"क्यों माया,

प्रकाश क्या बिलकुल पशु हो गया है ? मैं तो उसे ऐसा नहीं जानती थी।"

मायावती ने उत्तर दिया—"मैं क्या जानूँ, वह क्या हो गए हैं, लेकिन इतना ज़रूर है कि पहले की तरह वह नहीं रहे।"

रानी किशोरकेसरी ने पूछा—"वह कौन है, जिसे प्रकाश गहने दे आया है ?"

मायावती ने बालों को कंघी से सुलझाते हुए कहा—"मिस ट्रैवीलियन नाम की एक अँगरेज़ राँड़ है, जिसका कुछ पता नहीं कि कौन है, और क्यों लखनऊ आई। वह बड़ी धूर्त है। न-मालूम कैसे उसने अपना प्रभाव भद्र-समाज में जमा लिया है। मैंने भी उसके जाल में फँसकर बहुत रुपया खो दिया है।"

रानी किशोरकेसरी ने उत्सुकता से पूछा—"तुमसे रुपया कैसे ठगा ?"

मायावती ने लज्जित कंठ से कहा—"उसने स्त्रियों के सुधार के लिये एक सभा क़ायम की, जिसमें तुम्हारे जमाई का भी हाथ था, और उसने अपना उल्लू सीधा करने के लिये मुझे उस समाज की सभानेत्री बना दिया। मैं यह रहस्य कुछ समझी नहीं, और वह मुझे लूट-लूटकर खाती रही।"

रानी किशोरकेसरी ने पूछा—"तुमने कितना रुपया ठगाया है ?"

मायावती ने उत्तर दिया—"यही कोई दस-पंद्रह हज़ार।"

रानी किशोरकेसरी ने साश्चर्य कहा—"दस-पंद्रह हज़ार ! यह तो ख़ासी रक़म है। मालूम होता है, 'सोनपुर' गाँव की सारी आमदनी इसी में तुम ख़र्च करती थीं।"

सोनपुर नाम का एक गाँव रानी किशोरकेसरी ने माया को कन्या-दान में दिया था।

मायावती ने जवाब दिया—"हाँ, आज साल-भर से तो ऐसा ही है। अभी भगवान् की कृपा से बिलकुल बाल-बाल बच गई, नहीं तो दस हज़ार रुपया और खो देती।"

रानी किशोरकेसरी ने पूछा—"कैसे?"

मायावती ने जवाब दिया—"मैंने उस सभा का वार्षिक अधिवेशन बड़ी धूमधाम से करना विचारा था, इसलिये उसके लिये दस हज़ार रुपया मैंने अपने पास से देना निश्चय किया था।"

रानी किशोरकेसरी ने पूछा—"क्यों माया, वह कैसी सभा थी?"

मायावती ने उत्तर दिया—"उसका उद्देश्य था महिला-समाज में जागृति उत्पन्न करना।"

रानी किशोरकेसरी ने अनजान की भाँति कहा—"कैसी जागृति?"

मायावती कहने लगी—"यही कि स्त्रियों और पुरुषों के समान अधिकार होने चाहिए, और स्त्रियों का परदा उठाकर समाज में उन्हें बराबरी का स्थान मिलना चाहिए।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"एक मलेच्छी राँड़ ऐसी ही बातें तो सिखलाकर हमारा धर्म भ्रष्ट करेगी। तुम नौजवान छोकरियों के सामने जहाँ किसी ने मीठे-मीठे शब्दों में कुछ तुम्हारे मतलब की बातें कहीं कि फ़ौरन् उसके जाल में फँस गई। अँगरेज़ी पढ़-लिखकर तुम लोग अपना इहलोक और परलोक, दोनो बिगाड़ रही हो। तुम नहीं जानतीं कि हमारा वैदिक समाज परमोन्नत समाज है, जिसमें कलह नहीं, बराबरी का दावा नहीं; सतत निःस्वार्थ सेवा है। पति हज़ार कुमार्गगामी हो जाय, लेकिन अगर हिंदू-स्त्रियाँ धैर्य, सेवा और सहनशीलता से काम लें, तो उनका बिगड़ा हुआ पति रास्ते पर आ जाता है। पति को वश में करने का मूल-मंत्र सेवा है। तुम अपने बाबा को देख लो। मेरे और उनके बीच में बहुत वैमनस्य था, लेकिन मैंने उनका कभी विरोध

नहीं किया, उनके आदर-सत्कार में, सेवा में कभी कुछ अंतर नहीं पड़ने दिया। उसका फल भी देख लो। हमारे और उनके बीच में कोई गाँठ नहीं। यह जान लो कि जो राह छोड़कर कुराह जाता है, उसे कभी-न-कभी अनुताप ज़रूर पैदा होता है, और जब अनुताप पैदा होता है, तब उसका सुधार होते देर नहीं लगती। हिंदू-समाज में स्त्रियाँ तो पुरुषों से भी ऊँची हैं। देखो, स्त्री के रूप में ही संसार की शक्ति प्रकट हुई है। यह विरोध की अग्नि जो नव-शिक्षा-प्राप्त छोकरियाँ भड़का रही हैं, इसमें उनका सारा सुख, जीवन का आनंद, स्वाहा हो जायगा। स्त्री का पति के प्रति अविश्वास उत्पन्न होगा, और पति का स्त्री के प्रति। नतीजा यह होगा कि कलह और मनोमालिन्य निरंतर बढ़ता जायगा, तथा जीवन भार-स्वरूप हो जायगा।"

मायावती ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह उनके बाल बाँधती रही।

रानी किशोरकेसरी ने फिर कहना शुरू किया—"देखो, हिंदू-समाज ने घर को दो भागों में विभक्त किया है—एक भीतरी भाग और दूसरा बाहरी भाग। घर का भीतरी हिस्सा तो पत्नी के अधिकार में दिया है, और बाहरी हिस्से का स्वामी पति है। एक को दूसरे से प्रयोजन नहीं। धनोपार्जन करना, परिश्रम करना और व्यापार आदि कर्म करना पुरुषों के हिस्से में आया है। पालन-पोषण करना, गृहस्थी-जन्य काम करना और पुरुष को शांति, ममता, माया तथा सेवा से संतुष्ट करना स्त्रियों का धर्म है। बाहर से लक्ष्मी उपार्जन कर ख़र्च करने के लिये घर की लक्ष्मी को देना पुरुष का परम कर्तव्य है, और उसका सद्व्यय करना गृहिणी का। दोनो का राज्य बिलकुल पृथक्-पृथक् है। जहाँ दोनो में से कोई भी किसी दूसरे के अधिकार-क्षेत्र में प्रवेश करेगा,

वहाँ अशांति और कलह उत्पन्न होगी, और घर का सुख नष्ट हो जायगा।"

मायावती अपने मन के भाव नहीं दबा सकी, उसने कहा—"यह तो ठीक है, मा, लेकिन स्त्री-जाति पुरुषों की ग़ुलाम होकर नहीं रह सकती।"

रानी किशोरकेशरी ने उत्तर दिया—"पुरुषों की ग़ुलामी करने को कौन कहता है। स्त्रियाँ तो पुरुषों की अर्धांगिनी हैं। उन्हें अपने केंद्र में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त है। माया! तुम लोग यह ग़लती उस वक़्त करती हो, जब अपने को पुरुषों से अलग समझती हो। पुरुष न तो स्त्री से अलग है, और न स्त्री पुरुष से। दरअसल दोनो संयुक्त हैं। एक का जीवन दूसरे के बिना अधूरा है। इसी संयुक्त भाव को व्यक्त करने के लिये हमारे शास्त्रकारों ने स्त्रियों को पुरुषों का अर्धांग कहा है। यहाँ तक कि उन्होंने इसकी व्यवस्था की है कि पुरुष या स्त्री का कोई भी कार्य बिना एक दूसरे के सफल नहीं होता।"

माया ने खिन्न होकर कहा—"लेकिन वे भाव अब कहाँ हैं। पुरुष स्त्री-जाति पर कितने अत्याचार करते हैं, क्या कभी तुमने इस पर ध्यान दिया है?"

रानी किशोरकेसरी ने शांत भाव से कहा—"हाँ, तुम्हारा कथन सत्य है। इस ज़माने में पुरुष अवश्य स्त्रियों पर अत्याचार करते हैं, क्योंकि पुरुषों के विरुद्ध स्त्रियों ने भी अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिये अस्त्र उठा लिए हैं। संसार में दो वस्तुएँ कभी समान शक्तिवाली नहीं होतीं, उनमें से कोई-न-कोई अधिक शक्ति-वाली होती है। स्त्री और पुरुषों की समानता कभी नहीं हो सकती। स्त्रियों को प्रकृति ने ही हीन बनाया है। देखो, वे पुरुषों की अपेक्षा कोमल हैं, कमज़ोर हैं, और परतंत्र हैं। परतंत्र से मेरा मतलब जीविका

से नहीं, बल्कि शक्ति की परतंत्रता से है। वे रक्षा के लिये पुरुषों का सहारा ढूँढ़ती हैं। जिस तरह बेल अपनी रक्षा पेड़ के सहारे खड़ी होकर कर सकती है, उसी प्रकार स्त्री अपनी रक्षा पुरुषों की छाया में रहकर कर सकती है। प्रकृति ने पुरुष-जाति को सबल बनाकर उसे स्त्री से श्रेष्ठ बनाया है। इसलिये इस विरोध को कितनी चतुरता से हमारे समाज के नेताओं ने सुलझा दिया कि दोनों का कार्य-क्षेत्र अलग-अलग कर दिया। अब आजकल विलायती शिक्षा के प्रभाव से हमारे जीवन का सारा आनंद नीरस हुआ जाता है, क्योंकि इसने एक विरोधाभास पैदा कर दिया है। आज तुम लोग विलायती समाज के अनुकरण में इतनी पागल हो रही हो कि उसकी बुराइयाँ बिलकुल नहीं देखतीं। वे अगर पुरुषों से बराबरी का दावा करती हैं, तो देखो, उनमें कितनी सुखी हैं। उन्हें निरंतर कलह का जीवन व्यतीत करना पड़ता है। और, जहाँ तुम्हें सुख देखने को मिलेगा, वहाँ हमारे वैदिक समाज के नियम एक दूसरे रूप में देखने को मिलेंगे।"

मायावती ने कुछ खिन्न मन से कहा—"परंतु यह तो कहो कि पुरुष-शास्त्रकारों ने अपनी जाति के लिये क्या दंड-विधान निश्चित किया है? यह तो कभी संभव नहीं कि पुरुष अपराध करें नहीं, फिर उसके अपराधों का क्या दंड है? स्त्री अगर प्रलोभनों में पड़कर पथ-भ्रष्ट हो जाय, तो पति उसे त्याग सकता है, परंतु अगर पुरुष वही अपराध करता है, तो उसका स्त्री क्यों नहीं त्याग कर सकती?"

रानी किशोरकेसरी ने बड़ी शांति से कहा—"हाँ, यह तुम्हारा प्रश्न बड़ा विचारणीय है। पुरुषों के लिये दंड-व्यवस्था क्यों नहीं! देखो, दंड दो प्रकार का होता है—एक तो भय-प्रदर्शक यानी भय से रोकनेवाला, और दूसरा सुधारक, यानी सुधार करके उसके स्वभाव को बदल देना। पहला मानुषिक है, दूसरा दैविक। पहला

अस्थायी है, और दूसरा चिरस्थायी। पहले में कलह है, दूसरे में शांति। यदि पुरुष भ्रम या भूल से स्त्री के प्रति अविचार करता या पथ-भ्रष्ट होता है, तो स्त्री का धर्म है कि वह उसका सुधार करे। इसी कारण भय-प्रदर्शक दंड उसे नहीं दिया जाता, और दूसरे प्रकार का दंड, जो दैविक है, पवित्र है, स्थायी है, दिया जाता है, यानी सत्याग्रह करके स्त्री अपने पथ-भ्रष्ट पति को सन्मार्ग पर लाती है। सत्याग्रही अपने सत्य को कभी नहीं छोड़ता। इसी प्रकार सत्य को ग्रहण किए हुए स्त्री अपने पति से लड़ती है, यानी पहले से भी अधिक उसकी सेवा-शुश्रूषा करती है, उसका आदर करती है, उसके प्रहारों का उत्तर हँसकर देती है। यह आत्मिक युद्ध पुरुष का पाशविक बल नष्ट करने में समर्थ होता है, और वह पथ-भ्रष्ट पुरुष अपने मानसिक अनुताप से जर्जरित होकर, अंत में, उसकी शरण आता है। दोनो की जीवन-धाराएँ, जो पहले दो ओर बह रही थीं, पुनः एकत्र होकर बहने लगती हैं, कलह का नाम नहीं रहता, और न किसी को घृणा या क्रोध रहता है। जीवन का सुख-स्वप्न नष्ट न करने के लिये ही समाज के नेताओं ने भय-प्रदर्शक दंड की योजना नहीं रक्खी।"

मायावती ने श्लेष-पूर्ण स्वर में कहा—"चूँकि स्त्रियाँ पैर की जूती हैं, इसलिये उनके लिये पथ-भ्रष्ट हो जाने पर त्याग की व्यवस्था है?"

रानी किशोरकेसरी ने हँसकर कहा—"नहीं, वे पैर की जूती नहीं, वरन् पवित्रता, त्याग, दया तथा क्षमा की मूर्ति हैं। स्त्री संतान पैदा करनेवाली है, वंश की शुद्धता का भार उसके सिर पर है, उसके अपवित्र हो जाने पर भावी संतति की शुद्धता में फ़र्क़ आ सकता है, इसीलिये उसके लिये भय-प्रदर्शक दंड की व्यवस्था है। यह भय उसे पाप-मार्ग की ओर अग्रसर नहीं होने

देगा। वास्तव में व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाय, तो पुरुष बिना स्त्री की सम्मति या स्वीकृति के पथ-भ्रष्ट हो ही नहीं सकता। वास्तव में जब स्त्रियाँ पुरुषों को अपने हाव, भाव, कटाक्ष द्वारा प्रोत्साहन देती हैं, तभी पुरुष स्त्रियों की ओर आकृष्ट होकर पथ-भ्रष्ट होते हैं; नहीं तो पुरुष शक्तिशाली होते हुए भी स्त्री के सम्मुख निःशक्त है। साँप को नहीं मारना, उसकी मा को मारना, जिससे फिर साँप पैदा ही न हों।"

मायावती ने व्यंग्य-पूर्ण स्वर में कहा—"ठीक है, 'धोबी से न जीते, तो गधे के कान उमेठे।' देखो, तुम्हारे भगवान् रामचंद्र तो भगवान् थे, सर्वांतर्यामी थे, फिर क्या वह सीता को पवित्र न जानते थे, जब कि वह अपनी पवित्रता की परीक्षा अग्नि में प्रविष्ट होकर दे चुकी थीं। परंतु तुम्हारे भगवान् रामचंद्रजी ने उस असहाय, पवित्रता की मूर्ति सीता को जंगली पशुओं के बीच मरने को छोड़ दिया। यह है पुरुषों के न्याय का ज्वलंत उदाहरण!"

मायावती के स्वर में वेदना की एक झलक थी, और आहत प्राणों की पुकार।

रानी किशोरकेसरी ने मृदु मुस्कान-सहित कहा—"भगवान् रामचंद्र अपने जीवित काल में भगवान् नहीं थे, हमारे-जैसे मनुष्य थे। परंतु हाँ, वह भगवान् के इतने सन्निकट थे कि मरने के बाद भगवान् हो गए, यानी उनका मोक्ष हो गया। उनका कर्तव्य-ज्ञान इतना ऊँचा था कि वह अपने कर्तव्य-पालन में अपनी प्रिय-से-प्रिय वस्तु भी त्याग सकते थे। राजतिलक के दिन उन्हें वनवास मिला, लेकिन क्या उनके मस्तक पर एक बल भी पड़ा? त्याग की परा काष्ठा उनके जीवन में हमें पग-पग पर मिलती है। यदि उनकी कोई प्रजा सीता के कारण दुखी हो सकती है, तो वह उसका त्याग करने में पल-मात्र देर नहीं करते, हालाँकि उन्हें यह

मालूम है कि सीता के बिना उनका जीवन नीरस हो जायगा, और यथार्थ में हो भी गया। उन्होंने कर्तव्य और त्याग की परा काष्ठा की रक्षा में अपने एवं अभागिनी सीता के ऊपर अत्याचार किया।"

मायावती ने बीच में टोककर कहा—"तो तुम भी मानती हो कि सीता पर उनका अत्याचार था।"

रानी किशोरकेसरी ने दबे कंठ से कहा—"हाँ, सत्य को छिपाना असंभव है। बेशक, सीता के प्रति उनका अत्याचार सदा कलंक-रूप में अमर रहेगा। परंतु ज़रा सोचो, तुम पूछती हो कि स्त्री के प्रति अत्याचार करने पर पुरुष-जाति के लिये क्या दंड है? देखो, हालाँकि समस्त हिंदू-जाति भगवान् रामचंद्र को भगवान् मानकर पूजती है, परंतु आज भी उनके अत्याचार को कलंक कहकर पुकारती है। यह दंड क्या पुरुष-जाति के लिये कम है!"

मायावती ने उत्तर दिया—"परंतु क्या केवल इतने से सीता के मन को संतोष हो गया? उनके विलाप के आँसू केवल इस कलंक-कहानी से पोंछे नहीं जा सकते।"

इसी समय राजा भूपेंद्रकिशोर ने अकस्मात् वहाँ आकर कहा—"बेशक, माया का कहना बिलकुल सत्य है। माया, तू अपनी मा के बहकाने में कभी मत आना, इसने तेरा जीवन नष्ट कर बिलकुल निकम्मा बना दिया है। अब अगर इसके सिखाने में लग जायगी, तो और दुःख पायगी।"

रानी किशोरकेसरी ने तुरंत ही सिर ढकते हुए कहा—"हाँ, अब तुम्हारे उपदेश पर चलकर सुख पायगी! यदि इस समय मेरे कहने के माफ़िक़ चलेगी, तो इसमें सबका कल्याण है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने हँसकर कहा—"ठीक है, तभी तो यह सोने का हार एक बंदर के गले में पहना दिया था।"

रानी किशोरकेसरी ने लज्जित होकर कहा—"ख़ैर, जो मैंने कर दिया, सो कर दिया, लेकिन......"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"बेशक, मैं इस ग़लती का सुधार करूँगा। अगर हिंदू रहकर यह ग़लती सुधर नहीं सकती, तो मैं सपरिवार ईसाई या मुसलमान हो जाऊँगा। फिर तो यह समस्या न रहेगी।"

रानी किशोरकेसरी ने क्रोध से उबलकर कहा—"अब बुढ़ापे में ईसाई या मुसलमान होना रह गया है, सो यह साध क्यों अपूर्ण रह जाय।"

यह कहकर वह सक्रोध कमरे के बाहर चली गईं।

(१२)

जस्टिस सर रामप्रसाद को उस दिन शांति मिली, जिस दिन उन्होंने कुसुमलता का विवाह डॉक्टर आनंदीप्रसाद से कर दिया। उन्होंने उस दिन अपने शरीर और मन में स्फूर्ति अनुभव की। विवाह के दिन उन्हें वे बातें एक-एक करके याद आने लगीं, जो कुसुमलता के प्रथम विवाह की थीं, और जिन्हें समय ने अपने उदर में रख लिया था। कुसुमलता की मा की याद उन्हें बार-बार हो आती थी। वह मन-ही-मन अनुमान करते कि उस विवाह में कितना उत्साह था, और इस विवाह में कितनी नीरसता। हालाँकि कुसुमलता कुमारिका-जैसी थी, परंतु कुमारी न थी; इसीलिये पहला तो विवाह था, और अब यह कर्तव्य-पालन। चाहे जो कुछ हो, उनके सिर का बोझ तो अवश्य उतर गया था।

कुसुमलता अपनी परिस्थितियों से निरंतर युद्ध करते-करते बिल-कुल निर्बल हो गई थी। अंत में उसे उनका शिकार होना पड़ा— अपनी इच्छा के विरुद्ध अपने को बलिदान करना पड़ा। जो एक समय संसार से लड़ने के लिये सनद्ध थी, वह अपने पिता से न लड़ सकी। वास्तविकता कल्पना से कितनी विभिन्न है!

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने अंत में विवाह किया, परंतु माता-पिता का आशीर्वाद प्राप्त करने के समय नहीं। उस दिन उन्हें भी सोच हुआ, और वृद्धा माता की उत्कंठा तथा साध-भरी उमंगों का करुण चित्र उनकी आँखों के सामने बार-बार आकर उनकी स्मृति जाग्रत् करने लगा। पिता का वह मौन क्रोध बारंबार जाग-

रित होकर उनके मन में भय-संचार करता। उनके सामने केवल एक प्रश्न था—"क्या मैं इस विवाह से सुखी होऊँगा ?"

राजेंद्रप्रसाद को सत्य ही इस विवाह से सुख हुआ था। जब से मनोरमा ने उनसे कहा कि कुसुमलता उन पर अनुरक्त है, उनके मन में एक प्रबल चिंता जाग्रत् हो गई थी। वह इस तरह व्याकुल हो गए थे, जिस प्रकार अथाह जल-राशि के भँवर में पड़कर एक तैरना न जाननेवाला व्यक्ति होता है। परंतु जब वह उस भँवर के बीच से किसी तरह निकल आता है, तो जैसी शांति उसे मिलती है, लगभग वैसी ही राजेंद्रप्रसाद को कुसुमलता के विवाह हो जाने से मिली थी।

मनोरमा कुसुमलता के विवाह से किसी तरह संतुष्ट नहीं हुई। वह उससे भली भाँति परिचित थी। वह देख रही थी कि उसने अपने को, केवल उसे सुखी करने के लिये, बलि-वेदी पर चढ़ा दिया है। जब कुसुमलता बिदा हो रही थी, तो जिस तरह दोनो सखियाँ गले मिलकर रोई थीं, वह दृश्य देखने से नहीं, केवल स्मरण-मात्र से किसी भी पत्थर-जैसे कठिन कलेजेवाले को रुलाने के लिये काफ़ी था। वह बिदा दो कोमल हृदयों की बिदा थी। दोनो एक दूसरे का दुख अनुभव करती थीं, परंतु दोनो के मुख पर ताला लगा था। मौन पीड़ा की कसक तो व्यक्त पीड़ा से ज़्यादा होती है। राजेश्वरी, रोती हुई राजेश्वरी, उन्हें बार-बार अलग करती, किंतु वे दोनो अलग होकर फिर एक दूसरे के चिपट जातीं। उस दिन कुसुमलता और मनोरमा जी भरकर रोई थीं। विवाह के आनंद में बिदाई का ग़म झाँकता रहता है, और यह कहते हैं कि इसी ग़म ने जनक-जैसे विदेह को भी थोड़ी देर के लिये अपने रंग में रँगकर मनुष्य होना प्रमाणित कर दिया था।

बाबू राधारमण को वह प्रसन्नता प्राप्त हुई थी, जो एक कर्तव्य-

शील पुरुष को अपना कर्तव्य पालन करने में होती है। कुसुम-लता का विवाह करना वह कर्तव्य समझते थे, और उसको सर्वथा उचित समझकर ही उन्होंने किया था। बिदा होते समय जब कुसुम-लता ने उन्हें दोनों हाथ जोड़कर प्रणाम किया, तो उन्होंने, अश्रु-पूर्ण नेत्रों से कातर होकर आशीर्वाद दिया, जिस तरह कुछ साल पहले मनोरमा की बिदाई के समय दिया था। उन्हें बरबस वह दिन याद आ गया, जब मनोरमा इसी तरह बिदा हुई थी।

और राजेश्वरी ? राजेश्वरी भी उसी तरह रो रही थी, जैसे मनो-रमा की बिदाई में रोई थी। बिदा होती हुई लड़की सबको रुलाकर जाती है। यह है हिंदू-घर के वैवाहिक जीवन का प्रथम यवनिका-उत्थान, और जीवन-नाटक का प्रारंभ।

कुसुमलता को ससुराल गए हुए चार दिन व्यतीत हो गए थे। बाबू राधारमण ने सपरिवार बिदा होने की अनुमति कई बार माँगी, परंतु सर रामप्रसाद ने हमेशा एक-न-एक बहाना बताकर टाल दिया। सर रामप्रसाद की हिम्मत इतने बड़े घर में अकेले रहने की न होती थी, यही कारण था कि वह उनको छोड़ने में टालमटोल करते। इसके अतिरिक्त मनोरमा और राजेंद्रप्रसाद ने वृद्ध के हृदय में एक मोह पैदा कर दिया था, जिनको देखकर उन्हें बहुत शांति मिलती थी। सर रामप्रसाद का दुखी हृदय इस नवीन परिवार को पाकर बहुत कुछ शांत हुआ था।

शाम के चार बज चुके थे। आकाश काले-काले बादलों से ढका हुआ था। कभी-कभी बिजली की चमक और उनकी गर्जन यह घोषित करती कि हम पृथ्वी की प्यास बुझाने को आ गए हैं। छोटी-छोटी बूँदें पड़ना आरंभ हो गई थीं। सर रामप्रसाद बरामदे में बैठे हुए अख़बार पढ़ रहे थे।

इसी समय राजेंद्रप्रसाद आकर उनके समीप खड़े हो गए।

सर रामप्रसाद ने उनको सप्रेम एक कुरसी पर बैठने का आदेश दिया।

राजेंद्रप्रसाद के बैठ जाने पर सर रामप्रसाद ने कहा—"आज अच्छी बारिश होने के आसार हैं। मालूम होता है, पानी ख़ूब गिरेगा।"

राजेंद्रप्रसाद ने प्रकृति की ओर देखते हुए कहा—"जी हाँ, बादल काफ़ी घिर आए हैं।"

सर रामप्रसाद ने अख़बार देखते हुए कहा—"आजकल कोई अच्छी ख़बर नहीं आती। महात्माजी ने उपवास किया है, और पॉलिटिक्स से रिटायर होने का निश्चय किया है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"जी हाँ, वह हरिजन-आंदोलन में शरीक होकर पहले हिंदू-जाति का संगठन करना चाहते हैं।"

सर रामप्रसाद ने कहा—"हाँ, यह ठीक है। नींव को मज़बूत करके जो मकान बनेगा, वह मज़बूत और देरपा होगा, नहीं तो बालू की दीवार की तरह ढह जायगा।"

इसी समय पानी बड़े वेग से बरसने लगा।

सर रामप्रसाद ने प्रसन्न होकर कहा—"कितना सुहावना मालूम होता है।"

राजेंद्रप्रसाद ने विषय बदलते हुए कहा—"मैं कल इलाहाबाद जाना चाहता हूँ, क्योंकि विलायत जाने के दिन बहुत थोड़े रह गए हैं। अभी सब इंतज़ाम करना बाक़ी है।"

सर रामप्रसाद ने उनकी ओर साश्चर्य देखकर कहा—"कल ही जाना चाहते हो, यह कैसे मुमकिन है? विलायत-सिलायत जाकर क्या करोगे? फ़िज़ूल पैसा बरबाद करना है।"

राजेंद्रप्रसाद ने धीमे स्वर में कहा—"जी हाँ, यह तो सत्य है, परंतु मुझे तो सरकार भेज रही है। घर का पैसा बहुत कम ख़र्च होगा।"

सर रामप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"यह तो बहुत ठीक है, लेकिन फ़ायदा क्या होगा। परेशान होने की एक नई योजना है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कोमल स्वर में प्रतिवाद करते हुए कहा—"आपका कथन सत्य है, परंतु जाने में फ़ायदा है। एक डिग्री ले आऊँगा, और संसार का भी भ्रमण कर आऊँगा। आप लोगों के आशीर्वाद से मेरा कुछ अनिष्ट नहीं होगा। ऐसा मौक़ा फिर दुबारा हाथ नहीं आने का।"

सर रामप्रसाद ने अपना सिर दूसरी ओर घुमाते हुए कहा—"ज्यों-ज्यों मैं बूढ़ा हो रहा हूँ, त्यों-त्यों मेरे मन में ममता और मोह जाग रहा है। यह मैं जानता हूँ कि तुम पर मेरा कोई अधिकार नहीं, लेकिन मैं फिर भी तुम्हें छोड़ना नहीं चाहता। मैं यही चाहता हूँ कि तुम सदा मेरे पास रहो। लेकिन यह तो असंभव है, पराई वस्तु आज तक क्या कभी अपनी हुई है ? परंतु क्या तुम जानते हो, बूढ़ों के मन में ममता बहुत होती है, क्योंकि उनके जाने के दिन ज्यों-ज्यों निकट होते जाते हैं, उनकी आसक्ति इस संसार के प्रति बढ़ती जाती है। वही हाल मेरा है। मैं भी तुम लोगों के प्रेम में पड़ गया हूँ।"

यह कहकर वह हँसने लगे। उनके स्वर में अकेलेपन की वेदना झाँक रही थी।

राजेंद्रप्रसाद दुखी होकर कुछ सोचने लगे।

इसी समय बाबू राधारमण घर के अंदर से निकलकर बाहर आए। उनको देखकर सर रामप्रसाद ने कहा—"देखिए जनाब, राजेन बाबू तो कल जाने के मनसूबे बाँध रहे हैं।"

बाबू राधारमण ने चकित होकर कहा—"आज तो १५ जुलाई है, अभी जाने को १५ दिन बाक़ी हैं। अभी से कहाँ जायँगे।" फिर राजेंद्रप्रसाद से पूछा—"क्या आपने अपना प्रोग्राम बदल दिया है ?"

राजेंद्रप्रसाद ने सिर नत करके कहा—"जी नहीं, इँगलैंड तो पहली अगस्त को ही रवाना होऊँगा, मगर कल इलाहाबाद जाने का इरादा है। मैं अम्मा से सिर्फ़ पंद्रह दिन के वास्ते कहकर आया था, और यहाँ मुझे तीन महीने से ज़्यादा हो गए। वे लोग भी चिंतित होंगे।"

बाबू राधारमण ने हँसकर कहा—"अच्छा, यह बात है। ससुराल में रहते तीन महीने हो गए, इससे आपको डर मालूम होता है।"

सर रामप्रसाद और बाबू राधारमण दोनो हँसने लगे। राजेंद्रप्रसाद ने भी हँसते हुए अपना सिर घुमा लिया।

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"नहीं, यह तो बात नहीं है। मैंने तो इसे अपना घर समझा है, और घर की तरह रहता हूँ, परंतु उधर अम्मा भी तो चिंता करती होंगी। इसके अलावा अभी सब तैयारी करना बाक़ी है।"

राधारमण ने हँसकर कहा—"आपकी तैयारी में क्या रक्खा है। एक दिन में तैयारी होती है। तैयारी में सिर्फ़ दर्जन-भर सूट बनवाना है, और क्या है? तो चलिए, आज ऑर्डर दे आवें। आप अपनी तबियत का कपड़ा पसंद कर लें, बाक़ी उनको जल्दी-से-जल्दी तैयार कराना मेरी ज़िम्मेवारी है। पाँच-छ दिन बाद जाकर अपनी माता से मिलकर बिदा हो आना। फिर यहाँ से हम सब लोग तारीख़ ३० जुलाई को मेल से बंबई के लिये रवाना हो जायँगे, और पहली अगस्त को आपको जहाज़ पर बैठाकर रवाना कर देंगे।"

सर रामप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"देखा, कितनी जल्दी सारा कार्य-क्रम निश्चित कर दिया। देर ही न लगी। मुझे देखो, तुम्हारे जाने का नाम सुनकर मेरे हाथ-पैर फूल गए, लेकिन हमारे बैरिस्टर साहब ने बात-की-बात में सारा काम ख़त्म कर डाला। अगर विद्वन

के विवाह में यह अगुआ न होते, तो मेरे किए कुछ न होता, केवल मनसूबों का ढेर लगा हुआ मिलता।"

यह कहकर सर रामप्रसाद हँसने लगे।

राजेंद्रप्रसाद ने धीमे स्वर में कहा—"लेकिन अम्मा ने कहा था कि बिदा कराकर ले आना, इसीलिये इतने . ..."

बाबू राधारमण ने राजेंद्रप्रसाद का वाक्य पूरा करते हुए कहा—"मन्नी को ले जाने के लिये ही आप इतने दिन रुक गए। लेकिन मन्नी को वहाँ भेजकर क्या होगा ? उसके जाने से हमारे घर की ज़िंदगी चली जायगी, और रौनक़ उड़ जायगी, अगर तुम वहाँ होते, तो दूसरी बात थी, वहाँ वह अकेले कैसे रहेगी ? उसे भी दुख होगा, और हम लोगों को भी। इसमें कोई फ़ायदा तो है नहीं। फिर आपकी मरज़ी।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"अभी तो ले जाने दीजिए, और अपने साथ ही लेकर आ जाऊँगा। इससे मा की आज्ञा का पालन हो जायगा, और......"

बाबू राधारमण ने प्रसन्न कंठ से कहा—"हाँ, यह ठीक है। लेकिन आप जब वापस आवें, तो साथ ले आवें।"

सर रामप्रसाद ने गहरी साँस लेकर कहा—"लड़की कभी अपनी नहीं होती। वह दूसरे घर की शोभा है।"

राधारमण ने उठते हुए कहा—"चलिए, अब पानी बंद हो गया है, कपड़ों के लिये ऑर्डर दे आवें।"

यह कहकर वह कपड़े पहनने के लिये घर के अंदर चले गए।

राजा प्रकाशेंद्र ने मुस्किराते हुए कहा—"अब तो तुम्हारे पथ का काँटा दूर हो गया।"

मिस ट्रैवीलियन ने अँगड़ाई लेकर एक अदा के साथ कहा—"कैसे ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने अपनी कुरसी उसके निकट लाते हुए कहा—"माया का पिंड छूट गया, और आज के पत्र से मालूम होता है कि वह बेड़ी अपने आप मेरे पैरों से निकल जायगी।"

मिस ट्रैवीलियन ने उत्सुक होकर कहा—"क्या हुआ ? तुम हमेशा पहेलियों में बातें करके मुझे तंग करना जानते हो। तुम वाक़ई बड़े ही ..."

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"कह क्यों नहीं डालतीं। अपना वाक्य पूरा करो।"

मिस ट्रैवीलियन ने प्रेम के साथ उनके कपोलों पर एक चपत लगाकर कहा—"क्या कहूँ, तुम जो हो, वह मैं जानती हूँ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उठकर उसके कपोलों पर अपना प्रेम-चिह्न अंकित करते हुए कहा—"क्या जानती हो ? मैं तुम्हारे लिये सब कुछ हो गया हूँ, और सब कुछ त्याग दिया है। तुममें न-जाने कौन-सी मोहिनी शक्ति है, जिसने मुझे तुम्हारा ग़ुलाम बना लिया है। लोक-लाज, धन-ऐश्वर्य, राज-पाट, सब तो तुम्हारे चरणों पर न्योछावर कर दिया है, फिर भी तुम मेरी नहीं होतीं।"

राजा प्रकाशेंद्र का स्वर भग्न था। एक उपालंभ का आभास था।

मिस ट्रैवीलियन ने अपने दोनों हाथ उनके गले में डालते हुए कहा—"यह शिकायत तुम्हारी बेजा है। मैंने तुम्हें अपना सब कुछ भेंट कर दिया है, अगर शिकायत मैं करूँ, तो ठीक है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने मुस्किराकर कहा—"तुम क्या शिकायत करोगी ?"

मिस ट्रैवीलियन ने सलज्ज कंठ से कहा—"यह कि मैं तुम्हें अपना नहीं कर पाई। तुम पुरुषों का कौन विश्वास करे। जिस तरह तुमने माया को ठुकरा दिया है, उसी तरह मुझे भी ठुकरा दोगे।"

राजा प्रकाशेंद्र हँस पड़े। उनकी हँसी से कमरा गूँज गया।

मिस ट्रैवीलियन ने अप्रतिभ होकर कहा—"क्या मैं झूठ कहती हूँ ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने उसके कपोलों को स्पर्श करते हुए कहा—"बेशक। तुम माया के साथ अपनी तुलना करती हो; वह तो एक बेवक़ूफ़ हिंदू-लड़की थी, वह प्रेम करना नहीं जानती थी, लेकिन तुम, तुम तो प्रेम की पुतली हो। तुम्हें वह जादू मालूम है, जो मुझे सदा तुम्हारे जाल में फँसाए रहेगा।"

यह कहकर उन्होंने एक प्रेम-चिह्न अंकित कर दिया।

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"तुम्हारी ये सब कोरी बातें हैं। तुम क्या कुछ कम जादू जानते हो, जो तुमने मेरा व्रत भंग कर दिया। मैं पहले सामाजिक सेवा में कितनी लगी रहती थी, लेकिन अब केवल तुम्हारे साथ प्रेम करने में ही हमारे दिन जाते हैं। मैं तुम्हें अपनी आँखों से ओट नहीं करना चाहती। मेरे मन में यही साध है कि तुम्हें अपने सामने बिठाए हमेशा देखा करूँ। इतना पागलपन तो मुझे कभी सवार नहीं हुआ था।"

राजा प्रकाशेंद्र ने संतुष्ट होकर कहा—"और मैं तुम्हें छोड़कर

कहाँ जाना चाहता हूँ, रात-दिन तुम्हारी ही माधुरी पान करता हूँ। तुममें मदिरा की मादकता है, प्रकृति का नित नूतन शृंगार है, उषा का मधुर हास्य है, और सागर का प्रेम-गांभीर्य है। तुम मेरे प्राणों की ज्योति हो, मेरे जीवन की साध हो। तुम्हारा-ऐसा नशा संसार की उत्कृष्ट-से-उत्कृष्ट मदिरा में नहीं है। तुम मुझे मदिरा की तरह प्यारी हो।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसकर कहा—"अगर ऐसा ही रहा, तब तो थोड़े दिनों में तुम अच्छे कवि हो जाओगे।"

राजा प्रकाशेंद्र हँसने लगे, और मिस ट्रैवीलियन ने उसमें योग दिया।

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसते हुए कहा—"यह बिलकुल ठीक है; कवि होने के लिये पहले प्रेम की पाठशाला में पढ़ना आवश्यक है। संसार के बड़े-बड़े कवि सब पहले प्रेमी थे।"

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराकर कहा—"लेकिन भग्न प्रेमी कवि होते हैं। जिनके प्रेम का प्रत्युत्तर मिलता है, वे कविता की उलझनों में नहीं फँसते।"

राजाप्रकाशेंद्र ने उत्तर दिया—"यह तो सत्य है। केवल निराश प्रेमी कल्पना के प्रेम-संसार में घूमकर अपनी कल्पित प्रेमिका से प्रेम-अभिनय करेगा, परंतु जिस प्रेमी को तुम्हारी-जैसी जीवित प्रेमिका प्राप्त है, वह क्यों कोरे क़लम और काग़ज़ से अपना सिर फोड़ेगा?"

मिस ट्रैवीलियन हँसने लगी।

राजा प्रकाशेंद्र ने फिर कहा—"मैं कभी सफल कवि नहीं हो सकता। मैं निर्गुण-उपासक नहीं हूँ, सगुण की पूजा करना मैं श्रेयस्कर समझता हूँ। तुम मेरे हृदय की देवी हो; तुम्हारे चरणों पर सब कुछ चढ़ाकर भी हृदय की साध पूरी नहीं होती।"

मिस ट्रैवीलियन ने संतोष-पूर्ण स्वर में कहा—"और मैं भी तुम्हें सब कुछ भेंट कर तृप्त नहीं होती।"

इसी समय बाहर से नसीबन, मिस ट्रैवीलियन की मुँहलगी परिचारिका, ने कमरे के बाहर खाँसकर अपने आने की सूचना दी। मिस ट्रैवीलियन और राजा प्रकाशेंद्र का प्रेम-संबंध उनके नौकरों से गुप्त नहीं था, चाहे वह भले ही संसार की आँखों से छिपा हो।

नसीबन ने आकर अदब के साथ कहा—"चार बज गया है मिस साहिबा, ग़ुसुलख़ाने में नहाने के लिये पानी तैयार है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने नसीबन से पूछा—"क्यों नसीबन, अब तो तू नहीं पीटी जाती?"

नसीबन ने सिर झुका, श्रद्धा के साथ मुस्किराकर कहा—"जी नहीं। आजकल मिस साहिबा की मेहरबानी है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने पाँच रुपए का नोट उसके सामने फेंकते हुए कहा—"ले जा यह तेरा इनाम है। अपनी मिस साहिबा की ख़िदमतगारी तन-मन से करना। इसी में तेरा फ़ायदा है।"

नसीबन ने अदब से सिर झुकाकर कहा—"जो हुक्म। यह कमतरीन तो हमेशा अपनी जान मिस साहिबा के लिये निसार करने को तैयार है। उस दिन कोई भूल हो गई, लेकिन अब तो वैसी भूल कभी नहीं करने की।"

यह कहकर उसने फिर अदब प्रदर्शित किया, और मुस्किराती हुई नज़रों से चली गई।

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"न मालूम तुमने क्यों इसको उस दिन पीटा था। ऐसी चतुर परिचारिका बड़ी मुश्किल से मिलती है।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक कटाक्ष-सहित कहा—"ठीक है, चतुरता के लिये इनाम है, और बदमाशी के लिये जूती।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उठकर एक अलमारी से सिगरेट का डिब्बा निकालते हुए कहा—"तुम भी एक विचित्र रमणी हो।"

मिस ट्रैवीलियन ने उत्तर दिया—"इसमें विचित्रता क्या है ? नौकरों का कभी-कभी कान न ऐंठने से वे बिगड़ जाते हैं । मेरा नियम यह है कि खिलाना भर पेट, लेकिन काम भी लेना जी तोड़ ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने सिगरेट जलाते हुए कहा—"ठीक है । अभी क्या तुम स्नान नहीं करोगी ?"

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराकर कहा—"एक सिगरेट मुझे भी लाओ । देखो, तुम कितने दग़ाबाज़ हो, और कहते हो कि मैं तुम्हें प्राणों से अधिक प्यार करता हूँ ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने सिगरेट देकर, उसे जलाते हुए कहा—"इसमें क्या दग़ाबाज़ी ? मैं समझा कि तुम स्नान करने जाओगी, इसीलिये तुम्हें सिगरेट नहीं दी ।"

मिस ट्रैवीलियन ने मुँह से धुआँ निकालते हुए कहा—"इसको नहीं कहती ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने आश्चर्य से उसकी ओर देखते हुए कहा—"फिर क्यों कहती हो । मैंने तो अपनी जान में तुम्हारे साथ कभी कोई दग़ाबाज़ी नहीं की । फ़िज़ूल इल्ज़ाम लगाना हो, तो दूसरी बात है ।"

मिस ट्रैवीलियन ने सिगरेट का दूसरा कश खींचने के बाद कहा—"तुमने अभी कुछ देर पहले कहा था कि माया का पत्र आया है, और तुम उसको दिखलाते ही रह गए । मुझे मीठी-मीठी बातों में उलझाकर वह बात ही उड़ा दी ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसते हुए कहा—"अरे, मैं बिलकुल भूल गया । पत्र माया का नहीं, बल्कि उसके पिता का आया है । बात यह है कि जब उसके पिता उसे लेने के लिये आए, तो उन्होंने आते ही मेरे सामने दो पिस्तौल निकालकर मुझे द्वंद्व-युद्ध के लिये ललकारा । मैं उस समय कुछ परेशान था, क्योंकि माया बेहोश पड़ी

थी। मैंने कोई जवाब नहीं दिया, तो उन्होंने मुझे बहुत बुरा-भला कहा, यहाँ तक कि मेरा अपमान करके गालियाँ तक दीं। उस समय मैं ज़हर का घूँट पीकर रह गया। फिर उस दिन मौक़ा ही न मिला, और वह माया को लेकर उसी वक्त चले गए। बाद में मैंने एक पत्र लिखा, जिसमें ज़ाहिर किया कि मैं द्वंद्व-युद्ध करने के लिये तैयार हूँ, और जब आप समय तथा स्थान निश्चित कर लें, तो मुझे लिखें, मैं वहाँ पहुँचकर आपसे द्वंद्व-युद्ध करूँगा। उसी पत्र का उत्तर आया, और कोई ख़ास बात नहीं।"

मिस ट्रैवीलियन ने उनकी ओर अपनी भृकुटियाँ कुंचित करके कहा—"तुमने यह बात कभी नहीं कही।"

यह कहकर वह कुछ सोचने लगी। उसके हाथ की सिगरेट बीसवीं सदी की विरहिणी नायिका की भाँति जलकर राख होने लगी।

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"अरे, इसमें सोचने की कौन बात है?"

मिस ट्रैवीलियन ने गंभीरता से कहा—"लाओ, वह-पत्र देखूँ। बुड्ढे ने क्या लिखा है?"

राजा प्रकाशेंद्र ने वह पत्र निकालकर लापरवाही से उसकी ओर फेंकते हुए कहा—"वह खूसट क्या लिखेगा? बड़ी लंबी-लंबी बातें हाँकी हैं।"

मिस ट्रैवीलियन पत्र खोलकर पढ़ने लगी। पत्र इस प्रकार था—
राजा प्रकाशेंद्रनारायणसिंह,

तुम्हारा पत्र मिला। पढ़कर प्रसन्न हुआ, क्योंकि उसमें तुमने अपनी असलियत खोल दी है, जिससे तुम्हारी तहज़ीब और शिष्टता का पता भली भाँति चलता है। धन्यवाद!

तुमने मुझको द्वंद्व-युद्ध के लिये ललकारा है। मैं उसे सहर्ष स्वीकार करता हूँ। तुम्हारे कहने माफ़िक़ हम फ़्रांस या स्वीटज़रलैंड

में ही अपने शस्त्रों की परीक्षा करेंगे। मैं पहली अगस्त को इँगलैंड के लिये रवाना होऊँगा, क्योंकि मुझे वहाँ एक राजकीय सम्मेलन में भारत की ओर से सम्मिलित होना है। दो-तीन महीनों में मैं बिलकुल फ़ारिग़ हो जाऊँगा। उस वक़्त मैं तुमसे द्वंद्व-युद्ध कर सकूँगा। तुम दिसंबर या जनवरी में आकर मुझसे युद्ध कर सकते हो। मैं इँगलैंड में दो-ढाई साल रहूँगा, और तुम्हारी राह देखूँगा। तुम दो-ढाई साल तक किसी समय आकर मुझसे युद्ध कर सकते हो। मुझे उम्मीद है कि इतने समय में अगर तुम पिस्तौल चलाने में दक्ष नहीं हो, तो अभी से प्रेक्टिस कर निपुणता प्राप्त कर लोगे।

तुमने हिंदू-समाज की कमज़ोरी की हँसी उड़ाई, यह ठीक है। परंतु यह याद रक्खो, माया की मा ने जो भूल की थी कि तुम-जैसे बंदर के गले में यह हीरों की माला पहनाई थी, उस भूल का सुधार मैं करूँगा। या तो एसेंबली में इस विषय का कोई क़ानून बनाने की चेष्टा करूँगा, और हिंदू-लॉ में तलाक़ क़ानूनन् जायज़ हो जायगा, नहीं मैं सपरिवार ईसाई होकर तुमसे उसका विच्छेद आजन्म के लिये करा लूँगा। यह समझ लो कि माया अब तुमको कभी नहीं मिल सकती। तुमने जिस प्रकार मेरी माया को नुक़सान पहुँचाया है, उसका प्रतिशोध मैं लूँगा।

मैं उत्कंठा के साथ तुम्हारी राह द्वंद्व-युद्ध के लिये देखूँगा। लंदन में तुम मेरा पता अनायास लगा सकते हो। मैं १६२ नंबर पिकेडली में सदैव मिलूँगा, और जहाँ जाऊँगा, वहाँ दरयाफ़्त करने से मेरा पता लगा सकते हो। मेरी ग़ैरहाज़िरी में तुम उस मकान में ठहरकर मेरी प्रतीक्षा कर सकते हो।

तुम्हारा
भूपेंद्रकिशोर

मिस ट्रैवीलियन ने पत्र पढ़कर कहा—"बूढ़ा है जवाँमर्द, और पार्लीदार।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"हाँ, ईसाई होकर माया की बेड़ी मेरे पैरों से काटेंगे।"

मिस ट्रैवीलियन ने किंचित् गर्व के साथ कहा—"ईसाई-धर्म संसार का सबसे उन्नत धर्म है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"बेशक, जैसे तुम संसार की सबसे उन्नत रमणी हो।"

मिस ट्रैवीलियन ने वक्र दृष्टि से उनकी ओर देखकर कहा—"इसके माने ?"

मिस ट्रैवीलियन को क्रुद्ध देखकर राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"तुम्हारे ग़ुस्सा होने की ज़रूरत नहीं है। क्या तुम वास्तव में संसार की सबसे सुंदर रमणी नहीं हो ?"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसकर कहा—"तुम्हें ख़ुशामद करना बहुत आता है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"रह गया धर्म के बारे में, मैं कोई धर्म नहीं मानता। न तो हिंदू-धर्म मानता हूँ, न ईसाई-धर्म और न मुसलमान-धर्म। धर्म एक मूर्खता का लक्षण है। धर्म केवल एक चोग़ा है, जब चाहा, पहन लिया, और जब चाहा, उतारकर रख दिया। न कभी मैंने किसी धर्म पर विश्वास किया है, और न करूँगा। मेरा धर्म प्रेम है। मैं प्रेम करने के लिये उत्पन्न हुआ हूँ, और भोग करने के लिये जीवित हूँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराकर कहा—"बस, हो गया, अपनी धर्म-कहानी बंद करो। मुझे नहीं अच्छा लगता।"

राजा प्रकाशेंद्र ने एक दूसरी सिगरेट जलाते हुए कहा—"अच्छा, बंद करता हूँ, लेकिन आपकी तारीफ़ में कुछ कहूँ या नहीं ?"

मिस ट्रैवीलियन ने झुँझलाकर कहा—"नहीं, बस माफ़ करो। क्या तुम उस बूढ़े से लड़ने के लिये इँगलैंड जाओगे ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"कहो, तुम्हारी क्या राय है ?"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"मेरी राय जानने के पहले तुम अपनी राय तो कहो।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"मैं इतना बेवक़ूफ़ नहीं हूँ, जो रास्ते चलते मौत बुलाऊँ। यह तो एक गीदड़-भबकी थी। मेरी जान का मूल्य है, द्वंद्व-युद्ध में गँवाने के लिये फ़ालतू नहीं है।"

मिस ट्रैवीलियन ने प्रसन्न होकर कहा—"बहुत ठीक, ख़ूब कहा। बेशक यह जान फ़ालतू ख़तरे में डालने के लिये नहीं है। उसे ईसाई होने दो, तब मज़ा आवेगा।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"अरे, यह भी एक धमकी है। ईसाई हो जाय, तो फिर कहना ही क्या। लेकिन यह सब फ़िज़ूल बातें हैं।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"यह न कहो, शायद बूढ़ा अपनी धुन में ईसाई हो भी जाय !"

राजा प्रकाशेंद्र ने उत्तर दिया—"अगर ऐसा हो जाय, तो अपना फ़ायदा ही है।"

मिस ट्रैवीलियन ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से पूछा—"किस तरह ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने उत्तर दिया—"माया से सहज ही छुटकारा हो जायगा।"

इसी समय नसीबन ने दुबारा आकर बाहर से कहा—"मिस साहिबा, टब का पानी गरम हो जायगा। आप स्नान कर लें, फिर बातें करें।"

मिस ट्रैवीलियन ने डपटकर कहा—"आती हूँ, जल्दी क्या है ? गरम हो जायगा, तो क्या पानी फिर ठंडा नहीं हो सकता ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"ठीक तो कहती है, पानी गरम हो जायगा, फिर स्नान का आनंद जाता रहेगा।"

मिस ट्रूवीलियन ने उठते हुए कहा—"हाँ, जाती हूँ, लेकिन यह चख़-चख़ क्यों लगाए है। तुम जाओगे, या बैठोगे?"

राजा प्रकाशेंद्र ने उठते हुए कहा—"मैं अब जाऊँगा। तुम जाकर स्नान करो। मैं भी बँगले जाता हूँ, और ज़रूरियात से फ़ारिग़ होकर पीछे वापस आता हूँ। फिर 'कार्लटन होटल' में आज शाम का खाना खायँगे। आज तुम साड़ी पहनकर घूमने चलना। तुम्हारे शरीर पर ज़री की नीली साड़ी बड़ी खिलती है, ऐसा मालूम होता है कि इस धरातल पर सचमुच चंद्रमा उतर आया है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने मिस ट्रूवीलियन के कपोलों पर प्रेम-चिह्न अंकित किया, और फिर कमरे के बाहर हो गए। मिस ट्रूवीलियन भी कुछ सोचती हुई नहाने चली गई।

---

(१४)

डॉक्टर आनंदीप्रसाद के बँगले में जाकर मनोरमा कुसुमलता को ढूँढ़ने लगी। लेकिन उसे कुसुमलता तो न मिली, डॉक्टर आनंदीप्रसाद बँगले के पिछले बरामदे में बैठे दिखाई दिए। उसे देखकर डॉक्टर आनंदीप्रसाद उठ खड़े हुए, और मुस्किराकर बोले—"आइए, आज आपने मेरा घर तो पवित्र किया।"

"मनोरमा ने सलज्ज कंठ से प्रणाम करके कहा—"कुसुम कहाँ है?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने नमस्कार का उत्तर देकर कहा—"वह पड़ोस में मिस्टर सरकार के यहाँ गई हैं। कल वे लोग यहाँ हम लोगों से मिलने आए थे, लिहाजा आज वह बदले में मिलने गई हैं। आइए, आप तशरीफ़ रखिए, उन्हें अभी बुलाता हूँ।"

यह कहकर उन्होंने नौकर को बुलाकर कहा कि पड़ोस के मिस्टर सरकार के यहाँ जाकर अपनी स्वामिनी को बुला लावे, क्योंकि मनोरमादेवी आई हैं।

नौकर बुलाने चला गया।

मनोरमा के बैठ जाने पर डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"कहिए, आप इँगलैंड कब तक जायँगी?"

मनोरमा ने चकित होकर कहा—"मैं तो इँगलैंड नहीं जा रही। यह आपसे किसने कहा?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया—"कहा तो किसी ने नहीं, मैंने अनुमान किया कि शायद आप भी मिस्टर वर्मा के साथ जायँ।

जाने में हर्ज क्या है ? यह मौक़ा अच्छा है। आप भी एक डिग्री लेकर वापस आइएगा।"

मनोरमा ने दुःखित स्वर में कहा—"आपका कहना ठीक है, और मेरा भी यही इरादा था, लेकिन अम्मा इजाज़त नहीं देतीं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कौतूहल-पूर्ण स्वर में कहा—"यह क्यों, इसमें उनका क्या स्वार्थ है ? उन्हें तो अवश्य आपको भेजना चाहिए। उनकी-जैसी बुद्धिमान् रमणी ऐसी ग़लती तो नहीं करेंगी।"

मनोरमा ने अपना सिर नवाकर कहा—"उन्हें मुझसे बहुत प्रेम है। कहना चाहिए कि अंध-प्रेम है। अगर मुझे एक दिन भी न देखें, तो छटपटाने लगती हैं। पापा तो राज़ी हो गए थे, लेकिन अम्मा किसी तरह नहीं मानतीं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद के सामने वह दृश्य आ गया, जो उनके इँगलैंड जाने के पहले उनके घर में घटित हो चुका था। उनकी मा का रोदन, अनुनय, विनय, भर्त्सना और अपने प्राण देने की धमकी, एक-एक करके सब स्मृति-पटल पर अंकित हो गई।

उन्होंने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"भारतीय माताओं का यही अंध-प्रेम तो भारत की कितनी उज्ज्वल संतानों की उन्नति के मार्ग में बाधा साबित हुआ है।"

इसी समय कुसुमलता सवेग वहाँ आ गई। मनोरमा उठ खड़ी हुई। कुसुमलता उसे लेकर अपने कमरे में चली गई। डॉक्टर आनंदीप्रसाद उस दिन का समाचार-पत्र पढ़ने लगे।

कुसुमलता को एकांत में पाकर मनोरमा ने कहा—"आप तो हम लोगों को एकदम भूल गईं।"

कुसुमलता ने प्रेम से उसका कपोल चूमकर कहा—"और तुम्हें मेरी बड़ी याद रही, जो इतने दिनों तक ख़बर भी नहीं ली कि कुसुमलता ज़िंदा है, या मर गई।"

मनोरमा ने एक हल्की चपत उसके गाल पर मारकर कहा—"चुप, चुप, कोई ऐसा कहता है? ऐसे शुभ दिनों में कोई ऐसे कुवाक्य बोलता है।"

कुसुमलता ने हँसकर कहा—"अच्छा, पंडितानीजी, ग़लती हुई, माफ़ कीजिएगा।"

मनोरमा ने मुस्किराकर कहा—"धन्यवाद! आज आपने अपनी शादी के उपलक्ष में एक नवीन उपाधि से विभूषित तो किया। यह कौन कम इनाम है!"

कुसुमलता ने लजाकर, एक चपत लगाते हुए कहा—"मनोरमा, आज तो तुम बहुत बढ़-बढ़कर बातें कर रही हो। क्या बात है?"

मनोरमा ने उत्तर दिया—'समय मनुष्य का सबसे बड़ा गुरु है, वह सबको अवसर आने पर सब कुछ सिखा देता है। पहले मुझे बोलना न आता था, लेकिन अब सीख गई हूँ।"

कुसुमलता ने हँसकर कहा—"यही चार-पाँच दिनों में तुम्हें सब कुछ आ गया। यह क्यों नहीं कहतीं कि चार-पाँच दिनों का एकांत मिलने पर मिस्टर वर्मा ने सब सिखा दिया है।"

मनोरमा ने मुस्किराकर कहा—"अगर ऐसा होता, तो मैं कभी की निपुण हो गई होती।"

कुसुमलता ने मेज़ के पास जाकर एक किताब उठाते हुए पूछा—"तुम अकेली आईं, मिस्टर वर्मा नहीं आए? वह भला क्यों इस ग़रीबनी के घर आवेंगे।"

मनोरमा ने किताब छीनकर मेज़ पर फेंकते हुए कहा—"यह तो तुम जानो, और वह जानें। मैंने उनसे ज़रूर कहा था कि चलो, कुसुमलता की नवीन गृहस्थी देख आवें, तो उन्होंने कहा, 'आज तुम जाकर मिल आओ, कल तक मैं भी जाऊँगा। अभी मैं बाज़ार से ज़रूरी सामान ख़रीदने जाता हूँ।' दरअसल वह पिताजी के

साथ बाज़ार चले गए थे। तुमसे मिले चार दिन बीत गए थे, इस-लिये मैं मिलने चली आई। कहावत है, कुआँ मुहम्मद के पास नहीं आवेगा, तो मुहम्मद कुएँ के पास जायगा।"

कुसुमलता ने अपने मन की उठती हुई कसक को अपनी हँसी से छिपाते हुए कहा—"वाहरी मुहम्मद! मुसलमान तुम कब से हो गईं?"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"जब से तुमसे प्रेम किया।"

कुसुमलता ने हँसकर कहा—"जब तुम मेरे प्रेम में फँस गईं, तो मिस्टर वर्मा क्या करेंगे?"

मनोरमा ने कहा—"क्या करेंगे? साधू-संन्यासी हो जायँगे।"

कुसुमलता हँस पड़ी, और मनोरमा भी हँसने लगी।

इसी समय डॉक्टर आनंदीप्रसाद के साथ राजेंद्रप्रसाद ने आकर कुसुमलता को नमस्कार किया। उसके नेत्र मानसिक प्रसन्नता से चमकने लगे। वह नमस्कार का उत्तर देना भी भूल गई, और क्षण-भर उनकी ओर देख दूसरी ओर देखने लगी।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"लीजिए जनाब, मिस्टर वर्मा भी तशरीफ़ ले आए। आज दरअसल हम लोगों के लिये बड़े सौभाग्य का दिन है।"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"आप तो पूरे-पूरे लखनवी हो गए! हम लोग ऐसे कौन बड़े आदमी हैं, जो आप ऐसा फ़रमाते हैं।"

डॉक्टर आनंदी प्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"बड़े लोग अपने को खुद बड़ा नहीं कहते। यह आप ही की कृपा है, जो यह घर आबाद हुआ है।"

सब लोग हँसने लगे।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कुसुमलता से कहा—"आप अपने मेह-मानों को क्या अपने घर से भूखा भेजेंगी? अजी, इनके खाने-पीने का प्रबंध तो कीजिए।"

राजेंद्रप्रसाद ने आपत्ति करते हुए कहा—"ऐसी तकलीफ़ करने की कोई ज़रूरत नहीं है। हम लोग तो आपसे बिदा लेने के लिये आए हैं। कल दोपहर को मेल से हम लोग इलाहाबाद जायँगे।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने पूछा—"हम लोग के क्या माने? क्या मनोरमाजी भी आपके साथ जायँगी?"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"जी हाँ, बाबूजी ने इलाहाबाद ले जाने की अनुमति दी है। पीछे मैं इलाहाबाद से २६ जुलाई को वापस आऊँगा, और साथ लेता आऊँगा। तारीख़ ३० जुलाई को बंबई मेल से मैं बंबई के लिये रवाना हो जाऊँगा, और वहाँ से पहली अगस्त को जहाज़ पर बैठूँगा।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"आपने तो अपना सारा प्रोग्राम निश्चय कर लिया है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"क़रीब-क़रीब निश्चय हो गया है।"

कुसुमलता ध्यान-पूर्वक सुन रही थी। वह इतनी आत्मविस्मृत हो गई थी कि उसे यह ख़याल न रहा कि वह डॉक्टर आनंदीप्रसाद के कहने के माफ़िक़ रसोइए को बुलाकर हिदायत कर दे।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"तब तो आपको आज हमारे यहाँ ही भोजन करके जाना पड़ेगा। आपको फिर मौक़ा नहीं मिलेगा कि हमारे यहाँ आप भोजन करें। ख़ैर, मनोरमादेवीजी तो यहीं रहेंगी, और ऐसे अवसर तो हमें बराबर मिलते रहेंगे। यह नहीं हो सकता, मैं महराज से कहता हूँ कि वह आप लोगों के लिये भी भोजन बना ले। आप तशरीफ़ रखिए, कब तक खड़े रहिएगा?"

कुसुमलता को होश आया, उसने जाते हुए कहा—"मैं जाकर कहे आती हूँ, आप बातें करें।" यह कहकर वह चली गई।

राजेंद्रप्रसाद ने बैठते हुए कहा—"डॉक्टर साहब, आप तो ज़बरदस्ती करते हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"इसमें ज़बर्दस्ती की क्या बात है? क्या आपका कोई व्रत है, जो भोजन नहीं करेंगे?"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"जी नहीं, व्रत तो नहीं है, लेकिन बाबूजी और अम्माजी हम लोगों की राह देखेंगी, और परेशान होंगी।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"हाँ, यह अवश्य विचारणीय है। ठहरिए, मैं फ़ोन से बैरिस्टर साहब से निवेदन कर देता हूँ। यहाँ पड़ोस में ही डॉक्टर अग्रवाल के यहाँ फ़ोन है, अभी जाकर कहे आता हूँ। आपका नंबर क्या है?"

राजेंद्रप्रसाद ने देखा, किसी तरह छुटकारा नहीं मिलने का, तब कहा—"अच्छा, जब आप नहीं मानेंगे, तो आपके इच्छानुसार काम करना ही पड़ेगा। आप क्यों कष्ट करें, धूप बहुत तेज़ है, मैं जाकर कह आऊँगा।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने पूछा—"क्या आप डॉक्टर अग्रवाल से परिचित हैं?"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"जी हाँ, थोड़ा-सा परिचय अवश्य है। एक मर्तबे पहले भी मिल चुका हूँ, और अभी हाल में आपकी बारात में आए थे, तब से ज़्यादा जान-पहचान हो गई।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"तो चलिए, मैं भी चलूँ। डॉक्टर अग्रवाल बड़े ही सहृदय व्यक्ति हैं। एक मर्तबे मैं यहाँ बीमार पड़ गया था, उस वक़्त उन्होंने मेरी बहुत सेवा-शुश्रूषा की। दो दिन तक रात-दिन यहीं रहकर इलाज किया, और जब मैंने उन्हें फ़ीस देनी चाही, तो हँसकर धन्यवाद दिया, और कहा—'प्रेम और सौहार्द का मूल्य रुपयों में नहीं होता।"

राजेंद्रप्रसाद ने प्रशंसा-पूर्ण शब्दों में कहा—"ख़ूब! तब तो डॉक्टर अग्रवाल मनुष्य नहीं, देवता हैं। इसमें कोई शक नहीं कि वह हैं तो बड़े मिलनसार।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"उनमें इंसानियत कूट-कूटकर भरी है। इसी सहृदयता के कारण उनकी प्रैक्टिस भी ख़ूब है।"

कुसुमलता ने वापस आकर कहा—"महाराज बड़ा बुद्धिमान् है। उसने पहले से ही सारा इंतज़ाम कर लिया। भोजन लगभग तैयार है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"तब तो जाना फ़िज़ूल है।" फिर घड़ी देखकर कहा—"अभी पौने दस बजा है। मैं समझता हूँ, सवा दस बजे तक हम लोग खाने के लिये बैठ जायँगे, और ग्यारह बजे तक निबट जायँगे।"

कुसुमलता ने उत्सुकता से पूछा—"क्या कहीं जाना है?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने जवाब दिया—"जाना तो कहीं नहीं। मिस्टर वर्मा ने कहा कि बैरिस्टर साहब खाने के लिये इंतज़ार करेंगे, इसलिये हम लोगों ने यह निश्चय किया कि डॉक्टर अग्रवाल के यहाँ फ़ोन है, वहाँ जाकर उन्हें इत्तिला दे देवें कि मिस्टर वर्मा और मनोरमाजी आज यहाँ खाना खाएँगी, आप लोग इंतज़ार न करें। लेकिन जब आप कहती हैं कि खाना तैयार है, तब हम लोग जल्दी निबट जायँ, फिर जाने की क्या ज़रूरत।"

कुसुमलता ने कुछ तीव्र स्वर में कहा—"बारह बजे दोपहर को इन लोगों को वापस भेजेंगे क्या? यह कभी नहीं होने का? शाम तक यहीं रहना होगा। आज शाम को भोजन करने के बाद जाने दूँगी।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हँसकर कहा—"यह आप जानें।"

कुसुमलता ने दृढ़ता से कहा—"बेशक, रात को जायँगे।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हँसकर कहा—"मिस्टर वर्मा, अब आप बहाना नहीं कर सकते। ये होम-गवर्नमेंट के ऑर्डिनेंस हैं। चलिए, डॉक्टर अग्रवाल की शरण जाना ही पड़ेगा।"

राजेंद्रप्रसाद हँसने लगे। उन्होंने बहुत आपत्ति की, लेकिन कुसुमलताने कुछ नहीं सुना। हारकर वह डॉक्टर आनंदीप्रसाद के साथ डॉक्टर अग्रवाल के यहाँ फ़ोन करने चले गए।

दार्जिलिंग हिमाचल के चरणों के नीचे स्थित, भगवान् की पूजा के आयोजन में व्यस्त, प्रकृति के सुमधुर प्रसाद सौरभमय पुष्पों की अंजलि भरकर रानी मायावती को आह्वान कर रहा था। वह द्विधा की व्याकुल तरंगों में पड़कर डूब-उतरा रही थीं। उनके सामने एक अनिश्चित मार्ग था, एक अनजान संसार था, और एक अचिंत्य वेदना थी। अतीत तो उज्ज्वल रूप से चमक रहा था, जिसके एक कोने में विषाद-कालिमा इस तरह उन्हें विभीषिकामय बना रही थी, जैसे चंद्रमा को उसकी कालिमा कुरूप बनाती है।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने अपने बँगले में एक छोटा-सा तालाब खुदवाकर उसका संबंध पास ही बहते हुए प्राकृतिक स्रोत से कर दिया था, जिसे सहृदय हिमाचल सदैव अपने अशेष कोष से जल-दान देता रहता। उस तालाब में नील और रक्त वर्ण के कमल की लताएँ डाल दी गई थीं, जिनके पुष्प खिलकर दिन को सूर्य को अर्घ प्रदान करते, और रात्रि को आकाश की नीलिमा से प्रति-द्वंद्विता। रानी मायावती उसी के तट पर बैठी हुई अपने भाग्य की पहेली बूझने का निष्फल प्रयत्न कर रही थीं। परंतु ज्यों-ज्यों वह पहेली सुलझाने की कोशिश करतीं, त्यों-त्यों वह दुरूह होती और उलझी जाती थी। उनका आवेग शब्दों का रूप धारण कर संसार की विश्वासघातकता का तिरस्कार करने लगा। वह कहने लगीं—

"जीवन की मधुरता नष्ट हो गई। सुख-स्वप्न भंग हो गया। न-मालूम किसने एक ही फुफकार में, पल-भर में, मेरी आशाओं को भस्म कर राख में परिणत कर दिया। मेरी उमंगों, मेरी साध ने अपनी

लीला समाप्त कर नैराश्य, दुःख और वेदना के नृत्य के लिये मार्ग छोड़ दिया है। कभी मैं बुलबुल की तरह चहकती थी, स्रोतस्विनी की भाँति पृथ्वी-तल पर उमंगों के भार से दबी, इतराती हुई चल रही थी। मैं समझती थी, मेरा जीवन ऐसा ही सुखमय बीतेगा, परंतु यह भीषण गह्वर मैं उस समय नहीं देख रही थी, जिसमें आज मेरा सारा सौख्य गिरकर पाताल में प्रविष्ट हो गया है।

"उन्होंने युद्ध के लिये पिताजी को आह्वान किया है। क्या सत्य ही मेरे निमित्त इस परिवार में एक शोक-सूचक घटना घटेगी। इस युद्ध में मेरी ही हानि है—यदि विधवा होने से बचती हूँ, तो इधर पितृहीन होती हूँ, और यदि पिता की जीत होती है, तो मेरे लिये वैधव्य तो निश्चय ही है। यह भी तो संभव है कि विधवा और पितृहीन, दोनो हो जाऊँ। उफ़! कितनी मुश्किल समस्या है।

"बाबा का स्वभाव मैं जानती हूँ। क्रोध आने पर वह ब्रह्मा की भी नहीं सुनते। जिस बात का हठ ठान लेते हैं, वह फिर करते ही हैं, चाहे उनका सर्वस्व ही क्यों न नष्ट हो जाय। वह जितने भयंकर हैं, उतने सहृदय भी। गुरुतर-से-गुरुतर अपराध कर उनसे क्षमा माँग लो, तो क्षमा कर देंगे, लेकिन विरोध करने पर उसे वह समूल नष्ट करने में संकोच नहीं करते, चाहे वह उनका कितना ही सन्निकट संबंधी हो। उन्होंने युद्ध का निमंत्रण देकर अच्छा नहीं किया। ईश्वर ही रक्षा करे।

"जब से मैं आई हूँ, तब से मा भी निरंतर दुखी रहती हैं। मैं ऐसी अभागिनी पैदा हुई कि किसी को सुखी नहीं कर सकी। सर्वत्र किसी-न-किसी के लिये चिंताओं का समूह लेकर आती हूँ। ससुराल में पति के लिये दुःख का कारण थी—उनके ऐशो-आराम में कंटक थी, तो यहाँ आकर माता और पिता को संतप्त करती हूँ।

"बाबा कहते हैं, मैं सपरिवार ईसाई हो जाऊँगा, अगर दो-तीन

साल में तलाक़ का क़ानून नहीं बन गया। कैसी विकट समस्या है? मान लो, तलाक़ का क़ानून पास हो गया, फिर क्या होगा? उनसे मेरा संबंध-विच्छेद हो जायगा, और इस ग़ुलामी की ज़ंजीरें अपने आप टूट जायँगी। मैं स्वतंत्र हो जाऊँगी। यह सत्य है। लेकिन उसका क्या होगा, जो इस समय मेरे गर्भ में है, और जो रूपगढ़-राज्य का भावी उत्तराधिकारी है? क्या वह पथ का भिखारी होकर, अपने मामा की रोटियों का सहारा लेगा? इसके अतिरिक्त और क्या होगा। मुमकिन है, जब तलाक़ का क़ानून पास हो, तो संतान के अधिकारों के लिये भी कोई-न-कोई उपाय किया जायगा। यह भी तो मुमकिन है कि वह इसे ले जायँ, क्योंकि संतान पर अधिकार तो पिता का ही रहता है। अगर वह ले गए, तो मेरा क्या होगा? एक वही सहारा है, जिसकी आशा से अभी जीवित हूँ, और जिसके पैदा होने पर मेरे मन की अभिलाषाएँ तृप्त होंगी। अगर वह सहारा भी छिन गया, तो मेरा जीवन मेरे लिये स्वयं भार हो जायगा।

"अभी उस दिन बाबा ने कहा कि पहली अगस्त को इँगलैंड जाऊँगा। मैं जानती हूँ, वह क्यों जा रहे हैं। राउंड टेबिल-कान्फ्रेंस में सम्मिलित होना महज़ एक बहाना है। वह जा रहे हैं उनसे युद्ध करने। फ्रांस या स्वीटज़रलैंड में कहीं यह युद्ध होगा, और भगवान् जानें, उसका परिणाम क्या होगा? जब से बाबा ने इँगलैंड जाने की बात कही, तब से मा निरंतर सोच में पड़ी रहती हैं। वह मुझसे भी नहीं कहतीं कि उन्हें कौन दुःख है। कहें भी, तो क्या कहें!"

मायावती अपनी चिंताओं में व्याकुल थीं कि नरेंद्रकिशोर ने आकर कहा—"दीदी, तुम तो यहाँ बैठी हो, और वहाँ बाबा तुम्हें बुला रहे हैं।"

माया की चिंताएँ सिमटकर एकत्र हो आईं। उत्तर दिया—"क्या बाबा आ गए, वह तो काउंसिल गए थे।"

कुँवर नरेंद्रकिशोर ने रानी मायावती की उँगली पकड़ते हुए कहा—"वह तो कब के आ गए। बाबा आज एक बड़ी अच्छी किताब लाए हैं, जिसमें बहुत-सी तसवीरें हैं, वही किताब देने के लिये तुम्हें बुला रहे हैं।"

रानी मायावती ने उठते हुए कहा—"चलो, देखूँ, वह कौन किताब है।"

कुँवर नरेंद्रकिशोर के साथ चिंता से मलीन मायावती राजमहल की ओर गईं।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने मायावती को देखकर कहा—"माया, तुम कहाँ थीं, मैं बड़ी देर से परेशान हूँ।"

मायावती ने सिर नत कर कहा—"तालाब के किनारे बैठी थी।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने उसके शुष्क मुख की ओर देखकर कहा—"मैं देखता हूँ, तुम दिन-पर-दिन दुबली और कमज़ोर होती जा रही हो। तुम्हें कोई बीमारी तो नहीं है?"

मायावती ने उत्तर दिया—"नहीं, मैं बीमार तो नहीं हूँ। आपने मुझे बुलाया था?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने मेज़ की ओर इशारा करके कहा—"वहाँ देखो, एक किताब रक्खी है। इसमें योरप के सारे शहरों का हाल है। वहाँ की रीति-रस्म का भी हाल है। इसे पढ़ने से तुम्हारा मन बहलेगा, और वहाँ का सारा हाल भी मालूम हो जायगा।"

रानी मायावती ने किताब देखते हुए कहा—"बाबा, मैं भी आपके साथ इँगलैंड चलूँगी।"

कुँवर नरेंद्रकिशोर ने माया की उँगली पकड़कर कहा—"दीदी, मैं भी चलूँगा।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने सहर्ष कहा—"यह तो बड़ी अच्छी बात है, तुम दोनो भाई-बहन चलो। ठीक तो है। भ्रमण करने से मनुष्य का ज्ञान बढ़ता है, और तुम्हारी सारी चिंताएँ मिट जायँगी।"

रानी किशोरकेसरी ने उस कमरे में आकर कहा—"क्या बातें हो रही हैं? कहाँ जाने के मनसूबे बाँधे जा रहे हैं?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"तुम भी चलकर संसार को कुछ देख-भाल लो। न-मालूम कैसी तुम हो, जो कहीं आने-जाने का मन नहीं करतीं।"

रानी किशोरकेसरी ने मुस्किराकर कहा—"कहाँ चलना है?"

मायावती ने अपनी मा के पास जाकर कहा—"आओ, हम लोग बाबा के साथ इँगलैंड चलें। यह तो देख आवें कि वहाँ लोग कैसे रहते हैं। बाबा की भी इच्छा है कि हम लोग चलें, फिर चलने में क्या आपत्ति है?"

रानी किशोरकेसरी ने कुछ सोचते हुए कहा—"चलने में तो कोई आपत्ति नहीं, केवल वापस आकर प्रायश्चित्त करना पड़ेगा।"

राजा भूपेंद्रकिशोर हँसने लगे।

रानी किशोरकेसरी ने अप्रतिभ होकर कहा—"तुम यह सब नहीं मानते, लेकिन मुझे तो मानना पड़ता है। संसार लेकर मैं बैठी हूँ। अगर यह सब न करूँ, तो कल दुनिया हँसेगी नहीं?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"ठीक है, मेरी तरफ़ से तुम दो बार प्रायश्चित्त कर लेना। इसमें मेरी कोई हानि नहीं।"

फिर माया से कहा—"माया, तुम जानती हो, प्रायश्चित्त क्या है? गाय का पेशाब पीने से अंतरात्मा पवित्र हो जाती है।"

यह कहकर वह हँसने लगे।

रानी किशोरकेसरी ने मन-ही-मन कुढ़कर कहा—"देखा, मुझे

सब अच्छा लगता है, लेकिन जब तुम हमारे रीति-रिवाज की हँसी उड़ाते हो, तो मुझे बिलकुल अच्छा नहीं लगता।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने मायावती से कहा—"देखो माया, तुम्हारी मा हिंदू-धर्म की ठेकेदारिन है, और मैं बहुत जल्द ईसाई होनेवाला हूँ, फिर क्या होगा ?"

रानी किशोरकेसरी ने सरोष कहा—"फिर क्या होगा, मेरी कपाल-क्रिया होगी। ईसाई होने की धमकी, जब देखो, तब यही बात।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने प्रसन्न होते हुए कहा—"ठीक तो है, क्या मैं झूठ कहता हूँ। हम लोग इँगलैंड जाते हैं। वहाँ जाकर किसी गिरजे में ईसाई-धर्म ग्रहण कर लेंगे। तब तुम क्या करोगी ? क्या फिर तुम हम लोगों से अलाहिदा रहोगी ?"

रानी किशोरकेसरी ने रुष्ट स्वर में कहा—"ईसाई हो जाओगे, तो मेरा क्या लोगे ? अभी ईसाइयों के साथ खाते-पीते हो, केवल रविवार-रविवार गिरजा नहीं जाते, सो वह भी जाना शुरू कर देना।"

मायावती ने हँसी रोकते हुए कहा—"मा, तुम भी बाबा की बातों में लगी हो। फ़िज़ूल की बातों से क्या फ़ायदा है ? कौन ईसाई होता है, महज़ तुम्हें चिढ़ाने के लिये कहते हैं।"

रानी किशोरकेसरी ने कमरे के बाहर जाते हुए कहा—"ईसाई हो भी जायँगे, तो मेरा कुछ नहीं बिगड़ने का। नरेंद्र को लेकर मैं अलग रहूँगी।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने बुलाते हुए कहा—"यहाँ तो आओ। तुम तो नाराज़ होकर चली गईं।"

रानी किशोरकेसरी नहीं आईं।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने नरेंद्र से कहा—"नरेंद्र, जाकर अपनी मा

को ले आओ।" फिर माया से कहा—"तुम भी जाओ माया, नहीं तो वह नरेंद्र को मारेगी।"

नरेंद्र और मायावती, दोनो रानी किशोरकेसरी को बुलाने चले गए।

रानी किशोरकेसरी ने पीछे आकर कहा—"क्या कहते हो?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"तुम तो बिलकुल छुईमुई हो गई हो। बैठो। कहता हूँ।"

रानी किशोरकेसरी ने कुरसी पर बैठते हुए कहा—"अच्छा, अब फ़रमाइए।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने गंभीरता से कहा—"देखो, माया दिन-पर-दिन दुबली होती जा रही है। यहाँ उसका स्वास्थ्य अच्छा नहीं रहता, और न रह सकता है, इसलिये हम लोग अगर इँगलैंड चलें, तो क्या हर्ज है? मेरा विचार वहाँ दो-तीन साल रहने का है। अगर माया के वहाँ पुत्र उत्पन्न होगा, तो उसे हमसे अधिक अधिकार प्राप्त होंगे। इसमें हम लोगों का कल्याण है। फिर जैसी तुम्हारी राय हो।"

रानी किशोरकेसरी ने उत्तर दिया—"यह तो सत्य है, माया दिन-पर-दिन सूखती जाती है। यहाँ वह सुखी नहीं रह सकती। जाने में कोई हर्ज नहीं। अगर ऐसा ही मन है, तो चलो, मैं तैयार हूँ। लेकिन वहाँ दो-तीन साल ठहरकर क्या करेंगे?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"कुल योरप देखने का इरादा है। नरेंद्र को भी किसी स्कूल में भरती करा देंगे। तुम देखोगी कि वहाँ यह कैसा पढ़ता है। हिंदुस्थानी शिक्षा का ढंग ही ऐसा ख़राब है, जिससे बालकों का पढ़ने में बिलकुल मन नहीं लगता। वहाँ नरेंद्र ख़ुद-ब-ख़ुद पढ़ेगा। वहाँ का जल-वायु भी बहुत बलवर्धक है। माया की चिंताएँ वहाँ एकदम ख़त्म हो जायँगी।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"जब ऐसा हो, तो चलो।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"तब मैं इंतिज़ाम करूँ ? यह न हो कि पीछे कहो कि मैं न जाऊँगी।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"हाँ, पहली अगस्त को चलना है। दिन तो थोड़े हैं। किसी दूसरे जहाज़ से चलें, तो क्या हर्ज है ?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने उठते हुए, प्रसन्न कंठ से कहा—"मैं सब इंतिज़ाम कर लूँगा। तार देकर अभी तीन केबिन रिज़र्व कराए लेता हूँ। पहली अगस्त को जाने में बड़े-बड़े आदमियों से तुम्हारा परिचय हो जायगा, क्योंकि उस जहाज़ से बहुत नेता सपरिवार जा रहे हैं।"

यह कहकर वह प्रसन्न मन से बाहर चले गए। रानी किशोर-केसरी सोचने लगीं—"मैं जानती हूँ कि वह क्यों इँगलैंड जा रहे हैं। वहाँ जमाई से युद्ध करेंगे। ऐसे अवसर पर मुझे साथ रहना आवश्यक है, जिसमें कोई अनिष्ट न होने पावे।"

माया ने आकर कहा—"मा, क्या बाबा इंतिज़ाम करने के लिये गए ?"

रानी किशोरकेसरी ने उत्तर दिया—"हाँ, वह गए हैं। चलो, आज शाम को हम लोग भी अपने लिये गरम कपड़े ले आवें।"

नरेंद्र ने माया का हाथ पकड़कर कहा—"दीदी, मैं भी नए-नए कपड़े लाऊँगा।"

रानी किशोरकेसरी ने उसे झिड़कते हुए कहा—"हाँ-हाँ, तू भी लेना। चुप रह !"

नरेंद्र भर्त्सना का प्रसाद पाकर चुपचाप अपनी दीदी का हाथ पकड़े रहा। रानी किशोरकेसरी कुछ सोचती हुई कमरे में बैठी रहीं।

(१६)

कहते हैं, दिन जाते देर नहीं लगती, और सुख के दिन तो पंख लगाकर ही आते हैं, जिसमें वियोग की निश्चित घड़ी तो सत्य ही बहुत जल्द आ जाती है। मनोरमा बड़ी आकुलता से पहली अगस्त को याद करती, उसे ख़याल आता कि अभी दस दिन, आठ दिन, छ दिन बाक़ी हैं, कुछ उद्विग्न हृदय को शांति मिलती, परंतु जब चार दिन अवशेष रह गए, तो उसका हृदय रोने लगा। वास्तव में चार दिन बाद तो वह चले जायँगे। यह सोचती हुई मनोरमा अपनी ससुराल से लखनऊ आई। उसकी सास ने चलते समय आँखों में अश्रु भरकर कहा—"बहू, तुम भी जाती हो, रज्जू भी जाता है, यह तो कहो, यह दुखिया किसका आश्रय लेकर रहेगी?"

राजेंद्र की मा गौरी फूट-फूटकर रोने लगी। मनोरमा का कोमल हृदय द्रवित हो गया। उसने उनकी चरण-रज सिर पर लगाते हुए कहा—"अम्मा, उन्हें विदा कर तुम्हारे चरणों की सेवा के लिये आऊँगी, तुम विश्वास रक्खो।"

गौरी ने आशीर्वाद देकर कहा—"तुम्हारी इच्छा।"

मनोरमा ने फिर कहा—"नहीं, मैं ज़रूर आऊँगी, तुम लालाजी को मुझे लेने को भेज देना, मैं अवश्य आकर तुम्हारी सेवा करूँगी।"

लालाजी से मतलब राजेंद्र के छोटे भाई मनमोहन से था।

सास ने आशीर्वाद देकर पुत्र और बहू को विदा किया। मा का ममता-पूर्ण हृदय रोता हुआ रह गया।

रास्ते में राजेंद्र ने पूछा—"क्यों, क्या तुमने जो कुछ अम्मा से

कहा, सच कहा है, या सिर्फ़ कातर हृदय को ढाढ़स दिया है ?"

मनोरमा ने अश्रु-पूर्ण नेत्रों से कहा—"नहीं, मैंने सच कहा है। मैं ज़रूर यहाँ आकर उनकी सेवा में वियोग के दिन व्यतीत करूँगी।"

राजेंद्रप्रसाद कुछ सोचने लगे, और मनोरमा भी कुछ सोचने लगी। स्टेशन पर आकर वे पैसेन्जर में बैठ गए। पैसेन्जर प्रयाग-स्टेशन से पेशावर-मेल से मिलने के लिये चल दिया। पति-पत्नी, दोनो अपनी-अपनी चिंता में लीन थे। प्रतापगढ़ में गाड़ी बदलना था। राजेंद्र ने कहा—"आज मेल कुछ लेट मालूम होता है। तब तक कुछ जल-पान कर लो।"

मनोरमा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह उनके साथ रिफ्रेशमेंट रूम में चली गई। राजेंद्र ने एकांत पाकर पूछा—"क्या कारण है, कुछ बोलतीं नहीं ?"

मनोरमा ने मलीन स्वर से कहा—"आठ दस दिनों में अम्मा से बड़ी मुहब्बत हो गई। उनको छोड़ते हुए न-मालूम जी कैसा होता है। मुझे ऐसा मालूम होता है कि शायद इस जीवन में अब उनके दर्शन नहीं होंगे, जो कुछ मैं कह आई हूँ, वह झूठ है।"

राजेंद्र ने मुस्किराकर कहा—"पहलेपहल बिछुड़ने में ऐसा ही मालूम होता है। अगर अम्मा से मुहब्बत है, तो वह तुम्हारी हैं। जब तक मैं न आऊँ, तब तक दस-पंद्रह दिन लखनऊ में, और दस-पंद्रह दिन यहाँ रहना।"

ब्वॉय बर्फ़ और दो आइसक्रीम की बोतलें खोलकर रख गया।

राजेंद्रप्रसाद ने गिलास में बोतल ढालते हुए कहा—"लो, पिओ। तुम्हारा परेशान दिमाग़ कुछ शांत होगा।"

मनोरमा बेमन गिलास उठाकर पीने लगी।

राजेंद्रप्रसाद ने विषय बदलते हुए कहा—"मिस ट्रैवीलियन से

बहुत दिनों से मुलाक़ात नहीं हुई, आज शाम को चलकर मिल आवेंगे।"

मनोरमा ने कोई उत्तर नहीं दिया। राजेंद्रप्रसाद ने कुछ देर प्रतीक्षा करके कहा—"मिस ट्रैवीलियन बड़ी निःस्वार्थ रमणी है। उसने अपना जीवन हमारे समाज के उत्थान के लिये उत्सर्ग कर दिया है।"

मनोरमा फिर भी उत्साहित नहीं हुई। उसने कोई प्रत्युत्तर नहीं दिया।

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"तुम बोलतीं क्यों नहीं। यह मौन-रोग कब से हो गया?"

मनोरमा ने मलीन हँसी के साथ कहा—"क्या कहूँ। मेरा मन तो अम्मा के पास रक्खा है। वह अकेले कैसे रहेंगी। मैंने ग़लती की, जो चली आई। मुझसे उनको और उनको मुझसे शांति मिलती। समवेदना का दूसरा नाम है शांति।"

राजेंद्रप्रसाद ने गिलास मेज़ पर रखते हुए कहा—"सत्य है, समवेदना सौहार्द का चिह्न है। जहाँ एक दूसरे को सहानुभूति प्राप्त है, वहाँ प्रेम है।"

मनोरमा ने गिलास रखते हुए कहा—"क्या ही अच्छा हो, यदि हम सब लोग एक साथ सदैव रहें, कभी एक दूसरे से पल-भर जुदा न हों।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"यह आशा अच्छी है, लेकिन यह भी सत्य है कि बिना वियोग के मिलन का आनंद नहीं आता। रात्रि की प्रतीक्षा तभी होती है, जब दिन में वियोग होता है।"

मनोरमा ने म्लान मुख से कहा—"तुम मुझसे जुदा होगे, इसमें क्या आनंद है? मेरा मन तो विकल हो रहा है, लेकिन तुम कहते हो कि आनंद है।"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"इस वियोग के बाद जब हमारा-तुम्हारा मिलन होगा, तब तुम्हें इससे अधिक सुख प्राप्त होगा, जितना आज तुम दुःख से कातर हो रही हो।"

मनोरमा ने अपने डबडबाए हुए नेत्रों से कहा—"अगर इस दरम्यान मैं मर गई, तो......"

राजेंद्रप्रसाद ने एक प्रेम-भरी झिड़की से कहा—"सखी, आज तुम्हें क्या हो गया है, जो ऐसे अपशकुन के शब्द निकालती हो। यह दूसरा मर्तबा है, जब तुमने ऐसे ख़राब शब्द निकाले हैं। अगर तुम्हारी ऐसी ही इच्छा है, तो तुम भी मेरे साथ चलो, या अगर कहो, तो मैं जाना बंद कर दूँ। मैं तुम्हें ऐसी अवस्था में छोड़कर कहीं नहीं जा सकता। यह कहते हुए तो तुम्हें कुछ नहीं मालूम होता, लेकिन इनका असर मेरे कलेजे पर क्या पड़ता है, जानती हो?"

मनोरमा ने एक विषाद-पूर्ण स्वर से कहा—"मैं जानकर नहीं कहती, मेरे मुँह से अपने आप निकलता है। मैं क्या करूँ?"

राजेंद्रप्रसाद ने सांत्वना-पूर्ण स्वर में कहा—"तुम सोचते-सोचते परेशान हो रही हो, इसलिये ऐसी निराश हो रही हो। तुम धैर्य रक्खो, कातर मत हो। साहस से काम लो।"

मनोरमा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसके हृदय के आवेग ने उसका कंठ अवरोध कर लिया, और वह आवेग आँखों से बाहर निकलने का उपक्रम करने लगा। इसी समय पेशावर-मेल प्रतापगढ़-स्टेशन पर आकर खड़ा हो गया। एक कोलाहल गूँज गया; सोता हुआ स्टेशन जाग पड़ा। मनोरमा का आवेग चकित होकर उसके गले के नीचे उतरकर कहीं विलीन हो गया।

राजेंद्रप्रसाद ने उसका हाथ पकड़कर उठाते हुए कहा—"चलो, अब गाड़ी में बैठें। इधर-उधर का दृश्य देखने से तुम्हारा व्याकुल मन कुछ शांत होगा।"

राजेंद्रप्रसाद ने बिल चुकाया, और ब्वॉय को 'टिप' देकर कहा—"आइए, चलें।"

मनोरमा मंत्र-मुग्ध की भाँति उनके पीछे-पीछे चल पड़ी।

पेशावर-मेल अपने साथ एक बड़ा मेला लेकर आता है। मिस्टर राजेंद्रप्रसाद भीड़ से बचते हुए धीरे-धीरे जा रहे थे कि अकस्मात् उनकी दृष्टि एक फ़र्स्ट क्लास गाड़ी की खिड़की से झाँकती हुई मिस ट्रैवीलियन पर पड़ी। दोनो एक दूसरे को पहचानकर मुस्किरा दिए, और मिस ट्रैवीलियन का चेहरा प्रफुल्लित हो गया। परंतु मनोरमा—मलीन, अन्यमनस्क मनोरमा—को देखकर उसकी उत्फुल्ल मुख-श्री अंतर्हित हो गई। ईर्ष्या से उसका सुंदर मुख काला हो गया। किंतु यह परिवर्तन केवल क्षणिक था। दूसरे क्षण एक मनोहर मुस्कान उनका स्वागत करने के लिये उत्सुक थी।

उसने उठकर गाड़ी का दरवाज़ा खोलते हुए कहा—"आइए, तशरीफ़ लाइए। आज बड़ा भाग्य था, जो आपके दर्शन अनायास हो गए। कुसुमलता की शादी के बाद आज आपसे साक्षात् हुआ है। आप कहाँ से तशरीफ़ ला रहे हैं? लखनऊ ही चलेंगे, या कहीं आगे जाने का इरादा है? मैं भी अभी आकर बैठी हूँ।"

यह कहकर उसने मनोरमा को अभिवादन किया। मनोरमा एक म्लान हँसी से प्रत्युत्तर देकर सीट पर बैठ गई।

राजेंद्रप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"अभी-अभी हम लोग आपकी ही याद कर रहे थे कि आपके दर्शन हुए। हम लोग इलाहाबाद से आ रहे हैं। मैं घर गया था, अब परसों मेल से बंबई के लिये रवाना होकर पहली अगस्त को जहाज़ पर बैठूँगा। आज हम लोगों ने अभी-अभी यह तय किया था कि आज शाम को आपसे बिदा लेने के लिये आपके बँगले जायँगे, लेकिन भाग्य से आपसे साक्षात् ही हो गया।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक बंकिम कटाक्ष निक्षेप करके कहा—"यह नहीं हो सकता, आपको मेरा घर पवित्र करना होगा। अच्छा, आज नहीं, कल आपको मिसेज़ वर्मा के साथ हमारा आतिथ्य ग्रहण करना पड़ेगा। नहीं-नहीं, मैं आपकी कोई आपत्ति नहीं सुनने की। समय बहुत है। दो घंटा समय आप अनायास मेरे लिये निकाल सकते हैं। चाहे जो हो, आपको निमंत्रण स्वीकार करना ही पड़ेगा।"

राजेंद्रप्रसाद ने बहुत आपत्ति की, मगर मिस ट्रैवीलियन ने कुछ ध्यान नहीं दिया। अंत में उनको स्वीकार करना पड़ा।

राजेंद्रप्रसाद ने पूछा—"अगर कुछ आपत्ति न हो, तो बतलाइए, आप इधर कहाँ गई थीं?"

मिस ट्रैवीलियन ने वीणा-विनिंदक हास्य के साथ कहा—"मुझे क्या; आपत्ति होगी। मेरा जीवन तो सार्वजनिक जीवन है। सेवा मेरा व्रत है। मिस्टर वर्मा, मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मेरा कोई 'प्राइवेट' या अपना निजी गुप्त कोई भेद नहीं। मेरा जो प्राइवेट जीवन है, वही पब्लिक जीवन है।"

राजेंद्रप्रसाद ने विश्वास दिलानेवाली हँसी के साथ कहा—"मुझे मालूम है, जिस प्रकार आपने अपना जीवन हमारे हिंदू-समाज की सेवा में अर्पित कर दिया है। यह मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि हमारा हिंदू-समाज आपकी सेवाओं के लिये हमेशा कृतज्ञ रहेगा।"

मिस ट्रैवीलियन ने आत्मसंतोष की हँसी से कहा—"धन्यवाद! हाँ, मैं कुछ चंदा इकट्ठा करने के लिये प्रतापगढ़ आई थी। राजा वीरपालसिंह से मिलने आई थी, और विशेष अधिवेशन के लिये, जो दिसंबर में होगा, चंदा वसूल करने आई थी। रूपगढ़ की रानी साहिबा के त्याग-पत्र देने से इस सभा का सारा भार मेरे सिर पर आ पड़ा है।"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्सुकता से पूछा—"राजा प्रकाशेंद्र तो अभी तक उसके संरक्षक हैं, या उन्होंने भी अपनी रानी के साथ त्याग-पत्र दे दिया है ?"

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराकर कहा—"नहीं, वह तो अभी संरक्षक हैं।"

फिर विषय बदलते हुए कहा—"मेरी एक छोटी-सी प्रार्थना है।"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्कंठित स्वर में पूछा—"फ़रमाइए।"

मिस ट्रैवीलियन ने मनोरमा की ओर देखते हुए कहा—"आपसे नहीं, मिसेज़ वर्मा से। वह अगर स्वीकार करें, तो कहूँ।"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"वह स्वीकार क्यों न करेंगी ? आप कहें तो।"

मिस ट्रैवीलियन ने संकोच-भरे शब्दों में कहा—"आपके जाने के बाद मिसेज़ वर्मा तो बिलकुल ख़ाली रहेंगी। अगर वह मेहरबानी करके हमारी सभा की 'सेक्रेटरी' होना स्वीकार कर लें, तो मुझे बड़ी सहायता मिले।"

मनोरमा ने, जो अभी तक अपनी ही चिंता में विलीन थी, सचेत होकर उत्तर दिया—"आपकी कृपा के लिये मैं हृदय से धन्यवाद देती हूँ, लेकिन विश्वास दिलाती हूँ कि मुझमें यह योग्यता नहीं है।"

मनोरमा के स्वर में नीरसता और किसी हद तक कठोरता का आभास था।

मिस ट्रैवीलियन घृणा से अपना सिर खिड़की के बाहर निकालकर प्लेटफ़ार्म की ओर देखने लगी।

पेशावर-मेल सीटी देकर स्टेशन छोड़ चुका था। थोड़ी देर के लिये तीनो व्यक्ति अपनी-अपनी चिंता में लीन हो गए। पेशावर-मेल लखनऊ पहुँचने के लिये वेग से दौड़ने लगा।

कुसुमलता ने एक लंबी साँस लेकर कहना शुरू किया—"वह जा रहे हैं, कल चले जायँगे, और फिर वर्षों तक उनके दर्शन नहीं होंगे। ज्यों-ज्यों मैं उन्हें अपने मन से विसर्जन करने का प्रयत्न करती हूँ, वह मेरे समीप आते जाते हैं। उन्हें भूलना मेरी सामर्थ्य के बाहर की बात है। मैं यह स्वीकार करती हूँ कि मैं अपने साथ, अपने पति के साथ, विश्वासघात कर रही हूँ, किंतु क्या करूँ, मैं लाचार हूँ, मैं अपनी स्वामिनी आप नहीं हूँ।

"उस दिन वह मेरे यहाँ आए और ठहरे, लेकिन आँखें भरकर उन्हें नहीं देख पाई। मनोरमा की दृष्टि बराबर मेरी ओर लगी रही। मेरे मन में साहस नहीं हुआ कि उन्हें जी भरकर देख लूँ। हाँ, कल वह चले जायँगे, और फिर मैं उन्हें न देख पाऊँगी। न-मालूम क्यों मेरा मन बार-बार व्याकुल होता है। ऐसा तो कभी नहीं हुआ।

"मैं पतन की ओर जा रही हूँ, धीरे-धीरे उस गंभीर गह्वर की ओर अग्रसर हो रही हूँ, जिसे पाप कहते हैं, पतन कहते हैं, विश्वास-घात कहते हैं। मैं अब मनुष्य से पशु हो रही हूँ। कैसी विभीषिका है। मैं अपनी नहीं, वह अपने नहीं, लेकिन फिर भी यह विचार! क्यों? इसका उत्तर मुझे कुछ नहीं मिलता।

"मनोरमा भी कातर है, मेरी तरह दुखी है। लेकिन उसकी दशा मुझसे अच्छी है। वह अपना दुःख प्रकाश कर सकती है, और दूसरे लोग भी उसे सांत्वना दे सकते, उसके दुःख के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित कर सकते हैं, परंतु मुझे तो यह शोक अपने आप वहन करना पड़ेगा। अकेलापन भी कितना त्रासदायक होता है।

"मैंने यह विवाह ही क्यों किया? अपने सिर पर एक व्यर्थ का बोझ ले लिया। उन्होंने कहा था कि ऐसी हालत में विवाह न करना ही हितकारी है, परंतु पिता के कारण मुझे करना पड़ा। अब जब ओखली में सिर दिया, तो मूसलों से डर क्या? मुझे आवश्यक है कि मैं पवित्रता के साथ अपना जीवन व्यतीत करूँ, परंतु अभागा मन नहीं मानता। यह अपने आप उनकी ओर खिंचा जाता है। मैं इस पर विजय प्राप्त करूँगी।"

कुसुमलता के कमरे का द्वार खुला, और डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने आकर कहा—"आज क्या सोच रही हो?"

कुसुमलता आजकल अपने पिता के घर चली आई थी, और जस्टिस सर रामप्रसाद के अनुरोध से डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने वहाँ रहना स्वीकार कर लिया था।

कुसुमलता ने उठते हुए कहा—"मैं सोच रही थी कि आगे एम्० ए० पढ़ूँ या नहीं।"

असलियत छिपाकर झूठ बोलना विश्वासघात का प्रथम लक्षण है।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया—"एम्० ए० पढ़ने में क्या बुराई है?"

कुसुमलता ने मुस्किराकर कहा—"मुझे कॉलेज जाते अब अच्छा नहीं लगता।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"क्यों, कैसा मालूम होता है?"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"आप वहाँ पढ़ाते हैं, बदमाश लड़के छेड़खानी से बाज़ नहीं आएँगे।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हँसकर कहा—"क्या छेड़खानी करेंगे? सिर्फ़ यही कहेंगे कि मिसेज़ प्रसाद एम्० ए० में पढ़ती हैं। यह सत्य है। सत्य कहने में छेड़खानी नहीं है।"

कुसुमलता ने कहा—"अच्छा, मनोरमा से पूछूँगी, अगर वह तैयार होंगी, तो मैं भी चलूँगी, वरना अब इतिश्री समझिए।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने बैठते हुए कहा—"आप तो बैठने को न कहेंगी, क्या करूँ, अपने आप बैठ जाऊँ।"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"आप मेहमान तो नहीं हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"जी नहीं, मेहमान होने का सौभाग्य तो मिस्टर राजेंद्रप्रसाद को प्राप्त है।"

जिस प्रकार पके हुए बलतोड़ पर हाथ लगने से मनुष्य सिहर उठता है, उसी तरह कुसुमलता भी सिहरकर भयभीत नेत्रों से उनकी ओर देखने लगी। डॉक्टर आनंदीप्रसाद उस समय मुँह फिराकर एक चित्र की ओर देख रहे थे। उसने एक संतोष-पूर्ण निःश्वास लेकर बड़ी सावधानी से कहा—"हाँ, मेहमान तो वह ज़रूर हैं, मेरी बाल-सखी के पति हैं, परंतु आप तो इस घर के मालिक हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद हँसने लगे।

थोड़ी देर बाद डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"कल मिस्टर वर्मा बंबई जायँगे, तुम क्या मनोरमा के साथ बंबई न जाओगी?"

कुसुमलता सतर्क हो चुकी थी। उसने आँखें नीची करके कहा—"आज बाबूजी से कहूँगी, वह भी तो चलने को कहते थे। क्या आपका चलने का इरादा नहीं है?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने एक मुस्कान-सहित कहा—"मुझसे कोई चलने को कहता ही नहीं।"

कुसुमलता ने ज़ोर से हँसकर कहा—"अच्छा, मैं कहती हूँ, आप चलिए।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया—"धन्यवाद! लेकिन

उसी दिन तो कॉलेज खुल रहा है। किस तरह जा सकता हूँ। आप ही आइए। और, न मेरे जाने की कोई ऐसी ज़रूरत है।"

कुसुमलता कुछ उत्तर देने जा रही थी कि मनोरमा ने आकर बाहर से पुकारा—"क्या मैं आ सकती हूँ ?"

कुसुमलता उठ खड़ी हुई। डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"आइए, तशरीफ़ लाइए। लेकिन पहले यह तो बताइए, आपको आज्ञा लेने की आज क्या नई धुन सूझ गई ?"

मनोरमा के उत्तर देने के पहले ही कुसुमलता ने कहा—"आप इसका रहस्य नहीं समझ सके, मैं जानती हूँ।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्सुकता-पूर्वक कहा—"अच्छा, आप ही बतलाइए।"

मनोरमा ने उसके पास आकर, बहुत ही धीमे स्वर में कहा—"अगर कुछ कहा, तो ठीक न होगा। तुम्हें मेरी क़सम, जो कुछ भी कहो।"

कुसुमलता हँसने लगी। डॉक्टर आनंदीप्रसाद का कुतूहल बढ़ गया। उन्होंने फिर पूछा—"क्या मुझे बतलाने की आज्ञा नहीं है ?"

मनोरमा ने मुस्किराकर कहा—"इनकी बातें हैं, आप भी इनकी बातों में पड़े हैं।"

कुसुमलता ने कहा—"तो क्या मैं कह दूँ ?"

मनोरमा ने अपने नेत्रों से निषेध करते हुए कहा—"नहीं, नहीं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने देखा, मनोरमा की इच्छा ज़ाहिर करने की नहीं है, उन्होंने कोई दबाव देना उचित नहीं समझा।

उन्होंने विषय बदलते हुए कहा—"मिस्टर वर्मा कहाँ हैं। वह क्यों नहीं आए। कल दोपहर को मेल से जाना निश्चित है ?"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"जी हाँ ! कल दोपहर को हम सब लोग जायँगे। पापा, अम्मा, कुसुम, बाबूजी (सर रामप्रसाद) और आप, सबको चलना होगा। क्या आपका इरादा जाने का नहीं है ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया—"हाँ, इरादा तो ऐसा ही है, क्योंकि कॉलेज पहली अगस्त को खुलता है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने पुनः पूछा—"मिस्टर वर्मा कहाँ हैं ?"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"वह बाहर बड़े बाबूजी (सर रामप्रसाद) से बातें कर रहे हैं।"

इसी समय नौकर ने आकर कहा—"सर साहब आप सबको याद फ़रमा रहे हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उठते हुए कहा—"आप लोग भी आइए; देखें, क्यों बुला रहे हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद चले गए। कुसुमलता ने मनोरमा से कहा—"उनको बुलाते होंगे, तुम यहीं बैठो। बेवक़ूफ़ गोकुल कह गया कि सबको बुला रहे हैं।"

मनोरमा फिर कुरसी पर बैठ गई।

कुसुमलता ने कहा—"मन्नी, तुमने अपनी ससुराल के हाल-चाल तो बताए नहीं। तुम्हारी सासजी तो अच्छी हैं ?"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"हाँ, वह अच्छी हैं। कुसुम, ऐसी देवी तो शायद ही संसार में कहीं दर्शन करने को मिले। मैं तो आठ-दस दिनों में ही उनके प्रेम में ऐसी फँस गई कि जब कल आती थी, तो मुझे रोना आता था। सचमुच वह मानवी नहीं, देवी हैं।"

मनोरमा का घाव हरा हो गया। वह फिर उनके बारे में सोचने लगी।

कुसुमलता ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह उसकी दशा से अपनी तुलना करने लगी। तुलना ईर्ष्या का प्रथम रूप है।

मनोरमा ने कहा—"कल प्रतापगढ़ में अचानक मिस ट्रैवीलियन से मुलाक़ात हो गई। बक-बक करके तमाम रास्ते-भर मेरा सिर चाट गई।"

इसी समय गोकुल ने फिर आकर कहा—"सर साहब आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, कोई ज़रूरी काम है।"

कुसुमलता ने बेमन उठते हुए कहा—"चलो मन्नी, देखूँ, क्यों बुला रहे हैं। तुमसे दो बात भी न कर पाई कि बुलावा आ गया।"

मनोरमा कुसुमलता के साथ जस्टिस रामप्रसाद के कमरे में गई। वहाँ बाबू राधारमण, डॉक्टर आनंदीप्रसाद और राजेंद्रप्रसाद पहले से बैठे हुए थे।

मनोरमा को देखकर सर रामप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"मन्नी, आओ, मैं तुम्हारी बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रहा हूँ।"

मनोरमा ने सिर झुकाकर कहा—"फ़रमाइए।"

सर रामप्रसाद ने अपने तकिए के नीचे से एक मख़मल का केस निकालकर खोला, और मोतियों की माला उसके गले में पहनाते हुए कहा—"यह तुम्हारे लखनऊ-युनिवर्सिटी में फ़र्स्ट आने का उपहार है।"

मनोरमा चकित होकर बाबू राधारमण की ओर देखने लगी।

बाबू राधारमण ने आपत्ति करते हुए कहा—"यह क्या?"

सर रामप्रसाद ने अपनी सहज न्यायाधीश की गंभीरता से कहा—"आपकी वकालत की कोई ज़रूरत नहीं। जैसी मेरी बिटिया है, वैसी यह। तुम्हें कोई अधिकार नहीं कि तुम मेरे काम में दख़ल दो।"

यह कहकर, उन्होंने दूसरा केस निकालकर कुसुमलता के गले में दूसरी मोतियों की माला पहनाते हुए कहा—"बिट्टन, यह तुम्हारे लखनऊ युनिवर्सिटी में द्वितीय उत्तीर्ण होने का पारि-तोषिक है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"यह तो पूरा 'कॉनवोकेशन' है।"

बाबू राधारमण और राजेंद्रप्रसाद हँसने लगे।

सर रामप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"हाँ, आप लोग न घब-राइए, आपके लिये भी कुछ है।"

बाबू राधारमण ने हँसते हुए कहा—"और, मेरे लिये भी क्या कुछ है ?"

सर रामप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"तुम्हारे लिये काग़ज़ का एक सार्टीफ़िकेट है कि तुम अच्छे मुंतज़िम हो।"

सब लोग हँसने लगे।

इसके बाद सर रामप्रसाद ने दो अँगूठियाँ, जिनमें अच्छे, बड़े हीरे जड़े थे, एक राजेंद्रप्रसाद को और दूसरी डॉक्टर आनंदीप्रसाद को देते हुए कहा—"यह तुम लोगों के लिये 'कांसोलेशन प्राइज़' है, जिसमें तुम लोग आपस में झगड़ा मत करो।"

यह कहकर वह हँसने लगे, और सब लोगों ने उनका साथ दिया।

---

(१८)

सुंदर, अनंत नीले आकाश की सु-नील छाया में सागर के नील वक्ष पर 'समुद्र की रानी' (क्वीन ऑफ़् दी सी)-नामक जहाज़ संतरण कर रहा था। भारतीय महासागर की उत्तुंग तरंगें उसके राजकीय परिधान को वारंवार चुंबन करने का प्रयत्न करतीं, परंतु वह सत्य ही रानी की तरह उनकी पहुँच से बाहर था। समीर उनके इस निष्फल प्रयास पर हँस रहा था, और आकाश उन्हें उत्साहित कर कह रहा था कि थोड़ी देर धैर्य रक्खो, शाम को मैं तुम्हारे सह-कारी चंद्रमा को पकड़ लाऊँगा, जो अपना बल तुम्हें प्रदान करेगा, और तुम उस वक़्त दूने वेग से उठना।

प्रकृति अपने हास-विलास में निमग्न थी, और मनोरमा अपने एकांत विलाप में। इस दुरंगी दुनिया में कोई तो हँसता है, और कोई रोता है। मनोरमा रो रही थी जी खोलकर, और कुसुमलता रो रही थी दिल मसोसकर। एक ही दुःख, लेकिन दोनो का पृथक्-पृथक् रूप था।

राजेंद्रप्रसाद ने 'ताजमहल'-होटल के एक कमरे में कातर मनोरमा का सिर सप्रेम उठाते हुए कहा—"मन्नी, तुम्हें इतना कातर छोड़कर नहीं जा सकता। मुझमें इतनी शक्ति नहीं है।"

मनोरमा ने फूट-फूटकर रोते हुए कहा—"मैं क्या करूँ, मैं क्या जान-बूझकर रोती हूँ। आँसू थमते ही नहीं।"

राजेंद्रप्रसाद ने उसे अपने हृदय से लगा लिया। उनके हृदय की धड़कन उसे सांत्वना देने लगी।

राजेंद्रप्रसाद ने प्रेम-पूर्ण स्वर में कहा—"मन्नी, अब मैंने अपना

इरादा बदल दिया, मैं न जाऊँगा। बाबूजी और अम्मा से जाकर कहे आता हूँ।"

मनोरमा ने अपने आँसू पोंछकर कहा—"नहीं, तुम जाओ। एक-डेढ़ साल का मामला है, मैं तुम्हारी उन्नति में बाधक नहीं होना चाहती। मैं अब न रोऊँगी। तुम्हारे सामने न रोऊँगी।"

राजेंद्रप्रसाद ने मलीन स्वर में कहा—"मैं तुम्हें जानता हूँ, तुम रो-रोकर अपना जीवन कहीं ख़तरे में न डाल लो, यही मुझे भय है। मन्नी, मैं तुम्हें छोड़कर कहीं न जाऊँगा।"

मनोरमा ने उनकी एक उँगली से खेलते हुए कहा—"जब तुमने कहा, तो मैं भी कहती हूँ। मेरे मन में न-जाने कोई बार-बार कहता है कि 'मन्नी, यह तेरा अंतिम मिलन है।' बस, इसी शोच में मैं व्याकुल हूँ। कौन जानता है, जब तुम लौटो, मुझे जीवित न पाओ। और, अगर कहीं मैं मर गई, तो यह साध लेकर जाऊँगी कि अंतिम समय तुम्हें न देख पाई।"

मन का आवेग जब खुल जाता है, तब वह रुकना नहीं जानता। मनोरमा भयभीत होकर उनसे चिपट गई। उन्होंने भी उसे कसकर अपने हृदय से लगा लिया—वह इतने सन्निकट थे, परंतु फिर भी इतने दूर!

राजेंद्रप्रसाद के भी नेत्र शुष्क न थे, उनका हृदय रो रहा था। उन्हें मालूम हुआ कि मनोरमा का कहना सत्य है। वह भी सिहिर-कर उससे चिपट गए। आह! क्या सचमुच यह मिलन अंतिम मिलन है।

राजेंद्रप्रसाद ने अश्रु-पूर्ण नेत्रों से कहा—"मन्नी, मैं तुम्हें छोड़कर नहीं जा सकता। मेरा मन न-मालूम कैसा हो रहा है।"

मनोरमा ने शांत होकर कहा—"अब पीछे लौटना नहीं हो सकता। तुम्हें अब जाना ही होगा। मंगलमय भगवान् सबका

कल्याण करेंगे, और सबके बाद मेरा भी । मुझे उन पर विश्वास है कि तुम पर कोई अनिष्ट घट नहीं सकता । मैं तुम्हारी मंगल-कामना सदैव करती रहूँगी । और, मुझे दृढ़ विश्वास है कि वह मेरी प्रार्थना पर अपना ध्यान देंगे । समय जाते क्या देर लगती है, अठारह महीने, यानी ५४० दिन, बीत ही जायँगे । कुछ भी हो, हूँ तो आख़िर स्त्री ! जन्म और स्वभाव से मैं भीरु हूँ । नहीं, तुम जाओ, प्रसन्न मन से जाओ । पहले तो स्त्रियाँ अपने पति को युद्ध में, मौत के मुँह में, हँसती हुई भेजती थीं, और तुम तो स्वयं उन्नत होकर मुझे महत् बनाने जा रहे हो । इसमें मेरा कल्याण है । मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि अब विचलित न होऊँगी ।"

राजेंद्रप्रसाद ने म्लान हास्य से कहा—"अब तुम जाने का आदेश देती हो, और कभी इतनी कातर होती हो कि मेरे हाथ-पैर फूल जाते हैं ।"

मनोरमा ने धीरज और साहस के साथ कहा—"मैं सब कुछ सहन कर लूँगी, तुम मेरे लिये तनिक भी चिंता मत करना । यह न हो कि मैं अभागिनी तुम्हारे रिकार्ड ख़राब होने का कारण हो जाऊँ । मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि यहाँ बड़ी प्रसन्नता से रहूँगी ।"

राजेंद्रप्रसाद ने उसके कपोलों पर प्रेम-चिह्न अंकित करते हुए कहा—"मैं जानता हूँ, मन्नी, जैसे तुम रहोगी । क्या तुम नहीं जानतीं कि तुम मेरे हृदय के अंतस्तल में रहती हो, और तुम्हारी प्रकृति मुझसे छिपी नहीं । मैं तुम्हारी प्रसन्नता का अर्थ समझता हूँ ।"

मनोरमा ने उनके गले में दोनो हाथ डालकर कहा—"तुम मुझसे एक बात की प्रतिज्ञा करो, तो कहूँ ।"

राजेंद्रप्रसाद ने उपालंभ देते हुए कहा—"मन्नी, मैंने कब तुम्हारी

बात टाली है, जो मुझसे प्रतिज्ञा कराना चाहती हो ? ख़ैर, तुम्हारे संतोष के लिये मैं तुम्हें वचन देता हूँ । तुम कहो ।"

मनोरमा ने शरमाकर कहा—"नहीं, यह बात ही ऐसी है । तुम मेरे बारे में कभी चिंता मत करना, बस, इस बात की प्रतिज्ञा करो।"

मनोरमा इसको एक साँस में कहकर उनके गले से लिपट गई । राजेंद्रप्रसाद ने गंभीर स्वर में कहा—"ठीक है, जिस दिन ये प्राण शरीर से निकलेंगे, उस दिन यह प्रतिज्ञा शायद ही पूर्ण कर सकूँ । इसके पहले तो नहीं कर सकता ।"

मनोरमा ने अपने हाथ से उनका मुँह दबाते हुए कहा – "चलते वक़्त ऐसे कुवाक्य न निकालो । मुझसे भूल हुई, मुझे माफ़ करो ।"

इसी समय कमरे के बाहर किसी ने दरवाज़ा थपथपाया । मनोरमा ने अनिच्छा-पूर्वक अपने को उनके अंक-पाश से बिलग किया ।

राजेंद्रप्रसाद ने दरवाज़ा खोला । बाहर दही और चावल लिए राजेश्वरी खड़ी थी । उसके नेत्र भी अश्रु-पूर्ण थे ।

उसने भीतर आकर कहा—"बड़े बाबू कह रहे हैं कि जाने का वक़्त निकट आ गया है, इसलिये रोचना करने आई हूँ ।"

राजेश्वरी आगे न बोल सकी । उसके आँसू बाहर निकलने के लिये मचलने लगे ।

राजेंद्रप्रसाद से भी बोला न गया । और, मनोरमा बिदाई की यह सूचना देखकर दुबारा रोने का उपक्रम करने लगी ।

इसी समय कुसुमलता बहुत-सी सुगंधित पुष्पों की मालाएँ ले आई । उसका चेहरा बिलकुल गहरे पीत रंग का था, और आँखों के नीचे कालिमा छिपे-छिपे कह रही थी कि वह रोते-रोते आई है ।

राजेश्वरी ने धीमे स्वर में कहा—"आप बैठ जायँ ।"

राजेंद्रप्रसाद एक कुरसी पर बैठ गए । राजेश्वरी उनके विशाल मस्तक पर दही का टीका लगाने लगी । टीका करने के बाद

राजेश्वरी ने कहा—"थोड़ा दही खाकर मिठाई खा लो। यह शकुन है।"

राजेंद्रप्रसाद ने बिना आपत्ति के उनकी आज्ञा पालन की।

कुसुमलता, मौन कुसुमलता, ने कई मालाएँ एक साथ उनके गले में पहना दीं।

राजेंद्रप्रसाद ने उससे कहा—"देवि, अगर जान या अनजान में मुझसे कुछ अपराध हो गया हो, तो क्षमा करना।"

कुसुमलता ने कुछ कहने के लिये मुँह खोला, लेकिन शब्दों के आवेग ने गला घोट दिया। सिर नत कर रोने लगी।

राजेंद्रप्रसाद ने उसकी पीठ पर बड़े भाई-जैसे स्नेह से हाथ फेरते हुए कहा—"कातर होने की कोई बात नहीं। मैं शीघ्र ही तुम लोगों से आकर फिर मिलूँगा। यह हमेशा अपने ध्यान में रखना कि पति ही हिंदू-स्त्री का जीवन है, उसकी लाज है, उसका शृंगार है, और उसका सोहाग है। उसके संतुष्ट होने से देवता संतुष्ट होते हैं, और उसकी सेवा से भगवान् प्रसन्न होते हैं, तुम्हारी सखी को तुम्हारे भरोसे छोड़े जाता हूँ, और अगर उससे कोई अपराध हो जाय, तो उस पर ध्यान मत देना।"

कुसुमलता कुछ न कह सकी। उसकी वेदना अश्रुओं के रूप में गलकर निकलने लगी।

इसी समय बाबू राधारमण और सर रामप्रसाद ने आकर कहा—"राजेंद्र बाबू, शीघ्रता कीजिए, अब समय नहीं रह गया है।"

राजेंद्रप्रसाद ने उठते हुए कहा—"मैं बिलकुल तैयार हूँ, चलिए।"

यह कहकर वह कमरे के बाहर आ गए। उनके पीछे-पीछे राजेश्वरी और मनोरमा व कुसुमलता, दोनो एक दूसरे का सहारा लिए हुए चलने लगीं।

होटल से मोटरों का प्रबंध कर लिया गया था। माल-असबाब सब पहले ही 'टॉमस ऐंड कुक' के द्वारा भेज दिया था, और जहाज़ में फ़र्स्ट क्लास कमरा रिज़र्व हो चुका था। कुछ ही मिनटों में वे लोग डेक पर पहुँच गए, जहाँ क्वीन ऑफ़् दी सी-नामक जलयान उनकी प्रतीक्षा कर रहा था।

राजेंद्रप्रसाद अपना शोक छिपाने के लिये उतावलेपन से जा रहे थे। उन्होंने तो नहीं देखा, लेकिन बाबू राधारमण ने रानी मायावती को सपरिवार जाते हुए देख लिया। रानी मायावती ने उन्हें देखा, और कुसुमलता तथा मनोरमा को देखकर कहा—"अच्छा, मिसेज़ वर्मा और कुसुमलता हैं ? आप लोग भी चल रही हैं ?"

कुसुमलता और मनोरमा ने उन्हें नमस्कार किया।

रानी मायावती ने अपनी मा रानी किशोरकेसरी और पिता राजा भूपेंद्रकिशोर से कहा—"ये लोग हमारे लखनऊ के मित्र हैं।"

फिर बाबू राधारमण और सर रामप्रसाद का परिचय कराते हुए कहा—"वकील साहब, क्या आप भी चल रहे हैं ? अगर ऐसा है, तब तो रास्ता बड़े आनंद से कटेगा।"

बाबू राधारमण और सर रामप्रसाद ने राजा भूपेंद्रकिशोर से हाथ मिलाया, और राधारमण ने रानी मायावती के प्रश्न के उत्तर में कहा—"नहीं, हम लोग तो जा नहीं रहे, लेकिन हमारे दामाद मिस्टर राजेंद्रप्रसाद इँगलैंड जा रहे हैं। उनका परिचय करा दें।"

रानी मायावती ने उत्फुल्ल होकर कहा—"मिस्टर वर्मा से मैं भली भाँति परिचित हूँ, वह जा रहे हैं, तब तो ठीक है। वह कहाँ हैं ?"

राजेंद्रप्रसाद अपनी धुन में मस्त कुछ आगे निकल गए थे। कुछ दूर आगे जाकर जब उन्होंने मुड़कर पीछे देखा, तो किसी को न पाया। एक भीड़ उन्हें ढकेलती हुई चली आ रही थी। वह एक

ओर खड़े हो गए, और सबके आने की प्रतीक्षा करने लगे। जब उन लोगों के आने में देर हुई, तो वह पीछे लौटे। थोड़ी ही दूर पर रानी मायावती को अपने ससुर से बात करते हुए देखा। उन्होंने पास जाकर रानी मायावती को प्रणाम किया। रानी मायावती ने बालकों-जैसे उत्साह से कहा—"आइए मिस्टर वर्मा, आपका परिचय अपने माता-पिता से करा दूँ। वकील साहब की ज़बानी मालूम हुआ कि आप हमारा इँगलैंड तक साथ देंगे; इससे बढ़कर और क्या प्रसन्नता की बात हो सकती है।"

यह कहकर उन्होंने उनका परिचय अपने परिवार से करा दिया।

इसी समय जहाज़ ने दूसरा बिगुल बजाकर यात्रियों को सावधान किया।

सर रामप्रसाद ने कहा—"अब चलिए, यह दूसरा बिगुल है, समय बहुत कम है।"

बिगुल का शब्द सुनकर मनोरमा की विकलता बढ़ गई। वियोग की घड़ी बहुत ही सन्निकट आ गई थी। उसने स्वगत कहा—समय मनुष्य के अधीन क्यों नहीं है।

सब लोग वेग से जहाज़ की ओर रवाना हुए।

जहाज़ की सीढ़ियों पर पैर रखते-रखते तीसरा बिगुल बज उठा। जहाज़ ने अपना लंगर उठा लिया।

सर रामप्रसाद ने कहा—"बेटा, पत्र हमेशा भेजते रहना, अदन पहुँचते ही पत्र देना।"

राजेंद्रप्रसाद ने सबको प्रणाम किया। राजेश्वरी ने आगे बढ़कर रोते हुए कहा—"बेटा, अपनी मा को मत भूल जाना। मैं......" कहते-कहते उसका गला भर आया। मनोरमा विकल होकर कुसुम-लता की गोद में गिर पड़ी।

जहाज़ तट छोड़कर नील जल पर तैरने लगा।

राजेंद्रप्रसाद पथराई हुई आँखों से मनोरमा को देखने लगे। उनके मन में आया कि कूद पड़ें, लेकिन मनोरमा सचेत हो गई, और उन्हें प्रणाम किया। कुसुमलता ने भी प्रणाम किया। पल-पल में जहाज़ तट से दूर होकर समुद्र के वक्ष पर नृत्य करता हुआ जाने लगा।

चतुर्थ खंड

(१)

संध्या समय का लाल सूर्य सुदूर पश्चिम दिशा में क्षितिज के वक्षों में अपना मुँह छिपा रहा था, किंतु उसकी लालिमा सागर के नील जल को अरुण परिधान पहनाकर डेक पर खड़ी हुई मायावती का ध्यान अपनी ओर खींचने के लिये मौन भाषा में आह्वान कर रही थी। कुँवर नरेंद्रकिशोर अपनी बहन के पास खड़ा चकित होकर उस अथाह, अनंत जल-राशि को देख रहा था। आज तीन दिन बाद मायावती डेक पर आई थी, अब तक तो वह 'समुद्रीय बीमारी' में मुब्तिला थी। यही हाल क़रीब-क़रीब सब यात्रियों का था, परंतु जो एक-दो बार समुद्र-यात्रा कर चुके थे, केवल वे बचे हुए थे। राजा भूपेंद्रकिशोर पर कोई असर नहीं हुआ।

राजेंद्रप्रसाद का कमरा राजा भूपेंद्रकिशोर की बग़ल में था। यह घटना अपने आप घटी थी—इसके पीछे केवल वह रहस्यमय हाथ था, जिसे ईश्वरवादी भाग्य और अहंकार के भाव से मंडित नास्तिक घटना-चक्र कहते हैं।

राजेंद्रप्रसाद अपने कमरे में इस बीमारी से व्याकुल पड़े थे। जहाज़ के अधिकारियों की तरफ़ से इस बीमारी का पूरा प्रबंध था, लेकिन राजा भूपेंद्रकिशोर भी उनकी देख-रेख करते थे। मायावती और रानी किशोरकेसरी भी इसी बीमारी से पीड़ित थीं, इसीलिये वे नहीं आ सकती थीं।

तीसरे दिन जब राजेंद्रप्रसाद कुछ स्वस्थ हुए, तो उन्होंने राजा भूपेंद्रकिशोर के कमरे में जाकर कृतज्ञता प्रकाश की, और धन्यवाद दिया! राजा भूपेंद्रकिशोर ने हँसकर जवाब दिया—"ख़ैर, मैं

तुम्हारा धन्यवाद स्वीकार करता हूँ, परंतु मैंने तुम्हारी खोज-ख़बर इस धन्यवाद के लिये नहीं ली। यह तो मनुष्य का धर्म है, और मैंने उस धर्म के लिहाज़ से किया था।"

राजा भूपेंद्रकिशोर हँसने लगे, और राजेंद्रप्रसाद अप्रतिभ होकर बाहर की ओर देखने लगे।

राजेंद्रप्रसाद ने कुछ देर बाद कहा—"क्षमा कीजिएगा, सत्य ही मुझसे अपराध हुआ।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने फिर कहा—"इसमें तुम्हारा अपराध बिलकुल नहीं। यह तुम्हारी सभ्यता का चिह्न था, जो तुमने मुझे धन्यवाद दिया। मैं इससे प्रसन्न हूँ, बिलकुल नाराज़ नहीं।"

राजेंद्रप्रसाद बड़े असमंजस में पड़ गए। राजा भूपेंद्रकिशोर उनकी दशा देखकर हँसने लगे।

राजा भूपेंद्रकिशोर की हँसी देखकर राजेंद्रप्रसाद मन-ही-मन कुछ खिन्न हुए।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने उनके मन का भाव जानकर कहा—"आप सोचते होंगे कि यह आदमी कुछ बेवक़ूफ़ है, जब मैं धन्यवाद देता हूँ, तो यह अस्वीकार करता है, और जब मैं क्षमा-प्रार्थना करता हूँ, तो कहता है कि धन्यवाद देना सभ्यता का लक्षण है। क्यों, यही आप सोच रहे हैं न?"

राजेंद्रप्रसाद ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

राजा भूपेंद्रकिशोर कहने लगे—"देखिए, मिस्टर वर्मा, वास्तव में जो मैंने कहा है, ठीक कहा है। आपका फ़र्ज़ था मुझे धन्य-वाद देना, और मेरा फ़र्ज़ था उसे स्वीकार करना, और साथ ही अपनी अनिच्छा प्रदर्शित करना। यह आजकल की सभ्यता तो नहीं है, मेरे समय की है। चूँकि मैं वृद्ध पुरुष हूँ, इसलिये अपनी प्राचीनता में ही लिप्त हूँ। आप कुछ ख़याल न कीजिए।"

राजेंद्रप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"मैं समझ गया। आप मुझसे वृद्ध हैं, बड़े हैं, और मैं आपसे हर तरह छोटा हूँ। मैंने यह धन्यवाद प्रदर्शित कर आपसे बराबरी का दावा किया है, इसलिये मुझसे बड़ी भूल हुई। आप मुझे क्षमा करें।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने संतुष्ट होकर कहा—"हाँ, यही बात है। तुम मेरे पुत्र-तुल्य हो। हालाँकि अँगरेज़ी सभ्यता में पुत्र पिता को और पिता पुत्र को धन्यवाद देते हैं, लेकिन हम अंत में हिंदुस्थानी हैं, जहाँ यह रिवाज—चाहे अच्छा हो, चाहे बुरा—रायज़ नहीं है। मैंने तुम्हें सचेत करने के लिये सिर्फ़ ऐसा कहा है, क्योंकि इस समय उस देश में जा रहे हैं, जहाँ की जल-वायु हमारी असलियत मिटा देने की हस्ती रखती है। इसीलिये हमें अभी से सतर्क रहना चाहिए कि जब हम अपने देश-बंधुओं में हों, तो अपनी सभ्यता न भूल जायँ।"

राजेंद्रप्रसाद ने सिर झुकाकर कहा—"अब आपको ऐसी शिक्षा देने का अवसर दुबारा नहीं दूँगा, हमेशा सतर्क रहूँगा।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने संतोष के साथ कहा—"ठीक है। इसके अलावा मैं यह भी आपसे कह देना उचित समझता हूँ कि मैं अपने को यहाँ राजा नहीं समझता। मैं केवल एक भारतीय हूँ, और तुमसे वयोवृद्ध हूँ, बस, तुम्हें केवल इतना ही ध्यान में रखना चाहिए।"

राजा भूपेंद्रकिशोर यह कहकर एक कुरसी पर बैठ गए, और राजेंद्रप्रसाद को भी बैठने का आदेश दिया।

थोड़ी देर बाद फिर कहा—"अब आपकी कैसी तबियत है?"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"अब तो बिलकुल ठीक है। आपसे भी मेरी एक प्रार्थना है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने उत्सुकता से पूछा—"कहिए।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"आप मुझे 'आप' कहकर न पुकारिए। आप मुझसे सब तरह बड़े हैं, मुझे इस संबोधन में कुछ अटपटा-सा मालूम होता है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने उत्तर में हँसकर कहा—"हाँ, यह मैं सहर्ष स्वीकार करता हूँ। मैं तुम्हारी तरफ़ से इस 'आपत्ति' की प्रतीक्षा करता था।"

राजा भूपेंद्रकिशोर मन-ही-मन बड़े संतुष्ट हुए।

इसी समय नरेंद्रकिशोर ने उल्लास के साथ उस कमरे में प्रवेश करते हुए कहा—"बाबा, इस समुद्र में भी बड़ी-बड़ी लाल मछलियाँ हैं, जैसी हमारे दार्जिलिंग के मकान के तालाब में हैं। आप देखिएगा। आइए।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने हँसकर कहा—"समुद्र में लाल मछलियाँ नहीं होतीं।"

कुँवर नरेंद्रकिशोर ने ज़िद करके कहा—"बाबा, मैंने देखा, दीदी ने देखा। अगर आप हमारी बात झूठ मानें, तो चलकर दीदी से पूछ लीजिए, और डेक पर आकर उन्हें ख़ुद देख लीजिए।"

राजेंद्रकिशोर ने उठते हुए कहा—"चलिए, हम लोग डेक तक घूम आवें।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने उठते हुए कहा—"अगर घूमने की इच्छा हो, तो चलिए। यहाँ समुद्र में लाल मछलियाँ देखने को नहीं मिलेंगी। नरेंद्र ऐसे ही बकता है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर और राजेंद्रप्रसाद नरेंद्र के साथ वहाँ गए, जहाँ डेक पर मायावती खड़ी हुई प्रकृति की अलौकिक शोभा निरख रही थी।

राजेंद्रप्रसाद ने रानी मायावती को अभिवादन किया, और

उन्होंने सहास्य उत्तर देकर पूछा—"कहिए, मिस्टर वर्मा, अब आपकी तबियत कैसी है ?"

राजेंद्रप्रसाद ने धन्यवाद देकर कहा—"अब तो अच्छी है, यह फ़रमाइए, आपकी तबियत कैसी है ? आप भी तो समुद्रीय बीमारी से बीमार हो गई थीं।"

रानी मायावती ने उत्तर दिया—"अब तो अच्छी है। मैं क्या, नरेंद्र और मा, सब बीमार पड़ गए थे। सिर्फ़ बाबा पर कोई असर नहीं हुआ।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने नरेंद्र से पूछा—"बता, लाल मछलियाँ कहाँ हैं ?"

रानी मायावती ने पूछा—"क्या, लाल मछलियाँ ? मैंने तो नहीं देखीं। हाँ, नरेंद्र ज़रूर कह रहा था कि यह लाल मछली है, वह लाल मछली है।"

नरेंद्र ने अप्रतिभ होकर कहा—"दीदी, झूठ क्यों बोलती हो, तुम्हें मैंने क्या दिखलाया नहीं था, लेकिन तुम कुछ बोलीं नहीं।"

रानी मायावती ने हँसकर कहा—"अच्छा, वे। अरे, वे तो सूर्य की लालिमा से लाल देख पड़ती थीं। पागल कहीं का।"

राजा भूपेंद्रकिशोर हँस पड़े, और मायावती भी राजेंद्रप्रसाद के साथ-साथ हँस पड़ी। बेचारा नरेंद्र अप्रतिभ होकर अपनी बात को प्रमाणित करने के लिये समुद्र-तल की ओर कोई लाल मछली देखने का प्रयत्न करने लगा। परंतु अब उसकी बात सत्य घटित होती न मालूम होती थी, क्योंकि सूर्य भगवान् अपनी लालिमा लेकर पश्चिम दिशा की ओर प्रस्थान कर गए थे, और केवल एक क्षीण, लाल रेखा आकाश में दीपक की तरह प्रज्वलित होकर धरा-तल के निवासियों को संध्या-प्रदीप जलाने का संकेत कर रही थी। पूर्व दिशा से कालिमा, अपनी काली चादर से संसार को ढँकती

हुई, अग्रसर हो रही थी। जो मछलियाँ थोड़ी देर पहले नरेंद्र को लाल देख पड़ती थीं, वे ही अब श्यामल देख पड़ती थीं। प्रकाश और कालिमा, दोनो आँख-मिचौनी खेल रहे थे। अब तक प्रकाश का खेल रहा था, और अब कालिमा की बारी थी।

रानी मायावती ने हँसकर कहा—"नरेंद्र, बता, अब तेरी लाल मछलियाँ कहाँ हैं?"

नरेंद्र चुप रहा।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"देखो, प्रकृति भी कितनी सुहावनी है। इसका पट-परिवर्तन एक अजीब समस्या है, जो उसी तरह अनंत है, जैसे ईश्वर की लीलाएँ।"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"प्रकृति और भगवान् यही युग्म चराचर का विकास है। क्रिया-शक्ति भगवान् है, और स्थिर प्रकृति, और फिर भी दोनो एक ही हैं। केवल भिन्न-भिन्न नाम हैं, जो उनकी दशा, स्थिति और कर्म के अनुसार मनुष्य ने अपनी समझ के लिये दे रक्खा है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने चकित होकर उनकी ओर देखते हुए कहा—"आप क्या फ़िलॉसफ़र हैं?"

रानी मायावती ने उत्तर दिया—"हाँ, आपने फ़िलॉसफ़ी में एम्० ए० पास किया है, और युनिवर्सिटी का अब तक का रिकार्ड बीट किया है। आपका ज्ञान फ़िलॉसफ़ी में बहुत ज़बरदस्त है, तभी सरकार ने स्कॉलरशिप दिया है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने प्रशंसा-पूर्ण नेत्रों से उनकी ओर देखा, और राजेंद्रप्रसाद ने अपना सिर झुका लिया।

---

(२)

मनोरमा अपने परिवार के साथ बंबई से लौट आई। घर आकर उसका दुखी मन एकांत में रोदन करने के लिये स्वतंत्र हो गया। कुछ इस कारण से उसे लखनऊ आने में शांति मिली। बाबू राधारमण और राजेश्वरी ने बंबई में उसका मन बहलाने की बहुत चेष्टा की, किंतु वह सदैव उनसे घर चलने के लिये आग्रह करती। वह बंबई में एक क्षण भी रहना उचित नहीं समझती थी, क्योंकि वहाँ उसके प्रियतम से वियोग हुआ था, और वह स्थान उसे अभिशापित मालूम होता था।

यदि यह कहा जाय कि मनोरमा को कुछ शांति लखनऊ आकर मिली, तो यह बिलकुल ग़लत होगा। लखनऊ में उसकी अशांति और बढ़ गई। उसके घर की एक-एक वस्तु में राजेंद्रप्रसाद की स्मृति निहित थी, और उनकी स्मृति मुरझाने की जगह दिन-पर-दिन सजग होती थी। उसकी आँखों के सामने राजेंद्रप्रसाद सदैव घूमते रहते।

मनोरमा की हँसी बिलकुल अदृश्य हो गई थी। उत्फुल्लता ने समाधि ले ली थी। आँखें सदा शंकित, अश्रु-पूर्ण और आकुल रहतीं। वह क्षण-क्षण-भर में चौंक पड़ती, और सिर उठाकर द्वार की ओर देखने लगती। वहाँ किसी को न देखकर फिर अपना सिर नत कर लेती, और वेदना-सागर में डूब जाती। मनुष्य की आशा का नाम हास्य है; और निराशा का नाम विलाप। ये ही दोनो मनुष्य के हृदय-प्रांगण में सदैव युद्ध करते रहते हैं, कभी किसी की विजय होती है, और कभी किसी की। इसी द्वंद्व में मनुष्य का जीवन बीत जाता है।

राजेश्वरी मनोरमा की दशा देखकर अपने मन में पछता रही थी। मनोरमा इतनी व्याकुल होगी, यह उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी। वह समझती थी कि जैसे पहले मनोरमा रहती थी, वैसे ही रहेगी। उसे यह न मालूम था कि मनोरमा इस बार चार महीने में अपना मन संपूर्णतया राजेंद्रप्रसाद को भेंट कर चुकी है, और अपनी स्वामिनी नहीं रही। यौवन के उफान ने मनोरमा को अपना नहीं रक्खा, वह काय, मन, प्राण से उनकी गुलामी का दस्तावेज़ लिख चुकी है, जहाँ प्रश्न नहीं है, विचार नहीं है, हिचकिचाहट नहीं है, संकोच नहीं है, एक मन से, एक प्राण से उनकी सेवा के लिये सदैव लालायित थी, और वह लालसा कभी शांत न होती थी—द्रौपदी के चीर की तरह बढ़ती ही जाती थी, जिसका आदि कब हुआ था, और अंत कब होगा, यह भी उसे नहीं मालूम था।

मनोरमा को वह प्रसन्न करने का उद्योग करती, उसे हँसाने का यत्न करती, परंतु वह एक मलीन हँसी हँसकर कहती—"अम्मा, मुझे तंग न करो, कुछ अच्छा नहीं लगता।" मनोरमा के स्वर में इतनी करुणा और इतनी अनुनय-विनय होती कि राजेश्वरी को साहस न पड़ता कि वह फिर कुछ कहे।

मनोरमा को आए हुए चार दिन बीत गए थे, और राजेंद्रप्रसाद को गए हुए आठ दिन। वह नवाँ दिन था। मनोरमा अपने कमरे में बैठी हुई अपनी आकाश-पाताल की योजना में लीन थी। दीपक का प्रकाश क्षीण करने के लिये बल्ब में नीला, पतला काग़ज़ लपेट दिया गया था। मनोरमा का ध्यान उस समय भंग हुआ, जब नौकर ने एक पत्र उसके सामने तश्तरी पर रखकर पेश किया। पत्र देखते ही उसका हृदय वेग से काँपने लगा, और ठंडा पड़ा हुआ ख़ून गरम होकर उसके तंतुओं में प्रवाहित होने लगा। उसकी मलीन

आँखें उज्ज्वल हो गईं, और उसके सूखे हुए ओष्ठ फड़कने लगे। उसने आकुल हाथों से पत्र फाड़ डाला, और पढ़ने लगी। पत्र राजेंद्रप्रसाद का था, जो उन्होंने अदन से छोड़ा था। पत्र इस प्रकार था—

"प्रियतमे,

अगर मैं यह कहूँ कि मेरा मन यहाँ आकर कुछ सुखी हुआ है, तो ग़लत है, और इसकी सचाई तुम अपने हृदय से पूछकर जान सकती हो। नील गगन की नील छाया में नील रत्नाकर जैसे सदैव प्रसन्नता की लहरें लिया करता है, उसी प्रकार तुम्हारी प्रेम-छाया में पोषित मेरा मन-सिंधु आजकल विरह की लहरें ले रहा है। वायु में, आकाश में, सिंधु में, सर्वत्र चारो ओर केवल तुम्हारा देदीप्यमान रूप मैं देखा करता हूँ, जो इस अकेलेपन में मुझे धैर्य बँधाता है।

"अगर मैं कहूँ कि तुम प्रसन्न होगी, तो यह भी भूल होगी, परंतु मेरे लिये तुम्हें चिंतित न होना चाहिए। इतना तो मैं तुम्हें विश्वास दिला सकता हूँ कि मैं सकुशल हूँ, और मुझे किसी प्रकार का दुख नहीं है। तुम व्यर्थ की चिंताओं में अपने को फँसाकर दुखी मत करना। मैं जानता हूँ कि तुम भावुक हो, निरर्थक बातों का सोचना तुम्हें ख़ूब आता है, और फिर एकांत में रोना भी तुम ख़ूब जानती हो। यह तुम कभी मत समझना कि मैं तुमसे दूर हूँ। बल्कि सदैव तुम्हारे समीप हूँ, और तुम्हारा निभृत रुदन सुना करता हूँ। जानती हो निष्ठुर, तब मुझे कितनी पीड़ा होती है। अगर तुम मुझे इस मनोवेदना से मुक्त रखना चाहती हो, तो प्रियतमे, मेरे लिये तुम कभी कातर न होना। बस, यही एक मेरी प्रार्थना है। क्या तुम इसे स्वीकार कर मुझे प्रसन्न करोगी?

"जब मैं जहाज़ पर चढ़ गया था, तुम बेहोश होकर गिर पड़ी

थीं। वह दृश्य मेरी आँखों के सामने अभी तक है। तुम्हारा इस तरह कातर होना शोभित नहीं होता। यह हमेशा जान लो कि वियोग के बाद जो मिलन होता है, सच्चा आनंद और सुख उसी में है। दिवस जाते क्या देर लगती है—सुबह होती है, शाम होती है, बस, दिन-पर-दिन बीतते जाते हैं। इसी प्रकार मास और फिर वर्ष। वियोग मिलन होने के लिये ही होता है। वियोग में मिलन निहित है, और मिलन में वियोग। चूँकि वियोग के बाद मिलन है, इसलिये वियोग अच्छा है। वियोग में आशा है, उत्कंठा है, इसलिये वह श्रेष्ठ है। वियोग की घड़ियाँ भी कट जायँगी, जब मिलन की घड़ियाँ स्थायी नहीं रहीं। क्यों, सत्य है कि नहीं ?

"मैं तीन-चार दिन तक समुद्रीय बीमारी से बीमार रहा, लेकिन अब बिलकुल अच्छा हूँ। रानी मायावती भी बीमार रही थीं, अब अच्छी हैं। यद्यपि मुझे कुछ विशेष रूप से नहीं मालूम कि रानी मायावती और राजा प्रकाशेंद्र में कुछ विरोध हो गया है, परंतु ऐसा जान पड़ता है कि दोनो में मनोमालिन्य घटित हो गया है। रानी मायावती राजा प्रकाशेंद्र के विषय में एक बात तक सुनना पसंद नहीं करतीं, और न उनके माता-पिता ही इस संबंध में कभी बात करते हैं। मुझे तो इस मौन के पीछे कोई विकट रहस्य मालूम पड़ता है। अधिक मालूम होने पर लिखूँगा।

"रानी किशोरकेसरी रानी मायावती की मा का नाम है। वह एक सहृदय रमणी हैं, और मेरे ऊपर उनकी विशेष अनुकंपा रहती है। राजा भूपेंद्रकिशोर भी विनोद-प्रिय व्यक्ति हैं, जिनके साथ आलाप करने से मुझे आनंद प्राप्त होता है। रानी मायावती का भाई कुँवर नरेंद्रकिशोर मुझसे विशेष रूप से हिल गया है, जिसे मैं कभी-कभी पढ़ाया करता हूँ, क्योंकि राजा भूपेंद्रकिशोर की ऐसी ही आज्ञा है, और मुझे बैठे-ठाले के लिये अच्छी बेगार।

"तुम अपना मन बहलाने के लिये आगे पढ़ना क्यों न शुरू कर दो। मेरी राय में अगर तुम एम्० ए० भी पास कर लो, तो अच्छा होगा। इस प्रकार तुम्हारा मन भी बहला रहेगा, और एक डिग्री भी मिल जायगी। तुम्हें भारत के प्राचीन इतिहास से प्रेम है, इसलिये इतिहास में ही एम्० ए० करो। बैठा-ठाला मन सदैव चिंताओं का घर होता है, और जब मनुष्य किसी कार्य में संलग्न हो जाता है, तो मन का सूनापन जाता रहता है, और कुविचार उठना एकदम बंद हो जाता है। इसलिये तुम एम्० ए० अवश्य पास कर लो।

"डॉक्टर आनंदीप्रसाद से भी इस विषय में परामर्श ले लेना। और, जहाँ तक मुझे मालूम है, वह कुसुमलता को भी पढ़ने के लिये सलाह देंगे। तुम्हारे साथ कुसुमलता भी पढ़ेगी। इस तरह तुम दोनो सखियाँ हास्य-विनोद में अपने दिन व्यतीत कर सकती हो।

"अम्माजी और बाबूजी को मेरा प्रणाम निवेदन करना, उनके नाम एक पत्र मैं इसी लिफ़ाफ़े में भेज रहा हूँ, वह उन्हें दे देना। आज ही घर में मनमोहन को भी चिट्ठी लिखी है, और तुम भी पत्र-व्यवहार से अम्मा की याद करती रहना। जानती हो, वह तुम्हें कितना चाहती हैं।

"अब पत्र बहुत लंबा हो गया है, इसलिये बंद करता हूँ, और यह तुमसे फिर कहता हूँ कि मेरे लिये शोक करके दुखी मत होना।

तुम्हारा ही

राजेंद्र"

मनोरमा पत्र पढ़ने में इतनी लीन थी कि उसे बाह्य संसार की कुछ ख़बर न थी। राजेश्वरी चुपचाप उसकी ओर देख रही थी। जब मनोरमा ने दूसरी बार पत्र पढ़ने का इरादा किया, तो राजेश्वरी ने कहा—"मन्नी, क्या राजेन बाबू की चिट्ठी आई है ?"

मनोरमा ने चौंककर देखा, सामने राजेश्वरी खड़ी हुई उत्सुकता से पूछ रही थी।

मनोरमा ने वह पत्र छिपाना चाहा, लेकिन राजेश्वरी ने उसे छीन लिया।

राजेश्वरी ने मुस्किराकर कहा—"यह नहीं हो सकता, मैं इस पत्र को पढ़ूँगी।"

मनोरमा ने शुष्क स्वर में कहा—"क्यों? यह पत्र मेरा है, और मैं तुम्हें न पढ़ने दूँगी।"

राजेश्वरी ने हँसकर कहा—"नहीं, मैं पढ़ूँगी। मेरे पढ़ने में क्या हर्ज है?"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"इसलिये कि वह तुम्हारे पढ़ने लायक़ नहीं है।"

राजेश्वरी ने कहा—"अगर मेरे पढ़ने लायक़ नहीं है, तो तुम पढ़कर मुझे सुना दो। मुझे पढ़ने से क्या मतलब?"

मनोरमा की मलिनता कुछ कम हो गई थी। उसने हँसकर कहा—"बात तो एक ही है।"

राजेश्वरी ने उत्तर दिया—"मैं कब कहती हूँ कि दो हैं।"

मनोरमा ने सक्रोध कहा—"तुमसे कभी जीती हूँ, जो आज जीतूँगी। अगर पढ़ना हो, तो पढ़ लो; किसी तरह पिंड तो छूटे।"

राजेश्वरी ने वह पत्र वापस करते हुए कहा—"अगर तुम नाराज़ होती हो, तो न पढ़ूँगी।"

मनोरमा ने वह पत्र नहीं लिया।

राजेश्वरी ने कुर्सी पर बैठते हुए कहा—"मन्नी, तुम अब बिलकुल बदल गईं। तुम्हें क्या हो गया है, मेरी समझ में कुछ नहीं आता।"

मनोरमा ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

राजेश्वरी फिर कहने लगी—"इस तरह दुखी रहकर कब तक

तुम हम सबको दुखी करोगी। आज छेड़-छाड़ मैंने इसीलिये की कि तुम मुझसे बात करो, लेकिन तुम हँसने की कौन कहे, खिन्न होती हो। सचमुच अगर मैं तुम्हारी सौतेली मा न होती, तो इस तरह अपना भेद मुझसे छिपाए रहतीं। अगर तुम मुझे अपनी सगी मा समझतीं, तो क्या इस तरह मुझे ठुकरा देतीं।"

मनोरमा ने अश्रु-पूर्ण नेत्रों से कहा—"मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, मुझे तंग न करो। अगर पत्र पढ़ना है, तो पढ़ लो, मैं मना नहीं करती, लेकिन मुझे दुखी मत करो, मैं आप बहुत दुखी हूँ। आज तक तो तुम्हें ही अपनी मा समझा है।"

यह कहकर मनोरमा रोने लगी। राजेश्वरी ने उसे अपने हृदय से लगा लिया, और सांत्वना देने लगी।

---

(३)

राजेश्वरी ने बाबू राधारमण से कहा—"कुछ देखते हो, क्या हो रहा है?"

बाबू राधारमण अपने एक मुक़द्दमे की फ़ाइल देख रहे थे। उनका सारा ध्यान उसी में था। राजेश्वरी के प्रश्न ने उन्हें कुछ खिन्न कर दिया। उन्होंने खिन्न स्वर में कहा—"क्या बात है?"

राजेश्वरी ने उनके सामने से फ़ाइल खींचते हुए कहा—"देखो, मामला बड़ा गंभीर होता जा रहा है, और तुम कुछ ध्यान नहीं देते। रात-दिन काम में लगे रहते हो, कभी कुछ घर का भी ख़याल करते हो?"

बाबू राधारमण ने चिंतित स्वर में पूछा—"क्या बात है, ऐसी कौन घटना घट रही है, जिसमें मेरी सहायता की ज़रूरत आ पड़ी। अगर काम न करूँ, तो कौन रुपया देगा। जानती हो, दामाद साहब विलायत गए हैं, उन्हें भी तो कुछ-न-कुछ ख़र्च भेजना पड़ेगा।"

राजेश्वरी ने उत्तर दिया—"उनके भेजने के लिये मेरे पास बहुत रुपया है, तुम इसकी चिंता मत करो। रुपए से अधिक प्यारी मुझे मेरी मन्नी है। उसकी दशा तो तुम देखो, वह दिन-पर-दिन सूखकर काँटा होती जाती है।"

मन्नी के नाम ने बाबू राधारमण की सारी खिन्नता दूर कर दी, और वह ध्यान-पूर्वक सुनने के लिये तैयार हो गए।

उन्होंने उसकी ओर जिज्ञासा-पूर्ण दृष्टि से देखते हुए पूछा—

"मन्नी कुछ बीमार तो नहीं है ? क्या किसी डॉक्टर को बुलाकर दिखलाऊँ ?"

राजेश्वरी ने उत्तर दिया—"मन्नी की बीमारी डॉक्टर से जाने-वाली नहीं है।"

बाबू राधारमण ने चकित होकर कहा—"तब कैसे जायगी ?"

राजेश्वरी ने उनकी ओर देखकर कहा—"हमारे, तुम्हारे और मन्नी के विलायत जाने से उसका यह रोग दूर होगा।"

बाबू राधारमण ने मुस्किराकर कहा—"तुम मुझे हमेशा पहेलियाँ बुझाया करती हो। कोई बात कभी साफ़-साफ़ नहीं कहतीं।"

राजेश्वरी ने तिनककर कहा—"मैं तो साफ़ कहती हूँ, लेकिन तुम समझते नहीं। मैं क्या करूँ ? तुम इतने बड़े वकील हो, लेकिन मेरी बात नहीं समझते।"

बाबू राधारमण ने मुस्किराकर कहा—"मैं स्त्रियों की अदालत में वकालत नहीं करता, और न उनकी रहस्य-भरी बातें ही समझता हूँ।"

राजेश्वरी ने जवाब दिया—"फिर, तुम्हारा ज्ञान अधूरा है।"

बाबू राधारमण ने कहा—"अधूरा ही रहने दो। मुझे जब कोई ऐसी ज़रूरत आ पड़ेगी, तो तुमसे सहायता ले लिया करूँगा। स्त्रियों से सहायता माँगने में मेरी शान नहीं जाती।"

राजेश्वरी ने गंभीर होकर कहा—"तुमसे जब कोई बात कहो, तो तुम उसे मज़ाक़ में उड़ा देते हो, यह नहीं समझते कि बात गंभीर है, या मज़ाक़ में उड़ानेवाली।"

बाबू राधारमण ने मुस्किराकर कहा—"अच्छा, आप कहिए, क्या बात है, मैं बिलकुल गंभीर होकर सुनूँगा।"

राजेश्वरी ने धीमे स्वर में कहा—"बात तो यह है कि मन्नी का रोग तब अच्छा होगा, जब वह इँगलैंड जाकर उनके साथ रहेगी।

मैंने भी पहले ग़लत अनुमान किया था कि बात इस हद तक न पहुँचेगी, लेकिन अब मालूम होता है कि ज़्यादा विलंब करने से उसके जीवन पर आपत्ति आ सकती है। वह रात-दिन बैठे-बैठे सोचा ही करती है; न किसी से बोलती है, न हँसती है, न खाती है, और न पीती है। उसका सूखा मुख देखकर रोना आता है। मैं तो इस चिंता से रात-दिन परेशान रहती हूँ, और तुम कुछ ख़याल नहीं करते।"

बाबू राधारमण कुछ सोचने लगे।

राजेश्वरी ने फिर कहा—"हमारे सिर्फ़ एक यही बच्ची है, इसका कुछ-न-कुछ उपाय तो करना होगा। विलायत जाने से उसका यह रोग तो नष्ट हो जायगा, लेकिन मैं उसे छोड़कर रह नहीं सकती।"

बीच में ही राधारमण ने कहा—"और, तुम दोनो को छोड़कर मैं नहीं रह सकता। इसलिये हम तीनो को चलना चाहिए। बस, ठीक है। मैं तैयार हूँ। मैंने तो पहले भी कहा था, लेकिन तुमने मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया। अब आख़िर वही बात कह रही हो।"

राजेश्वरी ने कहा—"क्या करूँ, मुझे कहना पड़ता है, नहीं तो मन्नो के जीवन पर आ बनेगी। यह मामला मामूली नहीं है, भयंकर है।"

बाबू राधारमण ने सहसा याद कर कहा—"हाँ, एक बात याद आई, मैं इस समय विलायत जाने में बिलकुल असमर्थ हूँ, क्योंकि अभी हाल में मैंने एक बड़ा मुक़दमा हाथ में लिया है, और उससे आधा मेहनताना भी ले लिया है। बीस हज़ार रुपए जो परसों तुम्हें दिए थे, वे सिराजुद्दीनअहमदख़ाँ के हैं, जो राजा शिवपुरी से उनकी रियासत के हक़दार होकर झगड़ रहे हैं। यह मुक़दमा मैं अपने हाथ से नहीं जाने देना चाहता। और, जब मेहनताना ले लिया है, तब किसी तरह नहीं छोड़ सकता।"

राजेश्वरी ने प्रश्नसूचक दृष्टि से कहा—"तब फिर क्या होगा ?"

राधारमण ने बेफ़िक्री से कहा—"होने को क्या है। पहलेपहल ऐसा ही होता है, सभी नौजवानी में प्रथम वियोग को बहुत ज़्यादा अनुभव करते हैं, परंतु समय एक ऐसी ओषधि है, जो सब घावों को अच्छा कर देता है। थोड़े दिनों में मन्नी अपने आप दुरुस्त हो जायगी।"

राजेश्वरी ने तिरस्कार-पूर्ण स्वर में कहा—"तुम तो इस वक़्त रुपयों के लोभ में पड़े हो, जो ऐसा कह रहे हो। तुम उसके स्वभाव से परिचित नहीं हो।"

राधारमण ने कहा—"मैं रुपयों के लोभ में नहीं पड़ा, लेकिन जो मैं कहता हूँ, वह सत्य है। समय के साथ सब दुख कम पड़ जाते हैं, फ़र्क़ इतना है कि कोई बहुत दिनों में जाता है, और कोई जल्दी।"

राजेश्वरी ने व्याकुल स्वर में कहा—"मुझे तो भरोसा नहीं कि ऐसा हो सकता है। मन्नी स्वभाव से बड़ी कोमल है। जब कोई बात उसके दिल पर चोट कर जाती है, तब उसे सँभालना मुश्किल काम होता है—तुम तो हमेशा बाहर रहते हो, मैं घर में रहती हूँ। मन्नी का स्वभाव मुझसे पूछो।"

बाबू राधारमण ने कुछ सोचकर कहा—"अगर मन्नी से एम्० ए० पढ़ने के लिये कहा जाय, तो कैसा है ?"

राजेश्वरी ने कहा—"मैं अपनी बच्ची को पढ़ाना नहीं चाहती। पहले तो किताबों के बोझ ने उसे पनपने नहीं दिया, और फिर जब उससे किसी तरह पिंड छूटा, तो इस रोग ने उसे पकड़ लिया। मैं अब फिर उसके सिर पर यह बोझ नहीं रखना चाहती। इस बार तो वह बिलकुल मृतप्राय हो जायगी।"

बाबू राधारमण ने उत्तर दिया—"नहीं, ऐसी बात नहीं है।

अँगरेज़ी में एक कहावत है कि 'निठल्लू का दिमाग़ शैतान का निवास-स्थान है।' अभी मन्नी के आगे कोई काम नहीं है, इसलिये वह फ़िज़ूल की बातें सोच-सोचकर परेशान होती है, लेकिन जब किसी काम में लग जायगी, तो उसे सोचने का अवकाश न मिलेगा। उसका यह रोग, जिससे तुम इतनी परेशान हो, स्वतः अच्छा हो जायगा।"

राजेश्वरी उनके कथन की सत्यता परखने लगी।

बाबू राधारमण ने कहा—"देखो, मैं तुम्हें समझाता हूँ, अभी तुम जब आई थीं, मैं यह फ़ाइल देख रहा था, और मेरा सारा दिमाग़ और विचार इसी में लगा हुआ था, परंतु जब तुमने मेरे सामने मन्नी की चरचा छेड़ दी, तो मैं इस ख़याल में मुब्तिला हो गया, और उस फ़ाइल का ख़याल जाता रहा। यह क्यों? इसका जवाब यही कि मेरा ध्यान उस तरफ़ से खिंचकर इधर आ गया, क्योंकि मेरे सामने एक नया काम पैदा हो गया। इसी तरह अभी मन्नी जुदाई के ग़म से परेशान है, क्योंकि उसके सामने कोई दूसरा काम नहीं। रात-दिन वही एक ख़याल रहता है, लेकिन जब वह पढ़ने लगेगी, तो उसका ध्यान बँटकर पढ़ाई की तरफ़ लग जायगा। क्लास में प्रतियोगिता के सबब से उसे पढ़ना अनिवार्य हो जायगा। इसलिये उसे फिर सोचने का मौक़ा न मिलेगा। आया समझ में। जो मैं कहता हूँ, वह ठीक है?"

राजेश्वरी की समझ में बाबू राधारमण की तर्क-पूर्ण युक्ति आ गई। उसने धीमे स्वर में कहा—"मुमकिन है।"

बाबू राधारमण ने अपनी युक्ति की कामयाबी देख प्रसन्न होकर कहा—"मुमकिन नहीं, ऐसा ही होगा। तुम चाहे आज़माकर देख लो। मन्नी के नाम लिखाने में हर्ज ही क्या है। सौ-दो सौ रुपयों का ख़र्च है। अगर इस कौशल से हमारा काम सिद्ध हो

जाय, तो ठीक है, वरना इँगलैंड तो चलेंगे ही। मैं मन्नी को बुला-कर पूछूँ ?"

राजेश्वरी ने कहा—"अच्छा, बुलाकर पूछ लो। सौ-दो सौ रुपयों के लिये मुझे कुछ फ़िक्र नहीं। सौ-दो सौ क्या, सौ हज़ार भी मुझे ख़र्च करना पड़ें, तो मैं तैयार हूँ। यह अपार धन है किसके लिये। मैं अपने सिर पर बाँधकर तो ले न जाऊँगी।"

बाबू राधारमण ने नौकर को बुलानेवाली घंटी बजाकर कहा—"तो मैं मन्नी को बुलाकर पढ़ने के बारे में तय करता हूँ।"

नौकर ने आकर पूछा—"क्या हुक्म है, सरकार!"

बाबू राधारमण ने उससे कहा—"जा, ऊपर से मन्नी को बुला ला।"

नौकर चला गया। थोड़ी देर में मलीन-मुख मन्नी ने प्रवेश किया। बाबू राधारमण उसे देखकर सचमुच चौंक पड़े। दरअसल मन्नी की हालत तो मरीज़ों से अबतर हो गई थी। उसका मुख शुष्क, आँखें उज्ज्वलता-रहित, अधर पपड़ाए हुए, शरीर सूखा हुआ, और अवयवों से निराशा के चिह्न प्रकट हो रहे थे। बंबई से आने के बाद आज ही उसे बाबू राधारमण ने देखा था। उनके सामने वह कभी न आती, और वह भी अपने काम में इतने व्यस्त रहते कि उन्हें इस ओर ध्यान देने का समय न मिलता। दरअसल उनके सामने मनोरमा नहीं, उसका कंकाल खड़ा था।

बाबू राधारमण ने उसे सप्रेम अपने पास बैठाते हुए कहा—"मन्नी, क्या तुम आजकल कुछ बीमार हो?"

मनोरमा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

बाबू राधारमण ने सस्नेह कहा—"देखो, तुम्हीं एकमात्र मेरी संतान हो। तुम्हें सब तरह से सुखी करना मेरा परम धर्म है।

और, जब तक तुम अपना दुख मुझसे न कहोगी, मैं कुछ जान नहीं सकता। बोलो, तुम्हें किस बात का दुख है ?"

मनोरमा ने एक कठोर दृष्टि से राजेश्वरी की तरफ़ देखकर अपना सिर नीचा कर लिया।

राजेश्वरी ने उस दृष्टि का अर्थ समझकर कहा—"देखो, इसका दोष मेरे ऊपर लगाया जा रहा है। मैंने कोई तुम्हारी चुगली नहीं खाई।"

बाबू राधारमण ने हँसकर राजेश्वरी से कहा—"वाक़ई, सारे झगड़े की जड़ तुम हो। बैठे-बिठाए नाहक़ एक झगड़ा खड़ा करती हो।"

राजेश्वरी ने तड़पकर कहा—"लो, अच्छे रहे। बाप-बेटी दोनों मेरे सिर अपराध थोप रहे हैं। मैं न लेने में, और न देने में। अगर आप लोगों को मेरा यहाँ बैठना ख़राब मालूम होता है, तो मैं जाती हूँ।"

यह कहकर वह सवेग कमरे के बाहर जाने लगी।

मनोरमा ने हँसकर उसे पकड़ते हुए कहा—"बैठो, नहीं तो मैं भी चली जाऊँगी।"

फिर धीरे से कहा—"आग लगाकर जमालो दूर खड़ी। मैं सब जानती हूँ। कल जो चिट्ठी पढ़ने को नहीं दी, तो आज यह कौतुक खड़ा किया है।"

राजेश्वरी ने हँसते हुए कहा—"अच्छा, किया तो है, फिर तुम इसे सँभाल लो, और आग बुझा दो।"

बाबू राधारमण ने पूछा—"क्या बात है ?"

राजेश्वरी ने कहा—"है क्या, तुम्हारी लाड़ली फ़रमाती है कि यह झगड़ा मैंने खड़ा किया है; सच कहना, क्या मैंने तुमसे कहा था कि मन्नी को बुलाओ ?"

बाबू राधारमण ने हँसते हुए कहा—"मन्नी को बुलाने के लिये तुमने नहीं कहा, लेकिन और बहुत-सी बातें तो कही थीं।"

राजेश्वरी ने रोष-पूर्ण स्वर में कहा—"यह देखो, जो होगा, वही मन्नी का पक्ष लेगा। मेरी सौत मेरे लिये मन्नी के रूप में मेरा काल छोड़ गई है।"

राधारमण ने कहा—"ख़ैर, आओ, बैठो। मन्नी तुम्हारा काल है, क्या है, यह तो तुम अच्छी तरह जानती हो।"

राजेश्वरी आकर बैठ गई, और उसके पास मनोरमा भी बैठ गई।

बाबू राधारमण ने मनोरमा से पूछा—"कुसुमलता क्या एम्० ए० नहीं पढ़ेगी?"

मनोरमा ने धीमे शांत स्वर में उत्तर दिया—"इधर कई दिनों से मुझे नहीं मिली, मैंने कुछ पूछा नहीं।"

बाबू राधारमण कहने लगे—"ख़ैर, मैं जज साहब से पूछ लूँगा। तुम्हारी क्या इच्छा है?"

मनोरमा ने कोई जवाब नहीं दिया।

बाबू राधारमण ने कहा—"मैं तो यही उचित समझता हूँ कि तुम एम्० ए० 'ज्वाइन' करो। एक डिग्री रह गई है, उसे क्यों छोड़ो। जब तुम्हारे पास समय और साधन है, तब क्यों काम अधूरा छोड़ो। तुमने जिस ख़ूबी से बी० ए० पास किया है, उसी ख़ूबसूरती से एम्० ए० भी पास कर सकती हो। मेरी राय में तुम्हें अवश्य एम्० ए० पास कर लेना चाहिए।"

मनोरमा ने धीमी ज़बान से कहा—"गर आपकी आज्ञा है, तो पढ़ूँगी।"

बाबू राधारमण ने कहा—"मैं आज्ञा नहीं देता, सलाह देता हूँ। तुम्हारी उन्नति से मेरा भी नाम होता है, और इसमें तुम्हारा भी

कल्याण है। अगर तुम्हारी इच्छा आगे पढ़ने की नहीं है, तो मुझे कोई आपत्ति भी नहीं।"

मनोरमा सोचने लगी—उन्होंने भी पढ़ने का आदेश दिया है, और पापा भी पढ़ने को कहते हैं।

फिर शांत स्वर में जवाब दिया—"ठीक है, मैं पढ़ूँगी। कल जाकर नाम लिखा लूँगी।"

बाबू राधारमण ने प्रसन्न होकर कहा—"कल क्यों, आज ही जाकर नाम लिखा लो। जब तुम जाओगी, तो कुसुमलता भी तैयार हो जायगी। तुम कौन-सा विषय लेना चाहती हो, क्या इसके बारे में कभी सोचा है?"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"मुझे भारत के प्राचीन इतिहास से प्रेम है, इसलिये वही विषय लूँगी। कुसुमलता भी यही विषय पसंद करेगी।"

बाबू राधारमण ने संतोष की हँसी हँसते हुए कहा—"बहुत ठीक है। आज शाम को मेरे साथ चलना, और अपने पसंद की एक मोटर ले लेना। तुम्हारे बी० ए० पास होने के उपहार में तुम्हें ले दूँगा।"

राजेश्वरी ने प्रसन्न कंठ से कहा—"अगर पढ़ने में ऐसे-ऐसे इनाम मिलते हैं, तो मैं भी कॉलेज में नाम लिखाकर पढ़ूँगी।"

बाबू राधारमण और मनोरमा, दोनो हँसने लगे।

मनोरमा ने उठकर जाते हुए कहा—"तो अब जाकर तैयारी करती हूँ, नौ बजनेवाला है। कॉलेज आजकल दस बजे खुलता है।" यह कहकर मनोरमा चली गई।

बाबू राधारमण ने विजय-भरी दृष्टि से राजेश्वरी की ओर देखते हुए कहा—"देखो, सब ठीक हो गया कि नहीं। अब

ज़रा दस-पंद्रह दिन बाद देखना, मेरी ओषधि काम करती है या नहीं।"

राजेश्वरी ने मुस्किराकर कहा—"यह मुझे आज मालूम हुआ कि तुम वकील तो हो ही, एक अच्छे हकीम भी हो। अब क्यों डॉक्टरों को बुलाकर उनकी लंबी-लंबी फ़ीस दूँगी। हरएक मर्ज़ की दवा तुमसे ही करवा लिया करूँगी।"

यह कहकर वह हँसने लगी, और राधारमण भी हँसने लगे। पति-पत्नी की एक विकट समस्या थोड़े ही प्रयास से सुलझ गई थी।

बाबू राधारमण ने मुक़द्दमे की फ़ाइल उठाते हुए कहा—"क्यों, अब तो फ़ाइल देखने की इजाज़त है?"

राजेश्वरी ने जाते हुए कहा—"शौक़ से, एक नहीं, दो देखो।"

पूर्व दिशा को बादलों ने इस तरह ढक लिया था, जैसे नवविवाहिता वधू अपने को, कपड़ों से ढककर अपना अस्तित्व ही मिटाकर, केवल एक कपड़ों का पुलिंदा विदित करती है। सूर्य भगवान् ने बाहर झाँकने की बहुत कोशिश की, लेकिन सब व्यर्थ हुआ, और आख़िर वह अपनी साध अपने उर में छिपाए रह गए। रात को अच्छी बारिश हो गई थी, और प्रकृति अपना स्नान समाप्त कर उज्ज्वल आभामय वस्त्र पहनने का आयोजन कर रही थी। जिस प्रकार कालिमा ने प्रकाश के लिये स्थान रिक्त कर दिया था, उसी प्रकार संसार के रंगमंच पर से पवित्र प्रेम ने बिदा लेकर विलासिता के तांडव नृत्य के लिये जगह छोड़ दी थी। राजा प्रकाशेंद्र ने अपनी आँखें खोलकर बाहर देखा—प्रात:काल की सफ़ेदी छाई हुई थी। वह उठकर बैठ गए, और बग़ल में बेख़बर मिस ट्रैवीलियन को जगाकर कहा—"अरे, आज सबेरा हो गया है, और हम लोग सोते ही रहे!"

रात्रि की मदिरा का नशा तो उतर गया था, लेकिन ख़ुमारी का दौरा था। क्रिया के बाद प्रक्रिया होती है, और उत्तेजना के बाद आलस्य होता है, यह प्रकृति का नियम है।

मिस ट्रैवीलियन ने करवट बदली। ख़ुमारी कम नहीं होती थी। उसने राजा प्रकाशेंद्र की चेतावनी नहीं सुनी।

राजा प्रकाशेंद्र ने उठते हुए कहा—"तुम उठोगी या नहीं।"

मिस ट्रैवीलियन एक जमुहाई लेती हुई उठ बैठी, और खिन्न स्वर से कहा—"क्या है, जो उठो-उठो कर सोना हराम कर दिया।"

राजा प्रकाशेंद्र वह झिड़की हज़म कर गए, और मृदु स्वर में कहा—"उठने को इसलिये कहता हूँ कि आज मुझे सबेरा यहीं हो गया, अब क्या करूँ ?"

मिस ट्रैवीलियन ने आँखें मलते हुए कहा—"तो मैं क्या करूँ, मैं तुम्हारे लिये अँधेरा नहीं कर सकती।"

राजा प्रकाशेंद्र चुप रहे। वह उठकर कपड़े पहनने लगे।

मिस ट्रैवीलियन फिर पलँग पर लेट गई, लेकिन नींद नहीं पड़ी। वह चुपचाप करवटें बदलती रही।

राजा प्रकाशेंद्र ने कपड़े पहनने के बाद जाते हुए कहा—"डार-लिंग, मैं जाता हूँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने लेटे-लेटे कहा—"कहाँ जाते हो ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने रुककर कहा—"घर जाता हूँ। आज बड़ी मुश्किल हो गई है।"

मिस ट्रैवीलियन ने बिना आँख खोले हुए कहा—"जब सबेरा हो ही गया, तो फिर घर जाने की क्या ज़रूरत ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने बैठते हुए कहा—"नौकर देखेंगे, तो क्या समझेंगे ?"

मिस ट्रैवीलियन ने उठकर पलँग पर बैठते हुए कहा—"मेरे इस कमरे में सिवा नसीबन के दूसरा नहीं आ सकता, और उससे कोई भेद छिपा नहीं। उसे दस-पाँच रुपए दे देना, बस, वह तुम्हारी ग़ुलाम है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"ख़ैर, रुपयों की कोई चिंता नहीं। रुपया हरएक का मुँह बंद कर सकता है, मैं उसका भी मुँह बंद कर दूँगा।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"अच्छी याद दिलाई। आजकल मेरे पास बिलकुल रुपए नहीं हैं। तुमने कुछ इंतिज़ाम किया या नहीं ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने लापरवाही से कहा—"कितने रुपयों की ज़रूरत है। यह हमेशा याद रक्खो कि जब तुम्हारे पास रुपए न रहें, तो दो-चार दिन पहले कह दिया करो।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक जमुहाई लेते हुए कहा—"अभी फ़िलहाल पाँच-सात हज़ार से काम चल जायगा; दस-पंद्रह दिन बाद फिर दे देना।"

राजा प्रकाशेंद्र ने जेब से सिगरेट-केस निकालकर एक सिगरेट मिस ट्रैवीलियन को दी, और दूसरी स्वयं जलाते हुए कहा—"आज शाम को ले आऊँगा।"

मिस ट्रैवीलियन ने सिगरेट जलाते हुए कहा—"अभी आज ही कोई ज़रूरत नहीं, कल तक भी आ जायँ, तो ठीक है।"

इसी समय नसीबन ने कमरे का दरवाज़ा खटखटाया, और कहा—"मिस साहिबा, चाय तैयार है।"

मिस ट्रैवीलियन ने राजा प्रकाशेंद्र को दरवाज़ा खोलने का आँखों से संकेत किया। राजा प्रकाशेंद्र ने दरवाज़ा खोल दिया।

मिस ट्रैवीलियन उसी तरह बैठी रही। नसीबन ने इस तरह कमरे में प्रवेश किया, जैसे उसने राजा प्रकाशेंद्र को देखा ही न हो। एक टेबुल खींचकर उस पर चाय का ट्रे रख दिया, और चाय में दूध, शकर वग़ैरा मिलाने लगी।

राजा प्रकाशेंद्र चुपचाप आकर कुर्सी पर बैठ गए।

नसीबन ने दो प्यालों में चाय तैयार कर एक प्याला मिस ट्रैवीलियन को दे दिया, और दूसरा राजा प्रकाशेंद्र को।

राजा प्रकाशेंद्र चाय पीने लगे।

नसीबन ने पूछा—"आप गरम पानी से स्नान करेंगी, या ठंडे से?"

मिस ट्रैवीलियन ने घड़ी देखते हुए कहा—"साढ़े सात बज गया, और अभी तक सबेरा ही मालूम होता है।"

नसीबन ने बड़े अदब से जवाब दिया—"जी हाँ, अभी सुबह तक बारिश होती रही है, और ऐसे आसार हैं कि शायद अभी और पानी बरसे।"

राजा प्रकाशेंद्र ने अपनी जेब से एक दस रुपए का नोट निकालकर नसीबन को देते हुए कहा—"नसीबन, यह तुम्हारे लिये इनाम है।"

नसीबन ने अपनी प्रसन्नता छिपाकर वह नोट ले लिया, और अदब से सलाम किया।

मिस ट्रैवीलियन ने नसीबन को जाने का आदेश दिया। वह ट्रे लेकर चली गई।

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"कल मैं नशे में बिलकुल बेहोश हो गया, इसलिये कुछ बातें भी तुमसे नहीं कर सका।"

मिस ट्रैवीलियन ने उत्सुकता-पूर्वक कहा—"कौन-सी बातें।"

राजा प्रकाशेंद्र कहने लगे—"कल मैं शाम को अपने मित्र डॉक्टर आनंदीप्रसाद से मिलने गया था। यह तो तुम्हें मालूम है कि वह आजकल सर रामप्रसाद के यहाँ रहते हैं। कुसुमलता से वहाँ मुलाक़ात हुई, जो मिस्टर वर्मा को बंबई पहुँचाने गई थी। उसकी ज़बानी मालूम हुआ कि मायावती अपने मा-बाप के साथ इँगलैंड गई है। जिस जहाज़ से मिस्टर वर्मा गए हैं, उसी से वह भी गई।"

मिस्टर वर्मा के नाम ने मिस ट्रैवीलियन के मन में एक मुरझाई अग्नि को चेतन कर दिया था। वह किसी विचार में मग्न हो गई।

राजा प्रकाशेंद्र ने यह समझकर कि मेरी कही ख़बर से यह

सोच में पड़ गई हैं, सांत्वना-युक्त शब्दों में कहा—"इसमें सोचने की कौन बात, यह अच्छा हुआ, जो काँटा अपने आप निकल गया। अब मुझे निश्चय है कि बाप-बेटी दोनो ईसाई हो जायँगे, और थोड़े दिनों में ही सब झगड़ा पाक हो जायगा।"

मिस ट्रैवीलियन ने अपने मन का भाव छिपाते हुए कहा—"हाँ, उसका जाना अच्छा ही हुआ। लेकिन तुम कहते हो कि उसकी मा भी साथ है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उत्तर दिया—"हाँ, कुसुमलता तो यही कहती थी कि वे सब लोग सपरिवार थे।"

मिस ट्रैवीलियन ने कुछ विचार करने के बाद कहा—"रानी किशोरकेसरी का जाना कोई मतलब रखता है। वह फ़िज़ूल जानेवाली नहीं, क्योंकि उन्हें रुपया बहुत प्यारा है। वह परसाल जब यहाँ आई थीं, तो रानी रतनकुँवरि ने चंदा माँगा था। उन्होंने साफ़ इनकार कर दिया, और नियमावली या उद्देश्य वग़ैरह भी न देखे, और न सुने। बड़ी ख़ुश्क-मिज़ाज और ख़ुदग़रज़ है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने अपनी हँसी से उसकी बात का अनुमोदन करते हुए कहा—"ख़ुश्क-मिज़ाज क्या, बड़ी शैतान है। सतर्क तो वह इतनी रहती है कि अगर पत्ता भी खड़के, तो सचेत होकर बैठ जाती है। उसकी माया अपार है, और उसे धोखा देना आसान काम नहीं। मैं उस डाइन को अच्छी तरह जानता हूँ। जब तक वह रही, मुझे बड़ी होशियारी से रहना पड़ा, और उसकी ख़ुशामद करते-करते नाकों दम आ गया था।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसते हुए कहा—"वह ऐसी ही बदमाश थी। उसे एक ही दिन दूर से देखकर पहचान गई थी, तभी मैं उसके सामने नहीं जाती थी, और उससे दूर-दूर रहती थी। लेकिन तुम भी उसके उस्ताद निकले, उसकी आँखों में धूल झोंक दी।"

राजा प्रकाशेंद्र ने प्रसन्न होते हुए कहा—"धूल क्या झोंक दी, उसे पूरा उल्लू बनाए रहा। उसने मुझे हमेशा धर्म की मूर्ति समझा, और हालाँकि यहाँ तक बातें हो गई हैं, मगर उसे पूरी तरह अभी तक यक़ीन न हुआ होगा। मैंने उस पर पूरी तरह अपना सिक्का जमा लिया था।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक दूसरी सिगरेट जलाते हुए कहा—"मैं मानती हूँ कि यह गुण तुममें बहुत है। तुमने मुझ पर ही पूरा अधिकार जमा लिया है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने संतोष की हँसी हँसते हुए कहा—"यह तो तुम झूठ कहती हो।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसते हुए कहा—"झूठ क्यों कहती हूँ। देखो, तुम आज मिस ट्रैवीलियन के शयनागार में बैठे हुए हो, जहाँ किसी को आने का अधिकार नहीं।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"यह तो तुम्हारी कृपा है।"

मिस ट्रैवीलियन ने पूछा—"कहो, कुसुमलता से मुलाक़ात हुई है?"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"हाँ, वह आजकल बड़ी दुखी मालूम होती है।"

मिस ट्रैवीलियन ने पूछा—"तुमने एक दिन मुझसे कहा था कि तुम्हारे मित्र कुँवर आदित्यकुमार उस पर आसक्त थे।"

राजा प्रकाशेंद्र ने जवाब दिया—"आसक्त थे नहीं, आसक्त हैं। वह अभी तक उसे भूल नहीं सके। उसे पाने के लिये वह दस-बीस हज़ार रुपया ख़र्च करने को तैयार हैं। लेकिन क्या किया जाय, वह हाथ नहीं आने की।"

मिस ट्रैवीलियन ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से पूछा—"क्यों?"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर उत्तर दिया—"इसलिये कि उसकी

शादी हो गई। शादी न होने के पहले तो ज़रूर कुछ उम्मेद थी।"

मिस ट्रैवीलियन ने मज़ाक़ से हँसते हुए कहा—"शादी होने के बाद क्या वह क़ब्ज़े में नहीं आ सकती। तुम निरे बुद्धू निकले।"

राजा प्रकाशेंद्र ने झेंपकर कहा—"क़ब्ज़े में क्यों नहीं आ सकती, लेकिन ज़रा मुश्किल है। वह है भी बड़ी चालाक। दूसरों की तरह सहज में ही हाथ में नहीं आने की।"

मिस ट्रैवीलियन ने उत्तर दिया—"तुम देखोगे कि वह कितनी आसानी से क़ब्ज़े में आती है। मैं कुँवर आदित्यकुमार से रुपया ज़रूर ऐंठ लूँगी, और कुसुमलता को अपनी गुप्त सभा की सदस्या बना लूँगी। बस, एक मर्तबे क़िला फ़तह करना है, फिर तो वह मेरे इशारों पर नाचेगी। जब कभी एकांत में यहाँ आकर फँस गई, और उसे उस दवा की एक ख़ूराक किसी तरह पिला सकी, बस, वह हमारे क़ब्ज़े में है। जानते हो, ऐसी स्त्रियाँ बाद में शोर नहीं मचातीं।"

मिस ट्रैवीलियन पैशाचिक हँसी से हँस पड़ी।

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"अगर किसी तरह मनोरमा को फँसा सको, तो बड़ा अच्छा हो। उसे अपनी ख़ूबसूरती का बड़ा नाज़ है, बड़ा घमंड है। वह मेरी ओर देखती ही नहीं। उसका मैं अभिमान चूर्ण करना चाहता हूँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने तुरंत ही कहा—"तुमसे ज़्यादा मैं परेशान हूँ। उसने एक दिन मेरा अपमान किया था, मैं उसे कभी नहीं भूल सकती। मेरे दिल में ख़ुद आग जल रही है। मैं उसे नीचा दिखाना चाहती हूँ, और फिर उस पर हँसना चाहती हूँ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने प्रसन्नता से कहा—"तब देर किस बात की है,

उसका घमंड एक दिन पामाल कर दिया जाय। मैं भी इसके लिये तैयार हूँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसकर कहा—"धीरज रक्खो। सब्र का फल मीठा होता है। उतावलापन करने से सब खेल बिगड़ जायगा। मैं उस समय की प्रतीक्षा कर रही हूँ, जब वह मेरे क़ाबू में आ जाय। अभी तक तो मिस्टर वर्मा की वजह से मौक़ा मिलता नहीं था, अब उनके चले जाने से किसी-न-किसी दिन मौक़ा हाथ आवेगा ही। मौक़ा मिलने पर मैं चूकनेवाली नहीं, चाहे इसमें मेरा कुछ नुक़सान क्यों न हो। साल में ३६५ दिन होते हैं। कभी तो मौक़ा हाथ आवेगा ही।"

यह कहकर मिस ट्रैवीलियन पैशाचिक हँसी से हँस पड़ी। उसकी भयंकरता से उसका शयनागार गूँज गया, और शैतान उसकी मंत्रणा सुनकर संतोष के साथ मुस्किराने लगा, और वेदना चिहुँककर सजग हो गई, और भीषण स्वर से विलाप करने का आयोजन करने लगी।

राजा प्रकाशेंद्र भावी विजय से प्रसन्न हो गए, और मिस ट्रैवीलियन अपने कार्य-क्रम को निश्चित् करती हुई स्नान करने चली गई।

मध्यसागर को पार करता हुआ जलयान वेग के साथ जा रहा था। डेक पर खड़ी हुई मायावती, रानी किशोरकेसरी, राजेंद्रप्रसाद और कुँवर नरेंद्रकिशोर प्रकृति का दृश्य देख रहे थे।

मायावती ने उस निस्तब्धता को भंग करते हुए कहा—"लाल सागर में बड़ी गर्मी पड़ती है, मेरा तो ऐसा ख़याल है कि भारत से भी ज़्यादा गर्मी यहाँ है ?"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"हाँ, ऐसा ही है, क्योंकि लाल सागर के दोनो ओर संसार के दो बड़े मरुप्रदेश आ गए हैं—अरब और कुछ थोड़ी दूर सहारा। दोनो देशों का असर लाल सागर पर पड़ता है। लाल सागर का दक्षिणी भाग ज़्यादा गर्म है, क्योंकि एक ओर तो आफ्रिका की पर्वत-श्रेणी तथा बालुकामय प्रदेश है, और दूसरी ओर अरब का रेगिस्तान आ गया है।"

मायावती ने एक गहरी साँस लेकर कहा—"मैं मिस्र देश के पिरामिड और उनमें रक्खे हुए वहाँ के प्राचीन शासकों के शव देखना चाहती थी, लेकिन बाबा ने कुछ सुना ही नहीं। हम लोगों के पास वहाँ आने-जाने का काफ़ी समय था, और बहुत-से यात्री गए भी, लेकिन न-मालूम उन्होंने क्यों नहीं जाने दिया।"

रानी किशोरकेसरी ने जवाब दिया—"तुम्हारे बाबा बड़े सनकी हैं। सनक नहीं आई, इसलिये नहीं जाने दिया, और अगर सनक चढ़ जाती, तो फिर चाहे जो कुछ होता, वह ज़बरदस्ती ले गए होते। उनका एक निराला ही पंथ है।"

मायावती और राजेंद्र दोनों हँसने लगे।

इसी समय राजा भूपेंद्रकिशोर ने वहाँ आकर पूछा—"क्या है ?"

रानी किशोरकेसरी ने जवाब दिया—"तुम्हें जब किसी बात की सनक सवार हो जाती है, तो उसे तुरंत कर डालते हो, लेकिन जब सनक नहीं आती, तब कोई लाख कहे, सुनते ही नहीं।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने पूछा—"कैसे ?"

रानी किशोरकेसरी ने जवाब दिया—"इस तरह कि हम लोगों ने तुमसे बहुत कहा कि मिस्र देश के पिरामिड दिखा दो, और सैकड़ों आदमी गए भी, लेकिन तुमने किसी की बात नहीं मानी। न गए और न जाने दिया। हम लोग राजेंद्र बाबू के साथ जाकर देख आतीं, लेकिन तुमने बात सुनकर उड़ा दी।"

राजा भूपेंद्रकिशोर हँसने लगे।

रानी किशोरकेसरी ने झुँझलाकर कहा—"अब हँसते हैं। ख़ुद तो सब देख आए, लेकिन दूसरों को देखने नहीं जाने देते।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"वापस आते वक़्त सब दिखा देंगे। तुम्हें कुछ मालूम है कि क्यों मैंने तुमको वहाँ जाने नहीं दिया ?"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"नहीं, अगर मुझे मालूम होता, तो जाने का आग्रह क्यों करती ?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"बात यह है कि वहाँ आजकल युद्ध हो रहा है, और लड़ाई में स्त्रियाँ नहीं जातीं, इसलिये तुम्हें नहीं भेजा।"

यह कहकर वह हँसने लगे।

राजेंद्रप्रसाद ने पूछा—"युद्ध किससे हो रहा है। मैंने तो किसी अख़बार में नहीं पढ़ा।"

रानी किशोरकेसरी ने हँसकर कहा—"तुम भी राजेंद्र बाबू, किसकी बातों में पड़े हो, यह क्यों नहीं कहते कि सनक नहीं आई, इसलिये नहीं भेजा।"

राजा भूपेंद्रकिशोर हँसने लगे।

फिर थोड़ी देर बाद राजेंद्रप्रसाद से अँगरेज़ी में कहा—"इन लोगों में देखने का भाव जाग्रत् करने के लिये इनको नहीं जाने दिया। यह मनोविज्ञान का सिद्धांत है कि जिस वस्तु को तुम किसी से छिपाने का जितना प्रयत्न करोगे, उसका उस वस्तु की ओर उतना ही ध्यान दौड़ेगा। इजिप्ट में परामिड इनको नहीं दिखाया, तो ये लोग दूसरी वस्तुओं को देखने के लिये विशेष रूप से उत्कंठित होंगी।"

राजेंद्रप्रसाद ने प्रतिवाद करना उचित नहीं समझा। राजा भूपेंद्रकिशोर सब कुछ सहन कर सकते थे, लेकिन प्रतिवाद नहीं सहन कर सकते थे। वह उनकी इस प्रकृति से अच्छी तरह वाक़िफ़ हो गए थे।

मायावती ने कहा—"नेपिल्स पर अब जहाज़ ठहरेगा, हम लोग वहाँ उतर जायँगे, और रेल द्वारा यात्रा करेंगे। रास्ते में बहुत शहर और मुल्क देखने में आवेंगे।"

राजेंद्रप्रसाद ने इस बात का अनुमोदन किया, और रानी किशोर-केसरी ने अपनी सम्मति दी। राजा भूपेंद्रकिशोर अपने विशेष वोट से भी उस प्रस्ताव को रद्द नहीं कर सकते थे, इसलिये सबके साथ उन्होंने भी स्वीकार कर लिया, और प्रस्ताव सर्व-सम्मति से पास हो गया।

रात्रि को तीन बजने के बाद जहाज़ नेपिल्स के तट पर पहुँच गया था। पोर्ट सईद में कुछ विलंब हो जाने से बेमौक़े जहाज़ पहुँचा था। प्रातःकाल होते-होते राजा भूपेंद्रकिशोर सपरिवार जहाज़ से योरप की भूमि पर उतर पड़े।

राजेंद्रप्रसाद भी उनके साथ थे। उनका संबंध इतने दिनों में रानी मायावती के परिवार से इतना घनिष्ठ हो गया था कि उन्हें कोई छोड़ना नहीं चाहता था। और, रानी किशोरकेसरी तो उनकी ओर विशेषकर आकर्षित हुई थीं, तथा उनकी कृपा भी विशेष रहती थी। वह उनको नरेंद्र की भाँति समझतीं और वैसा ही उनका आदर-सत्कार था। राजेंद्र भी उन्हें मा की भाँति मानते और वैसी ही श्रद्धा भी करते थे।

नेपिल्स में दो दिन ठहरकर वे लोग रोम के लिये रवाना हो गए। रोम ऐतिहासिक नगर था, जिसका संक्षिप्त इतिहास राजेंद्रप्रसाद ने उन लोगों को बता दिया, जिससे उनकी दिलचस्पी और बढ़ गई।

पोप का महल देखकर सबके हृदय में आतंक-मिश्रित श्रद्धा जाग्रत् हुई। रोमन शिल्प-कला के सर्वोत्कृष्ट प्रमाण वहाँ मौजूद थे, जिन्होंने सबको चकित कर दिया। होटल में आने पर भी वे, लोग उन पर घंटों बातें करते रहे।

तीसरे पहर वे शहर से बाहर पुराने ऐतिहासिक स्थान [illegible] गए। राजा भूपेंद्रकिशोर किसी कारण से होटल में ही रह गए थे, केवल राजेंद्रप्रसाद, मायावती और रानी किशोरकेसरी गई थीं। नरेंद्र अपने पिता के साथ रह गया था, जिन्होंने संगीतालय में जाना निश्चित किया था। नरेंद्र का गीत और वाद्य से स्वाभाविक प्रेम था। राजेंद्रप्रसाद उन लोगों को एक-एक करके स्थान दिखा रहे थे। गाइड, जो दुभाषिया भी था, अँगरेज़ी में समझा रहा था, और राजेंद्रप्रसाद उसे हिंदी में रानी किशोरकेसरी को समझाते थे। रानी मायावती तो किसी हद तक समझ लेती थीं।

संध्या धीरे-धीरे अग्रसर हो रही थी, और श्यामल छटा रोमन-साम्राज्य के भव्य चिह्नों को काली चादर के अंदर छिपा रही थी।

उन खँडहरों से आतंक की लहर उठकर उन्हें कंपित करने लगी। रानी किशोरकेसरी ने होटल चलने का इशारा किया। मायावती भी यही चाहती थी। राजेंद्रप्रसाद ने गाइड से चलने को कहा।

इसी समय सहसा किसी ने बहुत ही दुःख-पूर्ण स्वर में हिंदी में कहा—"ईश्वर तुम्हारा भला करे।"

रानी किशोरकेसरी वग़ैरह स्तंभित होकर खड़े हो गए। इस अपरिचित भूमि में यह भारतीय भिखारी कौन है? इस प्रश्न ने सबको चकित कर दिया।

राजेंद्रप्रसाद ने आगे बढ़ते हुए पूछा—"तुम कौन हो?"

भिखारी ने जवाब दिया—"मैं संसार में सबसे दुखी आदमी हूँ, जो इन खँडहरों में पड़ा अपनी ज़िंदगी बिता रहा हूँ।"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्सुकता से पूछा—"यह ठीक है, लेकिन मैं यह जानना चाहता हूँ कि क्या तुम भारतीय हिंदू हो?"

भिखारी ने एक तीव्र दृष्टि से राजेंद्रप्रसाद की ओर देखा—उसकी आँखें उस अंधकार में चमक रही थीं।

उसने धीमे स्वर में कहा—"मैं हिंदुस्थानी हूँ, लेकिन हिंदू नहीं, ईसाई हूँ।"

राजेंद्रप्रसाद ने पूछा—"तुम यहाँ कैसे आए? अगर आए, तो फिर यहाँ कैसे ठहर गए? और भिक्षावृत्ति क्यों अख़्त्यार कर ली?"

भिखारी ने दुःखित स्वर में कहा—"यह एक लंबी कहानी है। मैं भाग्यवादी हूँ, इसलिये मैं यही कहूँगा कि मेरा भाग्य मुझे यहाँ ले आया है, और भाग्य के कारण ही मुझे पेट भरने के लिये दूसरों के आगे हाथ फैलाना पड़ता है, नहीं तो मैं ख़ुद कभी दूसरों को देने की ताक़त रखता था। शायद आप लोग विश्वास न करें, एक समय मैं लखपती था। लाखों रुपयों की संपत्ति मेरे पास थी।"

कहते-कहते भिखारी के नेत्रों में अतीत की स्मृति न आँसू ला दिए।

रानी मायावती और रानी किशोरकेसरी की सहज करुणा जाग्रत् हो गई। राजेंद्रप्रसाद का भी हृदय द्रवीभूत हो गया।

राजेंद्रप्रसाद ने पूछा—"तुम यहाँ कहाँ रहते हो?"

भिखारी ने खँडहरों को संकेत करते हुए कहा—"मैंने रोमन साम्राज्य की शरण ली है, इसलिये इन्हीं खँडहरों में मैं अपने दिन व्यतीत करता रहता हूँ।"

रानी मायावती ने आगे बढ़कर पूछा—"क्या तुम नौकरी करना चाहते हो?"

भिखारी ने जवाब दिया—"माईजी, बग़ैर जान-पहचान के कोई नौकर नहीं रखता। नौकरी करना हो, तो पहले सारटीफ़िकेट लाओ।"

रानी मायावती ने जवाब दिया—"मैं तुमको नौकर रखती हूँ, और तुमसे कोई सारटीफ़िकेट नहीं माँगती। तुम्हारी ज़बान ही सारटीफ़िकेट है। क्या तुम नौकर रहना चाहते हो?"

भिखारी ने प्रसन्न होकर जवाब दिया—"जब आपकी ऐसी इच्छा है, तो मैं सहर्ष तैयार हूँ। मेहनत से अपनी जीविका करना इस बेइज़्ज़त और गर्हित काम से लाखगुना बेहतर समझता हूँ।"

मायावती ने पूछा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

भिखारी ने जवाब दिया—"जूलियन लायोनेल।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"यह तो इटैलिअन नाम है, और तुम अपने को भारतीय कहते हो।"

जूलियन ने अदब के साथ कहा—"जी हाँ, यह इटैलियन नाम है, जिसकी आड़ में मैंने अपनी असलियत छिपा रक्खी है। आप जानते हैं कि भीख माँगना कोई इज़्ज़त की बात नहीं। मैंने आप

लोगों की हिंदी में बातचीत सुनी, और हिंदुस्थानी लिबास देखकर मन में ख़याल किया कि आप लोगों से कुछ मिल जायगा, जो दो-एक रोज़ के लिये काफ़ी होगा, इसलिये मैंने हिंदुस्थानी ज़बान में अर्ज़ किया। भूख की मार बड़ी ख़राब होती है, जो आदमी से नीच-से-नीच काम करा लेती है।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"अब चलना चाहिए, काफ़ी अँधेरा हो गया है। मुझे इन खँडहरों में डर मालूम होता है।"

रानी मायावती ने जूलियन से कहा—"अगर तुम्हारे पास कोई सामान हो, तो ले आओ। हम लोग अब जायँगे।"

जूलियन ने जवाब दिया—"मेरे पास सामान क्या है। कहीं भिखारियों के पास आज तक सामान हुआ है। एक छोटा-सा फटा कंबल है, और दो-एक फटे हुए कपड़े; जिनसे मैं अपने को सरदी से बचाता था। उनको यहीं छोड़ जाऊँगा, जो किसी मेरे-जैसे भिखारी के काम आवेंगे।"

रानी मायावती ने कहा—"अगर ऐसा है, तो मेरे साथ चलो।"

गाइड ने, जो अभी तक चुपचाप देख रहा था, कुछ-कुछ घटना से अनुमान कर राजेंद्रप्रसाद से पूछा—"इसे आप कहाँ ले जाते हैं?"

राजेंद्रप्रसाद ने जवाब दिया—"इसे शहर में ले जायँगे। क्यों?"

गाइड ने कहा—"ड्यूक मुसोलिनी भिखमंगों के सख़्त ख़िलाफ़ हैं, अगर यह शहर में माँगता हुआ पकड़ा जायगा, तो इसको कम-से-कम दो महीना क़ैद की सज़ा मिलेगी।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"यह वहाँ भीख नहीं माँगेगा। हम लोगों ने इसको नौकर रक्खा है।"

गाइड ने चकित होकर पूछा—"नौकर रक्खा है। इसके पास नेकचलनी का क्या सारटीफ़िकेट है?"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—'यह भारतीय है, और हम भारतीय हैं। इसका भारतीय होना ही एक पर्याप्त सारटीफ़िकेट है।"

गाइड ने सचेत करते हुए कहा—"अगर आप नौकर रखते हैं, तो आप इसके ज़िम्मेवार हैं। आपको इस भूल के लिये कभी बड़ा पश्चात्ताप करना पड़ेगा। ऐसे भिखमंगों को एकाएक किसी भावावेश में नौकर रखने से कभी शुभ फल नहीं होता। जिन लोगों की आदत भीख माँगने की पड़ जाती है, वे नौकरी नहीं कर सकते। नतीजा यह होता है कि कभी मौक़ा पाकर कोई गहरी रक़म लेकर भाग जाते हैं, और नाहक़ पुलिस को परेशान होना पड़ता है। मेरा कर्तव्य सतर्क करने का था, अब आप जानें।"

जूलियन गाइड की बातें सुन रहा था। उसने आह-भरे स्वर में कहा—'गाइड, तुम सच कहते हो, लेकिन सभी भिखारी एक श्रेणी के नहीं होते। मैं आज ज़रूर किसी घटना-चक्र के फेर में पड़कर भीख माँगता हूँ, लेकिन वास्तव में भीख माँगना मेरा पेशा नहीं है। ज़रूरत और साधन-हीनता मनुष्य से सब काम करा लेती है।"

गाइड ने घृणा-पूर्ण दृष्टि से जूलियन की ओर देखा, फिर कहा—"तुम अगर भारतीय हो, तो क्या बतला सकते हो कि इटली में कब और कैसे आए?"

जूलियन ने कहा—"मैं ड्रेडमंड कुक कंपनी के 'मुलतान'-नामक जहाज़ पर नौकर था। चार साल पहले वह जहाज़ नेपिल्स में ठहरा था, और जब वह दूसरे दिन रवाना हुआ, तो थोड़ी दूर जाने पर एक बड़ा तूफ़ान आया। तूफ़ान इतना ज़बरदस्त था कि हमारी सब कोशिशें बेकार हुईं, और जहाज़ डूब गया। उस जहाज़ में मैं किसी तरह बच गया, और दो दिन बाद भाग्य या अभाग्य से इटली के तट पर आ गया। दो दिन तक पानी में रहकर मैं बिल-

कुल निःशक्त हो गया था। कई दिनों तक एक मछुहा के घर रहा, और उसकी सेवा-शुश्रूषा से मैंने अपनी तंदुरुस्ती वापस पाई। मेरे अभाग्य से मैं जिस घर में ठहरा था, वह परिवार एक दिन सब-का-सब समुद्र में डूब गया, जब वह मछलियाँ पकड़ने गया था। गाँववालों ने इस आपत्ति का कारण मुझे बताया, और उन लोगों ने मुझे निकाल दिया। तब से मैं घूम रहा हूँ। कई जगह काम की तलाश की, लेकिन अपरिचित को कोई काम नहीं देता। काम मिले या न मिले, भूख तो लगती है। इसलिये इस पेट की कभी न बुझनेवाली अग्नि के लिये मुझे दर-दर भीख माँगना पड़ा। यह मेरा सच्चा इतिहास है, अगर कोई दरियाफ़्त करना चाहे, तो कर ले।"

जूलियन ने अपनी कहानी इतनी गंभीरता और करुण स्वर में कही थी कि रानी मायावती को उस पर विश्वास हो गया। उसके स्वर में सत्यता की झलक साफ़ मालूम होती थी, और उस पर विश्वास करने के लिये मन साक्षी दे रहा था। किंतु गाइड को विश्वास न हुआ।

गाइड ने कहा—"मैं ऐसी कहानियाँ बहुत सुन चुका हूँ। तुम लोग कहानी बनाने में बड़े चतुर होते हो। मैं अच्छी तरह जानता हूँ।"

इस समय तक वे खँडहरों के बाहर उस स्थान पर आ गए थे, जहाँ इन लोगों के लिये मोटर खड़ी थी।

राजेंद्रप्रसाद ने मायावती से पूछा—"क्या सब सुनकर अब भी आप इस अनजान भिखारी को नौकर रखना पसंद करती हैं?"

रानी मायावती ने उसकी कहानी पर संपूर्णतया विश्वास कर लिया था। उन्होंने दृढ़ स्वर में कहा—"हाँ, मैंने इसे नौकर रखने का पूरा-पूरा विचार कर लिया है, चाहे इसके लिये मुझे

कभी पश्चात्ताप भी करना पड़े। मेरे मन में कोई कहता है कि तुम इसका विश्वास करो, यह तुम्हें धोखा नहीं देगा। मैं इसका ज़रूर उद्धार करूँगी, चाहे जो कुछ हो, यह मेरा देशवासी है। मैं सच कहती हूँ मिस्टर वर्मा, न-जाने क्यों इसकी ओर आकर्षित हो गई हूँ।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"मैं भी इसकी कहानी सत्य मानती हूँ। अगर यह हमें धोखा देगा, तो अपनी करनी भोगेगा, और अगर सचाई से रहेगा, तो इसी का कल्याण है। जब माया ने इसे नौकर रख लिया है, तो ठीक है। मैं भी अनुमोदन करती हूँ।"

जूलियन लाथोनेल उस परिवार के साथ ही मोटर में बैठकर आ गया।

जूलियन लायोनेल को देखकर राजा भूपेंद्रकिशोर प्रसन्न नहीं हुए, लेकिन कुछ कहा भी नहीं। फ़िलहाल वह मायावती के किसी काम में हस्तक्षेप न करना चाहते थे, क्योंकि वह यह समझते थे कि इससे उसके कोमल और दुखी हृदय को ठेस पहुँचेगी। जब दूसरे दिन सवेरे उन्होंने उसे प्रकाश में देखा, तो कई दुर्भावनाएँ उसके सरल मुख को देखकर दूर हो गईं। जूलियन का वर्ण गेहुआँ था, जो खुली हवा में रहने और आधा पेट खाने से कुछ काला पड़ गया था। उसके नेत्र उज्ज्वल-काले थे, जो सरलता का बखान करते थे, और सशंकित होकर बार-बार देखना यह ज़ाहिर करते थे कि वह जन्म से भीरु स्वभाव का है। उसके मुख की गढ़न गोल थी, और चेहरा लंबी-लंबी डाढ़ी-मूछों से भरा हुआ था। उसकी आयु लगभग ३५ वर्ष की थी, परंतु चिंता, क्लेश और शंका ने उसे असमय वृद्ध कर दिया था। उसके दाहने गाल पर एक लंबा-सा दाग़ था, जो किसी ऑपरेशन का मालूम होता था। उसका स्वर कोमल और विश्वास पैदा करनेवाला था, और उसमें एक ऐसा कंपन था, जो मनुष्य के हृदय में दया तथा करुणा का भाव उत्पन्न करता था। उसका क़द लगभग छ फ़ीट लंबा था, और शरीर हृष्ट-पुष्ट था।

राजा भूपेंद्रकिशोर के मन की शंकाएँ उसे देखकर दूर हो गईं, और जब उन्होंने उसकी दुःखमय कहानी सुनी, जो उसने मायावती वग़ैरह से कही थी, तो उनके हृदय में सहानुभूति उत्पन्न हो गई। लायोनेल इतनी साफ़ हिंदी बोलता था, जिससे वह भारतीय

मालूम होता था। इसके अतिरिक्त उसने भारत के संबंध में ऐसी बातें बतलाईं, जिनको भारतीय ही जान सकते थे।

जूलियन लायोनेल ने उनसे अपना पूर्व-इतिहास इस प्रकार कहा—"मैं एक भद्र ईसाई-कुल में, जबलपुर में, पैदा हुआ था। मेरे पिता का नाम अल्फ्रेड मायादास था। मेरे दादा रामजीवन मायादास ने ईसाई-धर्म ग्रहण किया था, और तब से हम लोग बराबर ईसाई-धर्म मानते चले आते हैं। रामजीवन मायादास ने बहुत आपत्ति आने पर ईसाई होना स्वीकार किया था। इसके पहले हम ब्राह्मण थे। बात यह थी कि मेरे दादा का प्रेम-संबंध एक विधवा से हो गया था, और दादाजी ने उससे विवाह कर लिया था, जिसे हिंदू-समाज घृणा की दृष्टि से देखता था। हमारी जाति ने हमें निकाल दिया था, और हर प्रकार का व्यवहार बंद कर दिया था। हमारे दादा बड़े क्रोधी स्वभाव के थे। वह उसी दिन गाँव छोड़कर जबलपुर चले आए, और दूसरे दिन ईसाई-धर्म ग्रहण कर लिया। हमारे दादा के पास बहुत थोड़ी संपत्ति थी, उसी से व्यवसाय आरंभ कर दिया। ईसाई-पादरियों की सहायता से हमारा व्यवसाय चमक उठा, और थोड़े दिनों में वह धनवान् हो गए। मेरे पिता का जन्म जबलपुर आने के बाद हुआ, और वहीं उन्हें शिक्षा दी गई। मेरे दादा को नौकरी से घृणा थी, और उसको गुलामी कहते थे। यद्यपि मेरे पिता आगे पढ़ना चाहते थे, परंतु उन्होंने पादरियों के कहने पर भी उन्हें नहीं पढ़ाया, और दूकान में बैठाने लगे। हमारी दूकान अँगरेज़ी खाद्य पदार्थों की थी, जिससे हमारा संबंध हमेशा अँगरेज़ों से रहता था, इसलिये हम लोगों को अँगरेज़ी बोलने का पूरा अभ्यास था, हालाँकि हम उतनी पढ़ नहीं सकते थे।

"सन् १९०८ में हमारे दादा का देहांत हुआ। उस समय मैं

केवल दस वर्ष का था। हमारे पिता ने एक यूरेशियन स्त्री से विवाह किया था, और वह दादा के ही प्रबंध से हुआ था। मिस्टर टॉमस हनी क्रूम मेरे नाना का नाम था। इनको घुड़दौड़ का शौक़ था, और उसके जुए में अपनी सारी संपत्ति खो चुके थे। वह मेरे दादा के क़र्ज़दार थे, और उनका कई हज़ार रुपया उनके ऊपर क़र्ज़ निकलता था। मेरे नाना एक कुलीन, संभ्रांत वंश के थे। उनके साथ संबंध करने के लिये मेरे दादा लालायित थे। एक दिन उन्होंने मेरे पिता के साथ उनकी लड़की का विवाह कर देने का प्रस्ताव किया। पहले तो उन्होंने अस्वीकार किया, मगर जब मेरे दादा ने नालिश देने की धमकी दी, तो उनको अपनी सम्मति देनी पड़ी। अंत में मेरे पिता का विवाह उनकी एकमात्र संतान मिस हनी क्रूम से हो गया, और विवाह होने के दो वर्ष बाद मैं पैदा हुआ। मेरे दादा के मरने के बाद मेरे पिता ने दूकान सँभाल ली। उन्होंने भी परिश्रम और अध्यवसाय से बहुत धन पैदा किया। सन् १९१४ की लड़ाई ने तो हमें मालामाल कर दिया। लाखों रुपए हमने पैदा किए। मेरे पिता की इज़्ज़त भी बढ़ी, और यश भी फैला। उन्होंने 'वार-फ़ंड' में अकेले पचास हज़ार रुपया दिया, जिससे हुक्कामों में भी उनका आदर-सम्मान बढ़ गया। सन् १९१६ में उन्होंने कई ठेके लिए, जिनमें आशातीत लाभ हुआ। हम लोग लाखों रुपए के मालिक हो गए।

"मैं अपने माता-पिता की एक ही संतान था, जिससे मेरा लाड़-प्यार बहुत था। मैं पढ़ने-लिखने में बिलकुल कच्चा था, और उस ओर से उदासीन था। मेरे माता-पिता ने भी अधिक ज़ोर नहीं दिया, क्योंकि धन देखकर उनके विचार बदल गए थे। मुझे दूकान-दारी में लगाने का उनका पूरा इरादा था, और मैं भी इसी ख़याल से कुछ पढ़ता-लिखता न था।

"मैंने ऐशो आराम से रहना सीखा था, और मैं अनाप-शनाप रुपया ख़र्च करता था। यह सुख मेरा बहुत दिन नहीं रहा। मेरी कमबख़्ती के दिन लंबे-लंबे डगों से चले आते थे। सन् १९१८ में इंफ़्ल्यूएंज़ा बड़े वेग से फैला, और उसी में मेरे माता-पिता दोनो शांत हो गए। मेरी आयु उस समय केवल बीस वर्ष की थी। मेरे ऊपर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा। मैं संसार में बिलकुल अकेला था। मैंने दूकान का काम सँभालना चाहा, लेकिन मेरे सँभाले वह न सँभल सका। मेरे पास रुपयों की कमी नहीं थी। दोनो हाथों से ख़र्च करता था।

"यह मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मेरी दूकान अँगरेज़ी खाद्य पदार्थों की यानी 'प्राविज़िंस' की थी, इसलिये मेरे यहाँ अँगरेज़-छोकरियों का आना-जाना बहुतायत से होता था। मैं भी नवयुवक था, और प्रेम-पाठशाला में भरती होकर प्रेम-पाठ पढ़ना चाहता था। मेरा संबंध एक ऐसी लड़की से हो गया, जो देखने में हद दरजे की ख़ूबसूरत थी, मगर ग़रीब थी। उसके पिता मर चुके थे, और मा भी प्रायः बीमार रहा करती थी। उसका नाम एलिनर रोज़ था, और मैं उसे रोज़ कहकर पुकारता था। रोज़ की नानी आरमीनिया की रहनेवाली थी। उसने अपना विवाह एक अँगरेज़ी फ़ौज के कप्तान से किया था। रोज़ की माता भी अनुपम सुंदरी थी। उसकी ख्याति चारो ओर थी। रोज़ की माता ने एक अँगरेज़ से विवाह किया था, जो जबलपुर में रेल में नौकर था। रोज़ की मा ने अपना विवाह अपने माता-पिता की अनिच्छा से, एक नीच वंश के युवक से, किया था, शायद इसीलिये वह सुखी नहीं हो सकी। रोज़ का पिता शराबी आदमी था, जो अपना वेतन शराब में उड़ा दिया करता था। रोज़ की माता मेरी दूकान पर आया करती थी, और मेरे पिता से अपने पति की सदैव बुराई किया करती

थी। एक दिन अचानक रोज़ का पिता हृदय की धड़कन बंद हो जाने से मर गया। मुझे अच्छी तरह याद है कि रोज़ की माता दुखी नहीं हुई, बल्कि एक तरह से प्रसन्न हुई थी, क्योंकि उसे उससे छुट्टी मिल गई थी। रोज़ की माता पर क़र्ज़ काफ़ी हो गया था, और जब उसे प्राविडेंट फ़ंड मिला, तो वह सब-का-सब क़र्ज़ चुकाने में ख़र्च हो गया, फिर भी एक अच्छी-ख़ासी रक़म बक़ाया रह गई। मेरे पिता, जो एक सहृदय व्यक्ति थे, रोज़ की माता की सहायता करने लगे, और जैसे-तैसे उसके दिन बीतने लगे।

"इन्हीं चिंताओं ने उसे बिलकुल अधमरा कर दिया था, और वह अक्सर बीमार रहती थी। उसके माता-पिता दोनो मर चुके थे। वह ख़ुद कोई काम करने में असमर्थ थी, क्योंकि उसका स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरता जाता था। वह बड़ी असहाय दशा में अपना जीवन व्यतीत कर रही थी।

"मेरे माता-पिता के मरने के बाद रोज़ ने मेरी दूकान में बहुत आना-जाना शुरू किया। मैंने वह सहायता देना बंद नहीं किया था, जो मेरे पिता उसे देते थे। रोज़ मुझे धीरे-धीरे अपने प्रलोभनों में फँसाने का प्रयत्न करने लगी। मैं पहले ही कह चुका हूँ कि वह अनुपम सुंदरी थी। मेरा उसकी ओर आकर्षित होना कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। दरअसल इसमें रोज़ की माता का भी हाथ था। आख़िर एक दिन हम लोगों का विवाह हो गया, और रोज़ मेरी पत्नी होकर लाखों रुपए की मालकिन हो गई। उसने अपने पिता का क़र्ज़ चुका दिया, और उसकी मा भी मेरे यहाँ आकर रहने लगी। मैं उसके प्रेम-जाल में इतना फँसा हुआ था कि किसी ओर ध्यान नहीं देता था। दूकान का काम भी ठीक से नहीं देखता था।

"मेरे विवाह के तीन साल बाद मेरी असली कमबख़्ती शुरू हुई, जब रोज़ की मा मर चुकी थी। इधर मैं कई दिनों से देख रहा

था कि रोज़ हमेशा उदास रहती, और कुछ सोचा करती। मैंने इस उदासी का कारण जानने का बहुत यत्न किया, मगर सफल कभी नहीं हुआ। इसी दरम्यान मेरे घर में अक्सर नूरइलाही नाम का एक मुसलमान आया करता था। नूरइलाही जबलपुर के कोतवाल मुंशी अलीसज्जाद का लड़का था, और कॉलेज में पढ़ता था। नूरइलाही बड़ा ख़ूबसूरत जवान था। दरअसल रोज़ उसके प्रेम में फँस गई थी, यह बात मुझे बाद में मालूम हुई, लेकिन बिलकुल सत्य है।

'रोज़ बड़ी महत्त्वाकांक्षिणी और भावुक थी। मेरे-जैसे बदसूरत आदमी से उसका मन कैसे भर सकता था, इसीलिये वह दूसरे ख़ूब-सूरत व्यक्तियों के प्रेम में फँस गई थी। उसने मुझसे सिर्फ़ रुपए के लिये विवाह किया था, जो ईश्वर की कृपा से उसे काफ़ी मिल गया था। रोज़ का प्रेमी केवल नूरइलाही ही न था, बल्कि दो-तीन और भी थे, जो मेरे बँगले में अक्सर आते रहते थे, जिन्हें रोज़ अपनी स्वर्गीया माता का बंधु कहकर परिचय देती थी। पहले तो मेरे मन में कुछ शंका नहीं हुई, लेकिन उसके व्यवहार वग़ैरह पर ध्यान देने से मेरा शक निरंतर बढ़ता ही गया।

''एक दिन दोपहर को मैं दूकान पर बैठा था कि पोस्टमैन ने एक टाइप किया हुआ लिफ़ाफ़ा मेरे हाथ में दिया। मैंने उसे खोलकर पढ़ा। उसमें लिखा था—'अगर अपनी स्त्री का असली चरित्र जानना चाहते हो, तो शाम को आठ बजे अल्फ़्रेड-पार्क के दाहनी ओर के सिरे पर की झाड़ी में जाकर देख लो।' दस्तख़त वग़ैरह किसी के नहीं थे।

''आप समझ सकते हैं कि ऐसी चिट्ठी पाकर कौन अपने होश-हवास न खो देगा। मेरी विचार-शक्ति खो गई। मैं चुपचाप आठ बजे रात की प्रतीक्षा करने लगा। मैंने यह निश्चित कर लिया था कि

अगर रोज़ को मैं अपनी इज़्ज़त में बट्टा लगाते हुए पाऊँगा, तो उसे तलाक़ दे दूँगा।

"आख़िर इंतज़ार करते-करते शाम के सात बजे। मैं मोटर पर बैठकर अल्फ़्रेड-पार्क चल दिया। उस झाड़ी से थोड़ी दूर आड़ में मोटर खड़ी कर दबे पैरों उस झाड़ी की ओर बढ़ा। उस समय मेरा हृदय धड़क रहा था, और पैर आगे उठते ही न थे। बड़ी मुश्किल से किसी तरह उस झाड़ी तक पहुँचा। अभी मैं घुसा ही था कि पिस्तौल की आवाज़ हुई, और किसी के चीख़ने की आवाज़ आई। दूसरे ही क्षण कोई चीज़ मेरे पैरों के पास आकर गिर पड़ी। मैंने घबराकर उसे उठा लिया। वह एक पिस्तौल थी।

"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि यह काम पलक मारते हो गया। मैं कुछ न सोच सका, और न स्थिर कर सका। दूसरे ही क्षण उस झाड़ी के अंदर से रोज़ निकली, और मुझे पहचानकर कहा—'डेविड, यह तुम्हारा काम है। तुमने नूरइलाही को मार डाला। मैं अभी शोर मचाकर तुम्हें पकड़ा दूँगी। मैं आज साफ़-साफ़ तुमसे कहती हूँ कि नूरइलाही मेरा प्रेमी था, और मैं उसे दिलोजान से प्यार करती थी। तुमने उसे मारा है, इसके लिये मैं तुम्हें क्षमा नहीं कर सकती। मैं उसके ख़ून का बदला लूँगी, और तुम्हारे ख़िलाफ़ गवाही दूँगी। जब मैं तुम्हें फाँसी के तख़्ते पर खड़ा देखूँगी, तब मुझे चैन आवेगा।'

"मैं इतना घबराया हुआ था कि उसकी कोई बात मेरी समझ में नहीं आई। सिर्फ़ यह समझा कि वह मेरे ख़िलाफ़ शहादत देकर मुझे फाँसी पर लटकावेगी। मैंने घबराए स्वर में कहा—'रोज़, मैंने नूरइलाही को नहीं मारा। उसे मारनेवाला कोई दूसरा था।'

"रोज़ ने गंभीर स्वर में पूछा—'फिर तुम्हारे हाथ यह पिस्तौल कहाँ से आई?'

"मुझे अब होश आया, सचमुच मेरे हाथ में पिस्तौल थी। मैं चुप हो गया।

"रोज़ ने फिर कहा—'ख़ैर, मैं तुम्हें इस शर्त पर छोड़ सकती हूँ कि तुम मुझे फिर कभी न दिखाई दो। जिस दिन मैंने तुम्हें देखा, पुलिस में पकड़ा दूँगी, और तुम्हारे ख़िलाफ़ शहादत भी दूँगी। जानते हो, नूरइलाही का बाप शहर-कोतवाल है। एक मर्तबा मिल जाने से वह तुम्हें कभी नहीं छोड़ेगा, और मैं भी कभी न छोड़ूँगी। अब अगर तुम अपनी जान बचाना चाहते हो, तो अपने को ऐसी जगह छिपा लो, जहाँ से तुम फिर इस मुल्क में न आ सको, क्योंकि तुम हिंदुस्थान में रहकर अपने को बचा नहीं सकते। मैं तुम्हारी इससे ज़्यादा सहायता नहीं कर सकती।' यह कहकर रोज़ वहाँ से सवेग चली गई।

"मेरी हिम्मत न हुई कि मैं जाकर भीतर देखूँ कि क्या हुआ। मैं उलटे पैरों भागा। लेकिन रोज़ मुझसे पहले मेरी मोटर के पास पहुँच गई थी, और मैं ज्यों ही उसके पास पहुँचा, मोटर चल दी, और उसने मुझसे कहा—'मैं फिर तुमको मौक़ा देती हूँ, भागकर अपनी जान बचाओ। यह मोटर तुम्हारी सहायता नहीं कर सकती, इसलिये मैं इसे लिए जाती हूँ। ख़बरदार! जो तुम घर आए। घर आते ही तुम्हें पुलिस के हवाले कर चश्मदीद शहादत दूँगी। फिर तुम्हारा बचना मुश्किल है। तुम्हारे लिये फाँसी का फंदा तैयार है।'

"यह चेतावनी देती हुई वह मोटर लेकर चली गई। मैंने दौड़-कर अपने को अंधकार में छिपा लिया।

"बस, इसके बाद से मैं मारा-मारा फिरता हूँ, और अपनी जान बचाता फिरता हूँ। मैंने नूरइलाही को मारा नहीं, लेकिन उसका इल्ज़ाम मेरे ऊपर है! ख़ैर, मैं किसी तरह बड़ी मुसीबतों से बंबई

पहुँचा, और किसी तरह जहाज़ में नौकरी की। मेरा इरादा हिंदुस्थान छोड़कर चले जाने का था, लेकिन पास में रुपया नहीं था, और रोज़ से कोई सहायता मिलने की उम्मीद नहीं थी, क्योंकि उसने साफ़-साफ़ कह दिया था कि जहाँ तुम दिखाई दिए, मैं पुलिस में पकड़ा दूँगी, और तुम्हारे ख़िलाफ़ शहादत दूँगी। इसी भय से मैंने कुली का काम किया। लेकिन मेरी मुसीबतों की वह शुरुआत थी। भाग्य में अभी भीख माँगना बदा था। वह जहाज़, जिस पर मैं नौकर था, यहाँ आकर टकरा गया। बाक़ी हाल अर्ज़ कर चुका हूँ। आप यक़ीन रखिए, मैंने एक लफ़्ज़ भी झूठ नहीं कहा। यहाँ किसी तरह भीख माँगकर गुज़र करता था। शायद अब दिन अच्छे आनेवाले हैं, जिससे रानी साहिबा ने मेरे हाल पर रहम खाकर मुझे अपनी शरण में लिया है। मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि कभी आप लोगों से दग़ा नहीं करूँगा, और नमकहलाली से आपका काम करूँगा।"

यह कहकर जूलियन लायोनेल उर्फ़ डेविड मायादास रोने लगा।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने उसे सांत्वना देते हुए कहा—"जूलियन तुम किसी बात की चिंता मत करो, मैं तुम्हारी रक्षा करूँगा।"

डेविड और ज़ोर से रोने लगा। ये आँसू उसकी वेदना के थे, या कृतज्ञता के, ईश्वर जाने।

(७)

राजा भूपेंद्रकिशोर ने जूलियन लायोनेल उर्फ़ डेविड मायादास से कहा—"डेविड, अब तू रो मत। तेरा मैं बाल बाँका भी नहीं होने दूँगा। मैं इसका पता लगाऊँगा कि नूरइलाही को किसने मारा। मेरा तो ख़याल है कि नूरइलाही को मारनेवाले का पता अब तक लग गया होगा, और वह सज़ा भी पा गया होगा।"

डेविड ने अपने आँसू पोंछते हुए कहा—"शायद ही ऐसा हो, क्योंकि रोज़ उस जगह मौजूद थी, और वह पिशाचिनी कभी किसी के ख़िलाफ़ शहादत नहीं देगी। वह तो मेरे ख़िलाफ़ ही शहादत देगी। उसका वह भयानक चेहरा अभी तक मेरे सामने है, उस घृणा-भरी दृष्टि को मैं आज तक नहीं भूल सका हूँ। मुझे विश्वास है कि उसने अपने बयान में मेरा नाम ज़रूर लिखाया होगा, और पुलिस मुझे ढूँढ़ती-फिरती होगी।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने पूछा—"क्या तुमने नूरइलाही को अपनी आँखों से मरा हुआ देखा था, या केवल रोज़ के कहने से ही जानते हो?"

डेविड ने जवाब में कहा—"मैं आपसे पहले ही अर्ज़ कर चुका हूँ कि मेरी हिम्मत झाड़ी के भीतर जाने की नहीं हुई, और न मैंने नूरइलाही को मरा हुआ देखा। हाँ, पिस्तौल की आवाज़ सुनी, और उसके बाद ही एक चीख़ सुनी, जैसे किसी के गोली लगी हो। दूसरे ही क्षण रोज़ मेरे सामने झाड़ी से निकलकर आ गई, और बुरा-भला कहने लगी।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने दुबारा पूछा—"तो तुमने नूरइलाही या किसी व्यक्ति को मरा हुआ नहीं देखा?"

डेविड ने उनकी ओर देखते हुए सरलता-पूर्वक कहा—"जी नहीं। न मैंने किसी को मारते देखा, और न किसी को मरा हुआ देखा। मैंने सिर्फ़ रोज़ के कथन पर विश्वास किया, जो घटना-चक्र से आज तक सत्य ही मालूम हुआ है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने पूछा—"क्या तुम कह सकते हो कि नूर-इलाही को मारनेवाला कौन हो सकता है? क्या रोज़ ख़ुद यह काम नहीं कर सकती?"

डेविड ने जवाब दिया—"जहाँ तक क़यास में आता है, नूर-इलाही को मारनेवाला रोज़ का कोई दूसरा प्रेमी है, जिसने ईर्ष्या और द्वेष से यह नीच काम किया है। रोज़ भला नूरइलाही को क्यों मारेगी? उसमें उसका क्या स्वार्थ है। उसने मुझसे ख़ुद स्वीकार किया कि वह नूरइलाही से प्रेम करती थी। और, दरअसल यह बात ठीक है। इसके अलावा रोज़ कोमल स्त्री-जाति है, वह हत्या कभी नहीं कर सकती।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"ख़ैर, यह बात मैं नहीं मानता कि स्त्री हत्या नहीं कर सकती। स्त्री वक्त पड़ने पर कठिन-से-कठिन काम कर सकती है, उसके मन में केवल इच्छा होनी चाहिए। तुम्हें विश्वास है कि रोज़ यह काम नहीं कर सकती?"

डेविड ने जवाब दिया—"जी हाँ, मेरा तो यही विश्वास है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कुछ सोचते हुए कहा—"अच्छा, वह पत्र, जिसमें तुमको अल्फ्रेड-पार्क में बुलाया गया था, टाइप किया हुआ था? उसमें किसी प्रकार का कुछ चिह्न था?"

डेविड ने अपनी जेब से वह पत्र निकालकर दिया, जो पानी लगने से ख़राब हो गया था, और कहा—"लीजिए, वह पत्र अभी तक मेरी जेब में है। मैंने इसे अभी तक बड़े एहतियात से रक्खा है, हालाँकि दो दिन तक जब मैं समुद्र में रहा, तो यह भीग गया था,

परंतु बाद में सुखाकर अभी तक रक्खे हूँ, क्योंकि यह मेरे अतीत जीवन की अंतिम स्मृति है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर उस पत्र को ग़ौर से देखने लगे। वह फ़ुलस-केप साइज़ के आधे काग़ज़ के बराबर था, जो किसी छात्र की कॉपी-बुक से फाड़ा हुआ मालूम होता था। इसके अतिरिक्त और कोई चिह्न नहीं प्रकट होता था। उस पत्र में केवल यही लिखा था—"अगर तुम अपनी स्त्री का असली चरित्र जानना चाहते हो, तो शाम को आठ बजे अलफ्रेड-पार्क के दाहने सिरे की झाड़ी में जाकर देख लो।" इसके अतिरिक्त कुछ नहीं था, न कोई नाम था, और न कोई संकेत। लिफ़ाफ़े पर भी पता टाइप किया हुआ था। राजा भूपेंद्रकिशोर डाकख़ाने की मोहर देखने का प्रयत्न करने लगे। मोहर समय के प्रभाव से बहुत अस्पष्ट हो गई थी। उन्होंने अपनी संदूक़ से 'आईग्लास' निकालकर उसकी सहायता से देखना शुरू किया। अब उन्हें स्पष्ट दिखाई पड़ने लगा—जबलपुर, जी० पी० ओ०, १९-९... । साल के आँकड़े बिलकुल मिट गए थे।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने डेविड से पूछा—"क्या तुम्हें याद है कि यह पत्र किस दिन मिला था?"

डेविड ने तुरंत उत्तर दिया—"क्यों नहीं, क्या मैं कभी उस दिन को भूल सकता हूँ। मेरी तकलीफ़ों की शुरुआत उसी दिन से हुई है। वह दिन बुध था, और सितंबर-महीने की १९ वीं तारीख़ थी।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने संतुष्ट होकर वह पत्र उसे वापस दिया। डेविड ने पत्र ले लिया, फिर थोड़ी देर बाद कहा—"अगर कोई ज़रूरत हो, तो आप अपने पास रख लें।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"नहीं, तुम्हीं इसे रक्खे रहो, जब

कभी ज़रूरत पड़ेगी, मैं ले लूँगा। तुम्हारा क़िस्सा सुनकर अब सबसे पहले यह ज़रूरी हो गया है कि मैं यह पता लगाऊँ कि नूरइलाही दरअसल मारा गया है, या नहीं। अगर मारा गया है, तो उसके हत्याकारी का पता लगा है या नहीं, और तुम्हारी स्त्री रोज़ कहाँ है, और क्या काम करती है। हाँ, क्या तुम्हें रोज़ का कोई समाचार बाद में नहीं मिला ?"

डेविड ने जवाब दिया—"जी नहीं, रोज़ का कोई समाचार मुझे नहीं मिला। समाचार मुझे मिलता ही कैसे। मैं उसे ख़बर देने का साहस नहीं कर सकता था, क्योंकि वह मुझसे छुटकारा पाने के लिये पूरी दुश्मनी करने पर आमादा थी।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कुछ सोचते हुए कहा—"वह तुम्हारा धन लेना चाहती थी, और साथ ही तुमसे छुटकारा पाना। छुटकारा पाने की दो ही सूरतें थीं—एक तो तुम्हें मार डालना, और दूसरे तुमसे तलाक़ ले लेना। तलाक़ लेने पर उसे तुम्हारा धन नहीं मिलता, लेकिन तुम्हें मारकर वह तुम्हारे धन की स्वामिनी हो सकती थी, परंतु वह काम—यानी तुम्हें मारना—उसके लिये ख़तरे से ख़ाली नहीं था। वह पकड़ी भी जा सकती थी, और शायद ख़ुद फाँसी पर चढ़ा दी जाती, या देश-निकाला भोगती। इसलिये उसने इस अद्भुत कौशल से तुमसे छुटकारा पा लिया। मैं जितना सोचता हूँ, उतना ही मुझे विश्वास होता है कि नूरइलाही मारा नहीं गया। पिस्तौल छोड़नेवाला ख़ुद नूरइलाही था, और यह सब पहले से तय हो गया था। रोज़ ने तुम्हें पुलिस से पकड़ा देने की धमकी से ही तुमसे अनायास छुटकारा पा लिया। अगर तुम ज़रा हिम्मत करके, आगे बढ़कर देखते, तो तुम्हें वहाँ कोई न मिलता, और शायद नूरइलाही मिलता भी, तो ज़िंदा मिलता। मैं तुम्हारी शकल देखकर जान गया हूँ कि तुम भीरु स्वभाव

के हो, और तुम्हारी भीरुता तुम्हारी स्त्री रोज़ से छिपी नहीं थी। पहले उसने सोचा कि अगर तुम्हें डरा देने से काम चल जाय, तो फिर नाहक़ हत्या क्यों की जाय, क्योंकि कहावत है 'जो गुड़ दीन्हे ही मरै, बिस क्यों देय बुलाय।'"

डेविड के सामने एक नया विचार आशा-पूर्ण उदय हुआ। उसके निराश जीवन में एक क्षीण आशा की ज्योति चमक उठी। उसके नेत्र चमकने लगे।

डेविड ने उत्तर दिया—"जी हाँ, यह भी मुमकिन है। मैं वास्तव में बहुत ही भीरु स्वभाव का हूँ। मैं उस वक्त इतना घबरा गया था कि मैंने कुछ देखना-सुनना मुनासिब नहीं समझा, क्योंकि मुझे यह डर बराबर लगा हुआ था कि अगर कोई पिस्तौल की आवाज़ सुनकर आ जायगा, तो मैं ज़रूर पकड़ा जाऊँगा, और रोज़ मेरे ख़िलाफ़ शहादत देगी कि मैंने अपने पति को पिस्तौल चलाते देखा। बस, मेरे लिये फाँसी निश्चित है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने पूछा—"क्या तुम्हें नहीं मालूम कि अगर कोई आदमी अपनी स्त्री को दूसरे आदमी के साथ दुष्कर्म करते देख ले, और वह उसे उसी वक्त मार डाले, तो वह ख़ूनी नहीं है, वह साफ़ बरी हो जायगा।"

डेविड ने बालक की सरलता से कहा—"जी नहीं, यह मुझे नहीं मालूम। मैं आपसे पहले ही अर्ज़ कर चुका हूँ कि मैं बिलकुल अन-पढ़ और बुद्धू था। मैं बचपन में तो मा-बाप के प्यार में डूबा रहता था, और जब कुछ होश सँभाला, तो वे मर चुके थे। इसके बाद ही दूकान का सारा बोझ मेरे सिर पर आ पड़ा, और मैं केवल अपनी धुन में मस्त था। मैं किसी से विशेष मिलता-जुलता भी न था, और न कोई किताब वग़ैरह ही पढ़ता था। मेरा-जैसा बेवक़ूफ़ आदमी दुनिया में मुश्किल से मिलेगा।"

राजा भूपेंद्रकिशोर को हँसी आ गई, और डेविड ने भी मुस्किरा दिया।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"तभी तो तुम्हारी इसी बेवक़ूफ़ी से तुम्हारी स्त्री ने पूरा फ़ायदा उठाया है, और इसी का नतीजा है कि तुम आजकल एक-एक पैसे को मुहताज अपनी जान बचाने के डर से घूम रहे हो। और, तुम्हारी चालाक स्त्री मज़े से ऐश कर रही है।"

डेविड ने कोई जवाब नहीं दिया। उसे राजा भूपेंद्रकिशोर के स्वर में सत्यता प्रतीत होने लगी थी।

राजा भूपेंद्रकिशोर कहने लगे—"मैं तो इसका पता बहुत जल्द लगा लूँगा, क्योंकि मेरा संबंध गवर्नमेंट से बहुत घनिष्ठ है, और मेरे कई एक एहसान उस पर हैं। बंगाल के गवर्नर द्वारा मैं इसका पता लगा लूँगा। मैं तुम्हें विश्वास दिला सकता हूँ कि तुम बहुत जल्द अपने को स्वतंत्र पाओगे, और शायद तुम्हें तुम्हारे बाप की संपत्ति भी मिल जाय।"

राजा भूपेंद्रकिशोर के आशा-पूर्ण स्वर ने डेविड के मन में एक दूसरी इच्छा उत्पन्न कर दी। आशा वह मधुर वस्तु है, जिसे मनुष्य कभी छोड़ना नहीं चाहता। और, जब अकस्मात् घटना-चक्र से छूट जाती है, तो ज़रा-सा सहारा मिलने पर वह अपना अधिकार मनुष्य पर जमा लेती है, तभी तो कहते हैं कि जीवन और आशा में चोली-दामन का साथ है। निराशा जीवन की शत्रु है, और निराशा-पूर्ण जीवन अहर्निश वृश्चिक-दंशन से कम नहीं।

डेविड का मन छलाँगें भरने लगा। वह सोचने लगा, क्या कभी वह फिर संसार का स्वतंत्र नागरिक हो सकेगा, और इस भयावह जीवन की निवृत्ति होगी। क्या वह फिर कभी अपने

पिता की संपत्ति का अधिकारी हो सकेगा। डेविड को वह आशा मरीचिका-सी प्रतीत होती।

राजा भूपेंद्रकिशोर उसके मुख के उतार-चढ़ाव बड़ी सतर्कता से लक्ष्य कर रहे थे, जो उनके मन में उसके प्रति विश्वास पैदा कर रहा था। डेविड की प्रसन्नता, यह उसकी कहानी की सत्यता का प्रमाण था। उन्हें विश्वास हो गया कि दरअसल डेविड की कहानी सत्य है। वह घटना-चक्र में पड़कर एक तीक्ष्ण और अद्भुत बुद्धि-वाली स्त्री की चालों का शिकार हुआ है। उनके मन की करुणा विशेष रूप से जाग पड़ी। मनुष्यता का रूप करुणा है।

डेविड ने कंपित स्वर में पूछा—"क्या वास्तव में मैं आज़ाद होकर इस सुंदर दुनिया में विचरण कर सकूँगा? क्या मुझे फिर अपने पिता की संपत्ति प्राप्त होगी? या केवल आप मुझे ढाढ़स देने के लिये ऐसा कह रहे हैं।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने मुस्किराकर कहा—"डेविड, कम-से-कम मुझे तो यही विश्वास है कि मैं तुम्हें फिर तुम्हारे पिता की संपत्ति दिला सकूँगा, और तुम आज़ाद होकर उसे भोग सकोगे, लेकिन आगे ईश्वर मालिक है। तुम्हारी कहानी से तो मुझे यह यक़ीन है। आज ही मैं अपने अभिन्न-बंधु लॉर्ड क्रेटन को लिखता हूँ कि वह इसकी 'प्राइवेट इनक्वायरी' करके लिखें कि आया १९ सितंबर सन्......। हाँ, तुमने सन् तो मुझे बतलाया ही नहीं।"

डेविड ने तुरंत कहा—"सन् १९२२।"

राजा भूपेंद्रकिशोर कहने लगे—"१९ सितंबर सन् १९२२ को जबलपुर के अल्फ्रेड-पार्क में क़रीब ८ बजे शाम को नूरइलाही की, जो उस वक्त शहर-कोतवाल मुंशी अलीसज्जाद का लड़का था, हत्या हुई या नहीं, और अगर हत्या हुई, तो क्या मुलज़िम अभी तक पकड़ा नहीं गया। मुलज़िम की हुलिया शाया हुई या

नहीं, और दरअसल किसी पर पुलिस ने शक किया है या नहीं। दूसरे, मिसेज़ डेविड मायाद्राम, जिसका नाम एलिनर रोज़ है, कहाँ है और मिस्टर डेविड मायाद्राम तथा उसकी दूकान का क्या हश्र हुआ। क्यों, ठीक है?"

डेविड ने पुलकित होकर कहा—"जी हाँ, बहुत ठीक। आप ज़रूर लिखिए। मेरा मन कहता है कि मेरा ज़रूर उद्धार होगा। अगर इस मुसीबत से छूट सका, तो राजा साहब, मैं आपका जन्म-भर कृतज्ञ रहूँगा।" कहते-कहते डेविड की आँखों से मनुष्यता का जल बहने लगा, और दूसरे क्षण वह उनके पैरों से लिपट गया। मानवता संतुष्ट होकर मुस्किराने लगी।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने डेविड को सप्रेम उठाते हुए कहा—"डेविड, अधीर मत हो। मंगलमय भगवान् तुम्हारा कल्याण करेंगे।"

डेविड, जिसने संसार के भयानक-से-भयानक कष्ट उठाए थे, और जो कल इसी वक्त रोमन-साम्राज्य के ध्वंसावशेष में पड़ा हुआ शाम के भोजन के लिये चिंतित था, वही अभागा डेविड, इस समय आकाश-पाताल के कुलाबे मिला रहा था। कुछ घंटे पहले जो अपने जीवन से निराश होकर बार-बार आत्मघात करने को सोचता था, वही इस समय आशामय सुख-स्वप्न देखने में निमग्न था। इसे क्या कहा जाय, घटना-चक्र या भाग्य?

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"मैं यहाँ से पेरिस होता हुआ इँगलैंड जाऊँगा, और वहाँ जाकर दो-तीन साल ठहरूँगा। तुम भी मेरे साथ चल सकते हो। तुम्हारे भरण-पोषण का भार मैं लेता हूँ। फ़िलहाल जब तक तुम्हारे संबंध में सरकार की रिपोर्ट नहीं आती, तब तक तुम मेरे साथ रहो। तुम मेरे प्राइवेट सेक्रेटरी का काम कर सकते हो, इसके एवज़ में मैं तुम्हें दो सौ रुपया माहवार वेतन दूँगा।"

कृतज्ञता-पाश में आबद्ध डेविड ने हाथ जोड़कर कहा—"नहीं, मैं वेतन किसी तरह स्वीकार नहीं कर सकता। मुझे मजबूरन् आपके यहाँ रोटी तो खाना पड़ेगा, क्योंकि इसके बग़ैर काम नहीं चल सकता, बाक़ी मैं कोई दूसरा एवज़ाना लेने को तैयार नहीं हूँ। आपने आज पथ के भिखारी को उठाकर सिंहासन पर बैठा दिया है। अगर मैं अपनी खाल की जूतियाँ बनाकर आपको पहनाऊँ, तो भी आपके एहसान से छूट नहीं सकता।" यह कहकर वह फिर उनके पैरों पर गिर पड़ा।

इसी समय मायावती उस कमरे में आई, और विस्मय से उनकी ओर देखने लगी।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने मुस्किराकर डेविड को उठाते हुए कहा—"मैंने डेविड को अपना प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त किया है।"

मायावती ने आश्चर्य से पूछा—"डेविड कौन है बाबा, मैंने आज के पहले यह नाम कभी नहीं सुना।"

डेविड ने हाथ जोड़कर कहा—"रानी साहबा, मेरा नाम डेविड है, यही मेरा असली नाम है। जूलियन लायोनेल तो मेरा उपनाम है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने मुस्किराते हुए कहा—"मैंने डेविड की सारी कहानी सुनी, जो तुम्हें भी अपनी कहानी सुना देगा। यह एक अद्भुत, तीक्ष्ण बुद्धि की स्त्री से ठगाया हुआ अभागा है। मैं इसका रहस्य खोल दूँगा। तुमने एक मनुष्य का उद्धार किया है, इसके लिये तुम्हें बधाई देता हूँ!"

रानी मायावती के हृदय का भार हलका हो गया, उसने आत्म-तुष्टि की एक गहरी साँस ली। वह प्रसन्न होकर अपने पिता की ओर देखने लगी।

कुसुमलता राजेंद्रप्रसाद को बिदा करने गई थी या अपने हृदय की शांति खोने। उसकी आशाएँ और उमंगों के कोमल उद्गार एक ही झोंके में भारतीय महासागर की लहरों में समा गए, और वह अपने साथ केवल मौन वेदना का बखेड़ा लिए हुए लौटी। यह नहीं कि डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उसके इस परिवर्तन को लक्ष्य न किया हो, परंतु उन्होंने कुछ नहीं कहा, और मन-ही-मन उस रहस्य को जानने के लिये आकुल हो उठे।

प्रातःकाल की पूजा करके वह उठे ही थे कि नौकर ने आकर उनसे कहा—"सर साहब आपको याद फ़रमाते हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद के जीवन का यह नियम था कि अपने पिता की भाँति तो नहीं, लेकिन सदैव पूजा-उपासना में अपने समय के चंद घंटे व्यतीत करते थे। बाल्यकाल से अभ्यास करते-करते यह उनके जीवन की प्रकृति बन गई थी।

सर रामप्रसाद इस समय आनंद-पूर्वक अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। उनका स्वास्थ्य बहुत कुछ सुधर गया था, और बेहोशी के दौरे तो एकदम बंद हो गए थे। डॉक्टर आनंदीप्रसाद की सज्जनता से वह संतुष्ट और प्रसन्न थे, और किसी हद तक पुत्र का अभाव भूल गए थे। डॉक्टर आनंदीप्रसाद के स्वभाव और कुसुमलता के सौभाग्य ने उनके मृतप्राय जीवन में नई जान डाल दी थी।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद को देखकर सर रामप्रसाद ने कहा—"तुमने पूजा ख़त्म कर ली, और कुछ जल-पान किया है या नहीं?"

उनके स्वर में आत्मीयता की झलक थी, और पिता का स्नेह था।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने आदर-पूर्वक उत्तर दिया—"जल-पान अभी कर लूँगा। आपने याद फ़रमाया था ?"

सर रामप्रसाद ने उत्तर दिया—"हाँ, मैंने परामर्श लेने के लिये तुम्हें बुलाया है ; क्योंकि पुत्र हो, तो तुम हो, और दामाद हो, तो तुम हो।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने सिर झुकाकर कहा—"मैं ख़िदमत में हाज़िर हूँ, फ़रमाइए।"

सर रामप्रसाद ने सस्नेह कहा—"तुम पहले जल-पान कर आओ, तब मैं बातचीत करूँगा, अभी कुछ जल्दी नहीं है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"मैं जल-पान पीछे कर लूँगा, आप हुक्म फ़रमाइए।"

सर रामप्रसाद ने कहा—"अच्छा, तुम बैठो, मैं तुम्हारे लिये यहीं जल-पान मँगाता हूँ।" यह कहकर, उन्होंने नौकर को बुलाकर जल-पान लाने का आदेश किया। दूसरे क्षण नौकर दो तश्तरियाँ ले आया।

सर रामप्रसाद ने कहा—"अरे, तू मेरे लिये क्यों लाया ? मैंने तो छोटे बाबू के लिये मँगवाया था।"

नौकर ने जवाब दिया—"मैं क्या करूँ, मिसरानी ने भेजा है।"

सर रामप्रसाद ने कहा—"अच्छा, रख दे। नई मिसरानी को नहीं मालूम कि मैं जल-पान नहीं करता।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने अनुरोध करते हुए कहा—"आज खा लीजिए, हर्ज क्या है, कुछ ज़्यादा तो नहीं है।"

सर रामप्रसाद ने उत्तर दिया—"मैं जल-पान करने का आदी नहीं हूँ, अगर इस वक़्त कुछ खा लूँगा, तो फिर खाना कुछ नहीं खाऊँगा।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने फिर अनुरोध किया, और सर रामप्रसाद

को उनका कहना मानना पड़ा। वह संतुष्ट होकर जल-पान करने लगे।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने जल-पान करके कहा—"अब फ़रमाइए।"

सर रामप्रसाद ने मुँह धोते हुए कहा—"कल मुझसे रामारमख ने कहा कि बिट्टन को एम्० ए० क्यों न पढ़ाया जाय। मन्नी एम्० ए० पढ़ने के लिये राज़ी हो गई है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया—"जी हाँ, मैं जानता हूँ।"

सर रामप्रसाद कहने लगे—"मन्नी ने एम्० ए० पढ़ने का इरादा किया है, और अगर बिट्टन को भी पढ़ाया जाय, तो कुछ बुराई है?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया—"बिलकुल नहीं, बल्कि ज़रूरी है। अधकुचली विद्या अच्छी नहीं होती। मुझे तो कोई आपत्ति नहीं है। और, आपको इस विषय में मुझसे सलाह लेने की क्या ज़रूरत है? आप हम दोनो के पिता हैं, आपकी आज्ञा, चाहे वह हमारे मन-अनुकूल हो या प्रतिकूल, हम लोग सहर्ष पालन करेंगे।"

सर रामप्रसाद ने संतुष्ट होकर कहा—"मुझे तुमसे ऐसी ही आशा है। मुझे मालूम था कि तुम इस विषय में कोई आपत्ति नहीं करोगे, परंतु फिर भी मैंने तुमसे पूछ लेना उचित समझा।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सर रामप्रसाद ने कहा—"अच्छा, मैं बिट्टन को बुलाकर इस विषय में पूछता हूँ।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद उठकर चले गए।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद पुरानी सभ्यता के पक्षपाती थे। हालाँकि वह नई रोशनी के थे, परंतु अपना स्वभाव न बदल सके थे।

उनका नवयौवन एक गाँव में—पुरानी सभ्यता के गढ़ में—व्यतीत हुआ था, इसलिये उसकी छाप इतनी गहरी लगी हुई थी कि उसे मिटाना मुश्किल था। वह अपने किसी बड़े-बूढ़े के सामने कुसुमलता से बात करने में संकोच करते थे, और ख़ासकर सर रामप्रसाद के सामने उनकी ज़बान ही न खुलती थी। मनुष्य पुरानी आदतों का ग़ुलाम होता है। उनके स्वभाव की यह बात सर रामप्रसाद को बहुत पसंद थी, क्योंकि वह भी पुराने स्वभाव के थे। ससुर-दामाद का मन इन्हीं कारण से बहुत मिल गया था।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद के आने के बाद सर रामप्रसाद ने कुसुमलता को बुला भेजा। वह अपने मन का दुःख बनावटी प्रफुल्लता के आवरण से ढककर आई, और उनके पास खड़ी हो गई।

सर रामप्रसाद ने उसकी ओर सस्नेह देखकर कहा—"बिट्टन, आजकल तू दिन-पर-दिन दुबली होती जाती है, इसका कोई कारण मेरी समझ में नहीं आता।"

कुसुमलता ने ज़बरदस्ती अपने मुँह पर हँसी लाते हुए कहा—"बाबूजी, मैं दुबली तो नहीं हो रही। आपको अत्यधिक स्नेह है, इससे मैं आपको दुबली मालूम होती हूँ।"

सर रामप्रसाद ने उसकी पीठ पर स्नेह के साथ हाथ फेरते हुए कहा—"नहीं, मैं स्नेह से नहीं कहता, बल्कि यह बिलकुल सच है। तू दिन-पर-दिन दुबली होती जाती है। तू मुझे धोखा नहीं दे सकती।"

कुसुमलता ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सर रामप्रसाद फिर कहने लगे—"बिट्टन, सच कहना, क्या तू इस विवाह से सुखी नहीं हुई?"

कुसुमलता के मन में आया कि वह कह दे—नहीं। लेकिन उसकी ज़बान नहीं खुली।

सर रामप्रसाद ने उसे चुप देखकर पूछा—"देखो बिट्टन, मैं तुम्हारा पिता तो हूँ ही, लेकिन मुझे तुम्हारी माता का कर्तव्य भी पालन करना पड़ता है। तू अपने मन का भेद मुझसे न कहेगी, तो फिर किससे कहेगी। क्या सत्य ही तू इस विवाह से सुखी नहीं हुई?"

सर रामप्रसाद के स्वर में चिंता का आभास था।

कुसुमलता ने अपना सिर नत किए हुए कहा—"मैं हर तरह से प्रसन्न हूँ। आपकी आज्ञा पालन करने में मुझे प्रसन्नता है। आप मेरे लिये किसी प्रकार की चिंता न करें। मैं आपको विश्वास दिलाती हूँ कि मुझे कोई कष्ट नहीं है।"

सर रामप्रसाद ने फिर पूछा—"अच्छा, तो फिर तू इतनी दुबली क्यों हो गई है? रात-दिन ग़मगीन बनी रहती है। तू अपने को प्रसन्न दिखलाने का यत्न तो बहुत करती है, और संसार को चाहे तू ठग ले, लेकिन अपने बूढ़े बाप को ठगना ज़रा मुश्किल है। तू किसी कारण से दुखी है, और मैं वह कारण जानना चाहता हूँ।"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"बाबूजी, मैं कैसे विश्वास दिलाऊँ कि मुझे कोई दुःख नहीं है? मैं ख़ुद नहीं जानती कि मुझे कौन दुःख है।"

सर रामप्रसाद ने कुछ सोचते हुए कहा—"ख़ैर, इस संबंध में मैं फिर कभी बात करूँगा, तुम्हें छोटे बाबू के साथ कहीं घूमने के लिये भेजना पड़ेगा, जिसमें तुम्हारा स्वास्थ्य सुधर जाय। मैं इस विषय में डॉक्टर दास से बात करूँगा।"

कुसुमलता ने कहा—"बाबूजी, आप तो मेरी बात का विश्वास बिलकुल नहीं करते।"

उसके स्वर में किंचित् तिरस्कार का आभास था।

सर रामप्रसाद ने विषय बदलते हुए कहा—"तुमने पढ़ना क्यों छोड़ दिया?"

कुसुमलता ने मुस्किराकर कहा—"क्या जन्म-भर पढ़ा ही करूँगी ?"

सर रामप्रसाद ने कहा—"नहीं, जन्म-भर पढ़ने की ज़रूरत नहीं। मैंने इसलिये पूछा कि पढ़ने-लिखने से आदमी का मन बहला रहता है, और तुम्हें एम्० ए० पास करना बहुत ज़रूरी है।"

कुसुमलता ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से देखते हुए पूछा—"क्यों ?"

सर रामप्रसाद ने जवाब दिया—"इसलिये कि विद्या अधूरी अच्छी नहीं है। केवल दो वर्षों का मामला रह गया है। एम्० ए० भी पास कर लो, अच्छा है।"

कुसुमलता ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सर रामप्रसाद ने पूछा—"इधर मैंने मन्नी को नहीं देखा, क्या आजकल वह यहाँ नहीं आती ?"

कुसुमलता ने जवाब दिया—"जी हाँ, इधर कई दिनों से नहीं आई। सुनने में आया है कि वह कुछ बीमार है। मैं भी आज-कल-आजकल करते नहीं गई। आज शाम को जाऊँगी।"

सर रामप्रसाद ने कहा—"अभी कल तो राधारमण मुझे मिले थे, लेकिन उन्होंने मुझसे नहीं कहा कि मन्नी की तबियत ख़राब है।"

कुसुमलता ने लापरवाही से कहा—"अब अच्छी हो गई होगी। बंबई से वापस आने के बाद मैं उससे नहीं मिली।"

सर रामप्रसाद ने कहा—"आज शाम को ज़रूर जाना, और मिल आना। मैं छोटे बाबू से कह दूँगा, वह भी चले जायँगे। इस संसार में राधारमण-जैसा बंधु मिलना मुश्किल है।"

कुसुमलता ने उठते हुए कहा—"जी हाँ, आज शाम को जाकर ज़रूर मिल आऊँगी।"

सर रामप्रसाद ने उसे बैठाते हुए कहा—"अभी बैठो। हाँ,

तो तुमने अपने पढ़ने के बारे में जवाब नहीं दिया। तुम एम्० ए० 'ज्वाइन' करोगी या नहीं?"

कुसुमलता आदेश पाकर बैठ गई, लेकिन कोई जवाब नहीं दिया।

सर रामप्रसाद कहने लगे—"मन्नी का इरादा एम्० ए० 'ज्वाइन' करने का है। कल राधारमण मुझसे कह रहे थे, और तुम्हारे बारे में भी कह रहे थे कि बिट्टन को भी एम्० ए० पास कर लेना चाहिए। अभी कुछ देर नहीं हुई। लोग तो सितंबर तक नाम लिखाते हैं, और शायद अभी नियमित रूप से पढ़ाई भी न शुरू हुई होगी।"

कुसुमलता ने कहा—"नाम लिखाने में तो कोई हर्ज नहीं, लेकिन मैं एम्० ए० इलाहाबाद में पढ़ना चाहती हूँ।"

सर रामप्रसाद ने विस्मित होकर पूछा—"इलाहाबाद में रहने से क्या फ़ायदा? जब यहाँ पढ़ने का प्रबंध है, तब दूर जाने से क्या मतलब?"

कुसुमलता ने कोई उत्तर नहीं दिया।

सर रामप्रसाद ने फिर कहा—"इलाहाबाद में रहने का प्रबंध मैं कर सकता हूँ; परंतु लखनऊ में रहकर पढ़ना अच्छा है। तुम मेरी आँखों के सामने रहोगी। बिट्टन, इस बुढ़ापे में मैं तुम्हें अपनी आँखों से ओट नहीं करना चाहता, क्योंकि न-मालूम कब मेरे हृदय की गति बंद हो जाय, और मैं मर जाऊँ।" कहते-कहते सर रामप्रसाद का गला भर आया। कुसुमलता के भी नेत्र आर्द्र हो गए। उसके सब विचार हवा में उड़ गए, और उसने कहा—"अच्छा, मैं यहीं पढ़ूँगी, मैं आपको किसी प्रकार दुःखित नहीं करना चाहती।" यह कहकर वह उठ खड़ी हुई।

सर रामप्रसाद ने कहा—"मुझे यह सुनकर प्रसन्नता हुई। हाँ,

लखनऊ में रहकर पढ़ो, तुम्हारा और मन्नी का साथ बना रहेगा। उसने भारत का प्राचीन इतिहास लिया है, तुम भी यही विषय ले लो।"

कुसुमलता ने नत दृष्टि से कहा—"जो आज्ञा। मैं आज शाम को इस विषय में मन्नी से बातचीत कर लूँगी।" यह कहकर वह कमरे के बाहर चली गई।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद उत्सुकता से उसकी प्रतीक्षा उसके कमरे में बैठे हुए कर रहे थे। कुसुमलता को मलीन मन से वापस आते देखकर पूछा—"क्या हुआ?"

कुसुमलता ने कहा—"हुआ क्या, आप हर जगह आग लगाते हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने आश्चर्य के साथ पूछा—"मैंने क्या किया?"

कुसुमलता ने रुष्ट होकर कहा—"जब मैं आपसे साफ़ कह चुकी थी कि मैं आगे नहीं पढ़ूँगी, तो फिर बाबूजी से क्यों कहा?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने सरलता-पूर्वक कहा—"मैंने उनसे यह कदापि नहीं कहा कि वह आपसे पढ़ने का अनुरोध करें। लेकिन उन्होंने मुझसे पूछा, तो मैंने कहा कि इसमें हर्ज कुछ नहीं है।"

कुसुमलता ने तीव्र स्वर में कहा—"और आदमी किस तरह कहता है। जब आपको मालूम था कि मेरा पढ़ने का मन नहीं है, तब आपने कह दिया होता कि अब पढ़ाकर क्या होगा।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हँसकर कहा—"ख़ूब। आप ही ने क्यों नहीं कह दिया। पढ़ना आपको है या मुझको?"

कुसुमलता ने जवाब दिया—"पढ़ना तो मुझे ज़रूर है, लेकिन जब आपसे उन्होंने पूछा था, तो कह देना ज़रूर था। मैं उनके कथन को टाल नहीं सकती। मुझे हारकर सम्मति देनी पड़ी।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"तो इसमें बुरा क्या हुआ, यह मेरी समझ में नहीं आता। दिन-भर बैठे-बैठे क्या करोगी? दो साल में एक डिग्री मिल जायगी।"

कुसुमलता ने कहा—"हाँ, यह मैं जानती हूँ, लेकिन ......"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"लड़के बनाएँगे कि मिसेज़ प्रसाद पढ़ने आती हैं, क्यों, यही बात है न?"

कुसुमलता ने कोई उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद कहने लगे—"दो-एक दिन शायद कोई कहे, लेकिन फिर कोई नहीं कहेगा। इसके अतिरिक्त मनोरमाजी भी तो पढ़ने जायँगी। यह जुगुल जोड़ी तो क़ायम रहेगी।"

इसी समय मनोरमा ने आकर हँसते हुए उन दोनों की ओर इशारा करते हुए कहा—"बेशक, यह जुगुल जोड़ी क़ायम रहेगी।"

कुसुमलता और डॉक्टर आनंदीप्रसाद उसकी ओर देखने लगे।

(६)

कुसुमलता और डॉक्टर आनंदीप्रसाद मनोरमा की ओर देखकर सोचने लगे, यह मनोरमा है, या उसकी छाया। वे अवाक् होकर उसकी ओर देखने लगे।

मनोरमा ने हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा—"मैंने शायद असमय आकर आप लोगों की बातचीत में विघ्न डाला है, इसलिये क्षमा चाहती हूँ। मैं जाती हूँ।" यह कहकर वह जाने लगी।

कुसुमलता ने दौड़कर उसको पकड़ लिया।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने मुस्किराते हुए कहा—"आप कहाँ जाती हैं। आइए, तशरीफ़ रखिए।"

मनोरमा ने क्षीण स्वर में कहा—"फिर कभी आऊँगी, अभी ज़रूरी काम से जाती हूँ। कुसुम, मेरी बात मानो, मुझे छोड़ दो।"

कुसुमलता ने कहा—"यह कभी हो सकता है। मैं कैसे तुम्हें जाने दूँ। आज बहुत दिनों बाद तो तुम्हारे दर्शन हुए; अभी-अभी आईं, दो बातें भी न कीं, और चल दीं। क्या तुम यह कहने के लिये आई थीं कि मैं जाती हूँ।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हँसते हुए कहा—"अगर मेरे सबब से आपको ठहरने में कोई अड़चन मालूम पड़ती हो, तो मैं जाता हूँ। आप दोनो शौक़ से आलाप करें।" यह कहकर डॉक्टर आनंदीप्रसाद जाने लगे।

मनोरमा ने जवाब दिया—"जी नहीं, आप तशरीफ़ रखिए,

वरना मैं भी चली जाऊँगी। एक तो असमय आकर मैंने ग़लती की, और फिर आपको यहाँ से भगा भी दूँ ? यह नहीं हो सकता।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद बैठ गए, और मनोरमा भी बैठ गई।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"देवीजी, आप आजकल बहुत दुबली और कमज़ोर हो गई हैं, मालूम होता है, आप इधर कई दिनों से बीमार थीं।"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"जी हाँ, कुछ बुख़ार रोज़ आ जाता है ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने पूछा—"क्या इसका इलाज आप नहीं करातीं ?"

मनोरमा ने जवाब दिया—"अभी ऐसी कोई ख़ास तकलीफ़ नहीं है, अगर कुछ ज़्यादा दिनों तक बीमारी रही, तो फिर इलाज कराना ही पड़ेगा।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"यह तो ठीक नहीं मालूम होता। आप एक शिक्षित रमणी हैं, स्वास्थ्य के प्रति इतनी लापरवाही अच्छी नहीं। इसी तरह रोग जड़ पकड़ लेता है, और फिर अच्छा करना मुश्किल हो जाता है। आप इस ओर से बेफ़िक्र न रहें, यही मेरी आपसे प्रार्थना है।"

मनोरमा ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

कुसुमलता ने कहा—"वास्तव में सखी, तुम दिन-पर-दिन कम-ज़ोर पड़ती जा रही हो। आज मैंने तो तुम्हें देखकर पहले पहचाना ही नहीं। मैं ताज्जुब से देखने लगी कि यह कौन है, जो बिना पूछे मेरे कमरे में चली आई।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"यही ख़याल मेरे मन में भी आया। मैं सत्य कहता हूँ कि थोड़े दिनों में आपको पहचानना मुश्किल हो जायगा, अगर आप अपना सुचारु रूप से इलाज नहीं

कराएँगी। आज मैं बैरिस्टर साहब और चाची साहबा से इस बारे में अर्ज़ करूँगा।"

मनोरमा ने शंकित स्वर में कहा—"पापा से आप चाहे भले कह दीजिएगा, लेकिन अम्मा से किसी बात का ज़िक्र न कीजिएगा, वह मेरी बीमारी सुनकर सारा धीरज खो देंगी, और बेहाल हो जायँगी। उनका खाना-पीना सब हराम हो जायगा। इसके अलावा अब आजकल मेरी तबियत अच्छी है, कल मैं कॉलेज भी गई थी।"

कुसुमलता ने उलहना देते हुए कहा—"अकेले-अकेले जाकर नाम लिखा आई, मुझसे पूछा भी नहीं!"

मनोरमा ने हँसकर कहा—"आज पूछने क्या, तुम्हें साथ लेने आई हूँ। कल मैं तुम्हारी तरफ़ से बेगार करने गई थी। दो प्रवेश-पत्र लाई हूँ, एक तुम्हारे लिये और एक अपने लिये।" यह कहकर उसने कॉलेज का प्रवेश-पत्र उसे दे दिया।

कुसुमलता ने कहा—"अब क्या होता है बहाना बनाने से, तुम मुझे छोड़कर चली तो गईं!"

मनोरमा ने कहा—"हाँ, गई ज़रूर, लेकिन मैंने सोचा कि तुम्हारे आराम में क्यों बाधा डालूँ, इसलिये मैं अकेले ही चली गई।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"आपने केवल फ़ार्म लाने के लिये इतना कष्ट क्यों किया? आपने मुझे क्यों न कहला दिया, मैं ले आता।"

मनोरमा ने हँसकर कहा—"हाँ, मैं यह ज़रूर भूल गई थी। कहिए डॉक्टर साहब, आपकी क्या राय है, हम लोग पढ़ें या नहीं?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"ज़रूर, अगर इस समय न पढ़िएगा, तो फिर आप कब पढ़ेंगी?"

कुसुमलता ने व्यंग्य-पूर्ण स्वर में कहा—"क्या बुढ़ापे में पढ़ने के

लिये क़ानूनन् मना है, या इसके लिये भी गवर्नमेंट ने कोई आर्डिनेंस पास कर दिया है ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद और मनोरमा, दोनो हँसने लगे।

मनोरमा ने कहा—"मैंने तो 'भारत का प्राचीन इतिहास' अपने लिये विषय चुना है ; कुसुम, तुम भी यही विषय लो।"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"मेरा विचार अँगरेज़ी लेने का है। तुम भी अँगरेज़ी क्यों न लो ?" यह कहकर वह ग़ौर से मनोरमा की ओर देखने लगी।

मनोरमा ने कहा—"अँगरेज़ी भी ठीक है, मगर मुझे इतिहास से ज़्यादा दिलचस्पी है। तुम तो पहले यही कहा करती थीं कि मैं एम्० ए० में इतिहास लूँगी। अब क्यों मन बदल गया ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हँसकर कहा—"अब अँगरेज़ी से प्रेम हुआ है।"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"अँगरेज़ी संसार की एक जीवित भाषा है। जैसा उसका साहित्य विशद है, उतना ही मनोरम भी। मुझे अँगरेज़ी से प्रेम है, और एम्० ए० के लिये अपना विषय अँगरेज़ी चुनती हूँ।"

मनोरमा ने दुःखित स्वर में कहा—"यह तुम्हारी इच्छा। मुझे तो भारत का प्राचीन इतिहास लेने की आज्ञा है, और मुझे उससे प्रेम भी है, इसलिये मैं वही विषय लूँगी।"

कुसुमलता चुप रही।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने पूछा—"क्या राजेंद्र बाबू ने यह आज्ञा दी है, या बैरिस्टर साहब ने ? यह तो मेहरबानी करके बतलाइए।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद के स्वर में विनोद का आभास था।

मनोरमा के पीले कपोल क्षण-भर के लिये लाल हो गए। उसने तुरंत ही कहा—"जी नहीं, पापा ने भी कल कहा था।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हँसकर कहा—"आपके कथन से तो यह साफ़ मालूम होता है कि इस विषय में राजेंद्र बाबू ने अपना मत दिया है। ठीक है, इसमें कोई चोरी की बात तो नहीं है।"

मनोरमा ने कोई उत्तर नहीं दिया। वह कुछ दूसरे ख़याल में फँस गई थी।

कुसुमलता ने कुछ सोचते हुए कहा—"तो क्या तुमने इतिहास लेना निश्चय कर लिया है ?"

मनोरमा ने सिर हिलाकर अपना विचार प्रकट किया।

इसी समय एक नौकर ने आकर सूचना दी कि मिस ट्रैवीलियन मिलना चाहती हैं। कुसुमलता ने उनको बुलाने का आदेश दिया।

मिस ट्रैवीलियन ने कमरे में घुसते हुए कहा—"आज मैंने आपको सूचना देकर आना उचित समझा, क्योंकि अब आप अपनी मालकिन नहीं रहीं।" यह कहकर वह हँसने लगीं।

कुसुमलता और मनोरमा ने अभिवादन कर एक सोफ़ा पर बैठने का संकेत किया। मिस ट्रैवीलियन ने सोफ़ा पर न बैठ कुरसी पर बैठते हुए कहा—"आज किस विषय पर यह समिति विचार कर रही है, क्या मैं जान सकती हूँ ?"

मिस ट्रैवीलियन ने यह कहकर प्रश्न-पूर्ण दृष्टि से डॉक्टर आनंदी-प्रसाद की ओर देखा। फिर कहा—"इस समिति के शायद आप ही सभापति हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हँसकर कहा—"जी नहीं, यह इज़्ज़त तो आपके लिये है। सभानेत्री का आसन आपके लिये ख़ाली है।"

कुसुमलता और मनोरमा हँसने लगीं।

मिस ट्रैवीलियन ने शरमाए हुए शब्दों में कहा—"धन्यवाद ! मैं बड़ी प्रसन्नता से आपकी आज्ञा पालन करने के लिये तैयार हूँ।

यह तो आपने बतलाने की कृपा नहीं की कि किस विषय पर वाद्-विवाद होनेवाला है।"

कुसुमलता ने मुस्किराकर कहा—"क्या आपका 'प्रेसीडेंशियल पेडेस्टल' छुड़वाना पड़ेगा, या आप··· " यह कहकर वह हँसने लगी, और आगे न कह सकी।

मिस ट्रैवीलियन कुछ क्रुद्ध हो गई। उनके विशाल मस्तक पर रेखाएँ पड़ गईं, और बंकिम भ्रू कुंचित होकर कामदेव के पुष्प-धन्वा का मुक़ाबला करने लगीं।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"आज का विषय है एम्० ए० में पढ़ना या नहीं। मेरा प्रस्ताव था कि पढ़ा जाय, जो बाद बहस-मुबाहिसे के पास हो गया, और आगे पढ़ना निश्चित हो गया। अब इस समय यह प्रस्ताव पेश है कि एम्० ए० में विषय क्या लिया जाय। मनोरमादेवी का प्रस्ताव है कि भारत का प्राचीन इतिहास पढ़ा जाय। अब आप अपना मंतव्य प्रकट करने की मेहरबानी करें।"

मनोरमा ने कहा—"और कुसुम का यह प्रस्ताव है कि अँगरेज़ी पढ़ी जाय, जिसको डॉक्टर साहब शायद कहना भूल गए।"

मिस ट्रैवीलियन ने पूछा—"ठीक है, अब सवाल यह है कि आप दोनो साथ पढ़ना चाहती हैं, यानी साथ छोड़ना नहीं चाहतीं ?"

मनोरमा ने कहा—"जी हाँ, हम लोग साथ नहीं छोड़ना चाहतीं।"

मिस ट्रैवीलियन ने कुछ सोचते हुए कहा—"ठीक है, मैं अब समझ गई। अब आप लोग अपनी-अपनी दलीलें भी तो कहें।"

मनोरमा ने कहा—"हम हिंदू हैं, और भारतीय हैं, हमको अपनी

असलियत मालूम होना आवश्यक है, अगर हम इस संसार में सफल नागरिक होना चाहते हैं। जिस मनुष्य को अपना पूर्व-इतिहास नहीं मालूम, वह कभी पनप नहीं सकता। भारत इस संसार की सभ्यता का आदिम स्थान है, जहाँ के लोगों ने अपने ज्ञान और आविष्कार से संसार को चकित किया था। उस सभ्यता के भग्नावशेष जो हमको प्राप्त हैं, उनको जानना अत्यावश्यक है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने प्रसन्न होकर कहा—"बेशक-बेशक, सफल जीवन का विकास हमारी प्राचीन सभ्यता के अभिमान में निहित है।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"यह आपका और मनोरमाजी का मत है, अब मुझको दूसरे पक्ष की बात भी सुनना चाहिए।"

फिर कुसुमलता से कहा—"कहिए, आपको क्या कहना है?"

कुसुमलता कहने लगी—"मैं अँगरेज़ी पढ़ने के लिये ज़ोर देती हूँ, क्योंकि इसका साहित्य संसार का एक अद्भुत ज्ञान-भांडार है, जिसका ज्ञान हमारी उन्नति के लिये ज़रूरी है। अँगरेज़ी-शिक्षा ने हमको मनुष्य बनाया है, और आज इसी बदौलत हम अपनी अधिकार-प्राप्ति के लिये आंदोलन कर रहे हैं। अँगरेज़ी-शिक्षा ने हमारे जीवन में आंदोलन करने की शक्ति पैदा की है। आज आप जिधर देखें, उधर आपको आंदोलन का जीवित रूप देखने को मिलेगा—पुरुष स्वराज्य के लिये आंदोलन कर रहे हैं, स्त्रियाँ अपने अधिकार के लिये आंदोलन कर रही हैं, हरिजन अपनी स्वत्व-प्राप्ति के लिये आंदोलन कर रहे हैं, और मुसलमान सरकारी नौकरियाँ पाने के लिये आंदोलन कर रहे हैं। प्रश्न उठता है, यह किसका प्रभाव है, जो सबके भीतर अपना काम कर रहा है? उत्तर यह मिलता है, अँगरेज़ी-शिक्षा।"

मिस ट्रैवीलियन ने ताली पीटकर कहा—"हियर-हियर, वाह!

यह नितांत सत्य है। कोई हठधर्मी से चाहे भले ही न स्वीकार करे, परंतु यह बिलकुल सत्य है। वास्तव में जो कुछ जागृति हमको मिल रही है, वह अँगरेज़ी-शिक्षा के प्रभाव से ही। हम इसका महत्त्व किसी प्रकार कम नहीं कर सकते।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"अँगरेज़ी-शिक्षा से यह ज़रूर हुआ कि एक संघर्ष करने की शक्ति पैदा हो गई है—पिता के प्रतिकूल पुत्र सघर्ष करने के लिये तैयार है, और पति के ख़िलाफ़ स्त्री लाठी लेकर खड़ी हो गई है। इस शिक्षा ने हमारे समाज की व्यवस्थित अवस्था छिन्न-भिन्न कर दी है, और एक अविराम कलह का जन्म दिया है, जिससे सांसारिक, मानसिक और आत्मिक शांति लुप्त हो गई है। एक दूसरे के प्रति अविश्वास, घृणा, वैमनस्य के भाव पैदा हो गए हैं।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसते हुए कहा—"जैसे सूर्य के सामने अंधकार नहीं ठहरता, उसी तरह अँगरेज़ी-शिक्षा ने हिंदू-समाज का खोखलापन संसार के सामने रख दिया है। यदि हिंदू-समाज की नींव सत्य पर निर्भर होती, तो वह दृढ़ रहती। लेकिन जितना अत्याचार, मानुषिक अधिकारों की उपेक्षा और अन्याय हमको इस समाज में देखने को मिलता है, उतना क्या, उसका शतांश भी कहीं देखने को नहीं मिलता। अँगरेज़ी-शिक्षा मनुष्य-जाति की समानता का संदेश लेकर आई है, और ग़ुलामी-प्रथा का इसी ने अंत किया है। मानव-अधिकारों की रक्षा में इसी ने पहलेपहल अपनी आवाज़ उठाई है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद कुछ कहनेवाले थे कि मनोरमा ने अपने सहज शांत स्वर में कहा—"विकास के कई कारण होते हैं। जिसे हम आज विकास कह रहे हैं, वह कुछ काल में पुराना होकर घृणा का पात्र हो जायगा। जिस प्रकार मनुष्य शिशु होकर उत्पन्न होता

है, और धीरे-धीरे बढ़ता है, उसी प्रकार कोई एक सभ्यता उत्पन्न होती है, और फिर धीरे-धीरे उन्नति करती है। समय सदा से परिवर्तनशील रहा है। समय के प्रभाव से न मनुष्य कभी बचा रहा है, और न बचा रहेगा। योरप में जब 'रिनाय सांस' (जागृति) शुरू हुआ था, वह भी इसी प्रकार शुरू हुआ था। उस समय भी तत्कालीन समाज का संस्कार हुआ था। हमारे सामाजिक जीवन में समय के प्रभाव से बहुत बुराइयाँ घुस गईं, और जब हम ऐतिहासिक रूप से उनका विश्लेषण करते हैं, तो हमें मालूम होता है कि वे बुराइयाँ कुछ तो ब्राह्मण-काल में, कुछ जैन और बौद्ध-काल में, और फिर कुछ ब्राह्मण-काल में, और ज़्यादा मुसलिम काल में घुसी हैं, जो उस समय के अनुसार सुधार थे, परंतु जिनको आजकल के अनुसार हमको बुराइयाँ कहना पड़ता है। समय ने उन सुधारों को बुराइयों में परिवर्तित कर दिया, इसलिये हमको भी आवश्यक है कि हम अपने समाज का पुनः संस्कार करें।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने गद्गद होकर कहा—"धन्य है ! वास्तव में यही सत्य है। समाज सदा से समय पर निर्भर रहा है। संसार इस समय भीषण प्रयोगशाला में गुज़र रहा है, जहाँ अपने-अपने देश-काल-स्थिति के अनुसार परिवर्तन किए जा रहे हैं। योरपियन महायुद्ध के बाद संसार की स्थिति सुधरी नहीं, बल्कि बदल गई है, जिसने एक नया प्रश्न हमारे सामने उपस्थित कर दिया है। रूस समाजवाद के सर्वोत्कृष्ट नियमों का प्रयोग अपनी प्रयोगशाला में कर रहा है, जर्मनी, इटली आदि संकुचित जातीयता के प्रयोग में लीन हैं, अँगरेज़ और जापानी अपने साम्राज्यवाद को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिये व्याकुल हैं। अमेरिका अपनी भेरी बजाने में आप मस्त है। वह पूँजीवादी होकर संसार का स्वर्ण इकट्ठा कर रहा है। इसी तरह भारत भी उनके प्रभाव से मुक्त

नहीं रह सकता, परिवर्तन तो अत्यावश्यक है। समय इतना बलवान् है कि हम अगर परिवर्तन भी करना चाहें, तो वह अपनी शक्ति से स्वयं परिवर्तन करेगा। मैं इसका श्रेय अँगरेज़ी-शिक्षा को देने के लिये तैयार नहीं हूँ। हाँ, यह एक कारण अवश्य है।"

मिस ट्रैवीलियन ने संतुष्ट होकर कहा—"ख़ैर, आप यह मानते तो हैं कि अँगरेज़ी-शिक्षा एक कारण है। मैं इतने से ही संतोष करती हूँ।"

कुसुमलता ने सोचा कि शायद वाद-विवाद में पहले की तरह कोई विरोध न पैदा हो जाय, इसलिये उसने विषय बदलते हुए कहा—"आपकी संस्था की सभानेत्री, यानी रूपगढ़ की रानी साहबा, के जाने के बाद शायद काम कुछ ढीला पड़ गया है। अब आजकल ऐसी चर्चा सुनने में नहीं आती, इसका क्या कारण है?"

मिस ट्रैवीलियन ने उत्तर दिया—"हाँ, कुछ शिथिल अवश्य हो गया है, क्योंकि इसके पहले हम लोग दो कार्यकर्त्री थीं, लेकिन मैं अकेले कहाँ तक करूँ। आप भारत की भावी आशाएँ हैं, कल के भारत की नागरिक हैं, क्या मैं यह आशा करूँ कि आप हमारा हाथ बटाएँगी?"

कुसुमलता ने हँसकर उत्तर दिया—"सेवा करने में मुझे कोई इनकार नहीं, लेकिन कोई पद स्वीकार नहीं कर सकती, क्योंकि मैं अपने को इस योग्य नहीं समझती।"

मिस ट्रैवीलियन ने विरक्त होकर कहा—"यही तो मुश्किल है। मौखिक सहायता के लिये सब लोग तैयार रहते हैं, लेकिन काम करना कोई नहीं चाहते। मैं सारा बोझ कहाँ तक उठा सकती हूँ।"

फिर मनोरमा की ओर देखकर कहा—"श्रीमती से मैंने यही प्रार्थना की थी, लेकिन आपने साफ़ इनकार कर दिया।"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"मैं, और मनो, दोनों आपकी सहायता के लिये तैयार हैं, केवल कोई पद हम लोग ग्रहण नहीं करना चाहतीं। रानी रतनकुँवरि को आप क्यों नहीं सभानेत्री बनातीं। वह भी तो बड़ी तत्परता से संस्था के कार्य में भाग लेती हैं।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"यह तो करना ही पड़ेगा। लेकिन आपको भी कुछ-न-कुछ इस पुण्य कार्य में हाथ बटाना चाहिए।"

मिस ट्रैवीलियन के स्वर में किसी हद तक विनय का आभास था।

कुसुमलता ने सहर्ष कहा—"ज़रूर, अब हम लोग हाज़िर होकर अपना-अपना काम बाँट लेंगी।"

मिस ट्रैवीलियन ने प्रसन्न होकर कहा—"मैं आपकी कब प्रतीक्षा करूँ?"

कुसुमलता ने जवाब दिया—"किसी दिन आ जायँगी। रूपगढ़ की रानी साहबा ने क्यों इस्तीफ़ा दिया, इसका रहस्य अभी तक कुछ समझ में नहीं आया।"

मिस ट्रैवीलियन ने बड़ी चतुरता से उठता हुआ भाव दबाकर कहा—"मुझे ख़ुद नहीं मालूम। राजा साहब की तो पूरी-पूरी सहानुभूति है।"

मनोरमा ने धीमे स्वर में कहा—"मुझको तो ऐसा मालूम होता है कि रानी मायावती और राजा प्रकाशेंद्र में कुछ मनोमालिन्य हो गया है।"

मिस ट्रैवीलियन ने चौंककर कहा—"यह आपको कैसे मालूम हुआ?"

उनके स्वर में शंका की विह्वल मुस्कान थी। कुसुमलता भी चकित होकर उनकी ओर देख रही थी।

मनोरमा ने कहा—"मैंने केवल अनुमान किया।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने पूछा—"राजेंद्र बाबू ने तो कुछ नहीं लिखा ; क्योंकि वह रानी मायावती के परिवार के साथ ही गए हैं, और उनकी घनिष्ठता भी हो गई। कल के पत्र से तो यही मालूम होता था, जो उन्होंने 'पोर्टसईद' से छोड़ा है।"

मिस ट्रैवीलियन की घबराहट उसके छोटे-से हृदय के बाहर निकलने का उपक्रम करने लगी। उसने उठकर कहा—"अब मैं जाऊँगी, अभी एक ज़रूरी काम से मुझे जाना है। आप लोग मुझे क्षमा कीजिएगा।"

कुसुमलता ने अनुरोध किया, लेकिन वह उसकी बात न मानकर चली गई।

मनोरमा ने भी उठते हुए कहा—"मैं भी अब जाती हूँ। खाना खाने के बाद तुमको लेने आऊँगी। युनिवर्सिटी चलोगी या नहीं?"

कुसुमलता ने भी उठते हुए कहा—"जब तुमने इरादा कर लिया है, तब मुझे चलना ही पड़ेगा।"

मनोरमा डॉक्टर आनंदीप्रसाद को प्रणाम कर चली गई।

(१०)

राजा प्रकाशेंद्र अपने कमरे में बैठे हुए अपने विचारों में मग्न थे। सामने मायावती का तैल-चित्र टँगा हुआ था। वह उसकी ओर देखकर सोच रहे थे—"इस जीवन में शायद अब माया से पुनः भेंट नहीं होगी। भेंट होने का शायद कोई मार्ग ही नहीं रहा। जब उसके पिता ने यहाँ तक निश्चय कर लिया है कि अगर इस काम के लिये उन्हें ईसाई भी होना पड़े, तो वह सहर्ष हो जायँगे, तब संधि का उपाय ही क्या रह गया? मैं जानता हूँ कि मैंने उसके साथ विश्वासघात किया है—उसके गहने चुराकर मिस ट्रैवीलियन को दे आया हूँ। इसमें मेरा पूरा अपराध है, लेकिन क्या उसका धर्म नहीं था कि वह मुझे सन्मार्ग पर ले आवे, और मेरा अपराध क्षमा करे।

"पुरुष तो एक बेलगाम का घोड़ा है। उसकी उच्छृंखलता जगद्व्यापी है। अगर मैंने उसी स्वभाव के वश होकर कोई बुरा काम कर लिया, तो उसे यह लाज़िम था कि वह मेरा चरित्र सुधारे। लेकिन उसने तो युद्ध की घोषणा की है। मुझ पर ज़हर खिलाने का दूसरा इलज़ाम लगाया है, और मुझे ख़ूनी साबित करने की चेष्टा की है। ऐसी हालत में संधि की आशा या उसका विचार करना बिलकुल निरर्थक है।

"मिस ट्रैवीलियन मुझको जी-जान से प्यार करती है। वह मेरे लिये प्राण देने को तैयार है। उसने मेरे लिये क्या कम त्याग किया है। अपनी इज़्ज़त, अपना मान, अपना नाम, सभी मेरे लिये ख़तरे में डाला है। अगर ऐसी स्त्री के साथ मैं विश्वासघात करूँ,

तो यह मेरा कमीनापन है। मैं भी उसके लिये सब कुछ छोड़ने को तैयार हूँ। न-मालूम उसमें कौन-सा जादू है, जिसने मुझे अपना गुलाम बना रक्खा है।

"मनोरमा भी ग़ज़ब की सुंदरी है। जितना उसमें सौंदर्य है, उतना ही अभिमान भी। उसको अपनी सुंदरता का अभिमान है। इस अभिमान को तो तोड़ना ही पड़ेगा। अभिमानी के ऊपर विजय पाना, यही तो सच्ची विजय है। अभिमानी का मान-मर्दन करने में जो प्रसन्नता होती है, वह अनुपम है।

"मिस ट्रैवीलियन भी मनोरमा से असंतुष्ट है। क्यों, कुछ समझ में नहीं आता। वह उसके नाम से जलती है। मेरा कार्य इसी के द्वारा सिद्ध होगा। स्त्री के मन में द्वेष उसी समय उत्पन्न होता है, जब वह किसी से ईर्षा करती है। मिस ट्रैवीलियन ज़रूर मनोरमा से ईर्षा करती है। वह उससे रूप और सौंदर्य में प्रतियोगिता करती है, शायद इसीलिये यह प्रतिहिंसा है। मुझको इससे लाभ उठाना चाहिए। अगर यह मौक़ा हाथ से जाने दूँगा, बस, मेरी हार है। इस संसार में सफल मनुष्य कौन होता है, जो अवसर से लाभ उठाता है। यही सफलता की कुंजी है।

"क्या मैं मिस ट्रैवीलियन से प्रेम करता हूँ? मैं इसका उत्तर खोजता हूँ। लेकिन मुझको ढूँढ़ने से नहीं मिलता। मैं इसको प्रेम कहने के लिये तैयार नहीं। हाँ, उसकी ओर मैं आकर्षित ज़रूर हूँ। रात-दिन उसका आकर्षण मुझको उसकी ओर खींचता रहता है, लेकिन मैं उससे प्रेम नहीं करता, यह तो निश्चय है।

"प्रेम क्या है? यह कमज़ोर दिलों की निशानी है। प्रेम इस संसार में कोई वस्तु नहीं, केवल लेखकों की कल्पना या बेवक़ूफ़ी का नमूना है। जब तक कोई स्त्री, जिसको मन माँगता है, नहीं मिलती, तब तक एक तड़पन होती है, उसको मूर्ख लेखक प्रेम कहकर

पुकारते हैं परंतु जहाँ वह मिल जाती है, और आदमी उसको भोग लेता है, तब उसका प्रेम भी ठंडा पड़ जाता है। यह है प्रेम और उसका गुण।

"मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने आज तक किसी से प्रेम किया है वैसा, जैसा कवि कहते हैं। वह भाव तो उन्हीं के कल्पित चित्रों में देखने को मिलता है। इस संसार में उसका अस्तित्व है या नहीं, मुझे तो इसमें भी शक है। लैला और मजनूँ के प्रेम के गीत हमारे बेवक़ूफ़ कवि गाने में मशग़ूल रहते हैं, लेकिन मेरा तो यह ख़याल है कि लैला-मजनूँ कभी मिले नहीं, हमेशा तड़पते रहे, इसीलिये एक दूसरे के प्रति आकर्षित रहे। न मिलने की तड़पन का ही प्रेम कहना उचित है।

"मनोरमा मुझे अभी प्राप्त नहीं है, इसलिये मैं उसके प्रेम में फँसा हुआ हूँ। जिस दिन मैं उस पर विजय प्राप्त करूँगा, मेरी यह अतृप्त इच्छा पूरी हो जायगी, उसी दिन मेरा प्रेम भी समाप्त हो जायगा। बस, यह प्रेम का रहस्य है, और मूर्खों की कल्पना का अंत है।

"चाहे जैसे हो, मनोरमा को अपने वश में करना होगा। अगर इसके लिये मुझको सैकड़ों क्या हज़ारों रुपया ख़र्च करना पड़े, तो मैं सहर्ष तैयार हूँ। दुनिया में ऐसी कौन-सी वस्तु है, जिसको रुपया अपने वश में नहीं कर सकता। और, स्त्रियाँ तो रुपयों की ग़ुलाम हैं। यह मैं मानता हूँ कि मनोरमा रुपयों के प्रलोभन से वश में नहीं आ सकती, क्योंकि वह अभिमानिनी है, परंतु उसको कौशल से वशीभूत करना पड़ेगा।"

इसी समय मिस ट्रेवीलियन ने उनके कक्ष में प्रवेश करते हुए कहा—"डार्लिंग, आज बड़ी बुरी ख़बर है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने भ्रू कुंचित करके पूछा—"क्या?"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"मैं अभी कुसुमलता के यहाँ से आ रही हूँ। वहाँ मनोरमा भी आ गई थी। तुम्हारे सहपाठी मित्र डॉक्टर आनंदीप्रसाद भी बैठे थे। बातों-बातों में मनोरमा ने कहा—'मुझे ऐसा मालूम होता है कि राजा प्रकाशेंद्र और रानी मायावती में कुछ अनबन हो गई है।' इस पर मैंने पूछा कि यह बात तुम्हें कैसे मालूम हुई, तो उसने कुछ जवाब नहीं दिया। फिर डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने पूछा—'क्या राजेंद्र बाबू ने उसको इस विषय में कुछ लिखा है, क्योंकि वह रानी मायावती के साथ हैं, और उनका घनिष्ठ संबंध भी स्थापित हो गया है।' इसके जवाब में वह मौन रही। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि शायद रानी मायावती ने हमारा भेद राजेंद्र बाबू से कह दिया है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"तो इसमें डर की कौन बात है। यह भेद हमेशा तो छिपा रहनेवाला है नहीं। किसी-न-किसी दिन तो खुलेगा ही। अच्छा हुआ, जो अभी खुल गया।"

मिस ट्रैवीलियन ने क्रुद्ध होकर कहा—"वाह, यह तुमने खूब कहा! इस भेद के खुल जाने से मेरी क्या स्थिति इस लखनऊ-समाज में रहेगी। मैं तो किसी दीन की नहीं रहूँगी। जो लोग अभी मुझे पूजते हैं, वही मेरे ऊपर थूकेंगे। जब लोगों को यह मालूम होगा कि मैं राजा प्रकाशेंद्र की प्रणयिनी हूँ, और उनकी रानी के ज़ेवर चुरवा मँगाए हैं, तो बड़े-बड़े राजा-महाराजा, गवर्नर वग़ैरह, जो मेरे पैरों पड़ते हैं, ठुकराकर निकाल देंगे। मेरा तो लखनऊ में रहना दुश्वार हो जायगा। मेरी तो यह हालत होगी, और तुम कहते हो कि अच्छा हुआ।"

मिस ट्रैवीलियन के स्वर में तिरस्कार था।

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"अच्छा, इसका उपाय क्या है?"

राजा प्रकाशेंद्र के स्वर में चिंता थी।

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"इसका केवल एक उपाय है, वह यह कि मनोरमा का मुँह बंद कर दिया जाय। अगर उसका मुँह बंद हो जायगा, तो फिर उसको साहस न होगा कि वह हमारे ख़िलाफ़ मुँह खोले।"

मिस ट्रैवीलियन की आँखों से शैतानी झाँक रही थी।

राजा प्रकाशेंद्र ने उत्सुक होकर पूछा—"किस तरह उसका मुँह बंद किया जाय?"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"किस तरह क्या? तुम क्या इतना भी नहीं समझते।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"नहीं, मैं बिलकुल नहीं समझा। क्या उसकी हत्या करने को कहती हो!"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसकर कहा—"नहीं, किसी का ख़ून कर मैं फाँसी लटकना नहीं चाहती, और न मेरी यह महत्त्वाकांक्षा है। तुम्हारी हो, तो मैं कह नहीं सकती।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसते हुए कहा—"तुम फाँसी की कहती हो, मैं साधारण मौत भी मरना पसंद नहीं करता।"

दोनो हँसने लगे। इनके हास्य की कर्कशता शैतान का आह्वान करने लगी।

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"तुम्हारी प्रखर बुद्धि कौशल की खान है, तुम्हीं बताओ कि मनोरमा का मुँह किस तरह बंद किया जाय।"

राजा प्रकाशेंद्र उत्सुकता से उसकी ओर देखने लगे।

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"अभिमानिनी का मान भंग करने से वह ग़ुलाम होकर रहेगी।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर प्रसन्नता के साथ कहा—"हाँ, यह उपाय तो बिलकुल निरापद है, और अमोघ है।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"एक दिन मैं उसको किसी बहाने से

अपने यहाँ ले आऊँगी, और तब उसको वह दवा खिला दूँगी, जो रानी रतनकुँवरि को खिलाई थी। इसके बाद हमने कुँवर श्री-प्रकाशसिंह को सौंप दिया, और फिर वह आज तक उनकी गुलाम है। हमको इसमें काफ़ी लाभ भी हुआ था।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"तो फिर वह शुभ दिन कौन होगा?" उत्सुकता उनकी आँखों के बाहर निकली पड़ती थी।

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"बहुत जल्द। एक यह भी बात सोचने क़ाबिल है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने पूछा—"क्या, इसमें क्या सोचना है?"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"इस संबंध में तो हमको कुछ सोचना ही नहीं है। यह तो तय हो चुका है। सोचने की दूसरी बात है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने लापरवाही से कहा—"किसी बारे में कुछ नहीं सोचना मुझे। मैं तो सिर्फ़ यह सोचता हूँ कि वह कौन दिन होगा, जिस दिन तुम्हारी शत्रु मनोरमा का मान भंग कर तुमको संतुष्ट कर सकूँगा।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"वह दिन नज़दीक है। मैं आज तक कभी अपने कौशल में असफल नहीं हुई; मुझे विश्वास है, इसमें भी अकृतकार्य न होऊँगी। मैं यह कहती थी कि कहीं राजेंद्र इँगलैंड में रानी मायावती के प्रेम में न फँस जायँ, क्योंकि दोनो को अवसर ज़रूर मिलेगा, और राजेंद्र चूकनेवाला आदमी नहीं है। मैं उसको अच्छी तरह जानती हूँ। उसने मेरे ऊपर एक मर्तबा मेरी इज़्ज़त लेने को वार किया था, उससे तो यही मालूम होता है कि वह रानी मायावती को नहीं छोड़ेगा। बड़ा दुष्ट, पापी है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने चिंतित होकर कहा—"यह बात कभी तुमने नहीं कही,* नहीं तो उसका मस्तक मैं कभी का चूर्ण कर देता।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"लड़ाई होने के डर से नहीं कहा।"

उसके नेत्रों से सरलता के पीछे बदमाशी झाँक रही थी।

राजा प्रकाशेंद्र ने सोचते हुए कहा—"यह मुमकिन है कि माया उसके जाल में फँस जाय, लेकिन कुछ परवा नहीं, मैं इसका बदला पहले ही चुका लूँगा। मैं उसकी स्त्री को पामाल कर उसको कहीं का न रक्खूँगा।"

राजा प्रकाशेंद्र की आँखें प्रतिहिंसा की लालिमा की लाल छाया से आवृत थीं। मिस ट्रैवीलियन अपने विष-प्रयोग में सफल हो गई थी। उसने उठते हुए कहा—"अच्छा, अब जाती हूँ। शाम को तो तुम आओगे ही।"

राजा प्रकाशेंद्र ने चिंतित स्वर से कहा—"ज़रूर।"

इसके आगे वह कुछ न कह सके। अपनी चिंताओं में डूब गए। प्रतिहिंसा का वृश्चिक-दंशन उनको तड़पाने लगा।

मिस ट्रैवीलियन मन-ही-मन प्रसन्न होती हुई चली गई। उसकी दवा धीरे-धीरे अपना असर कर रही थी।

---

(११)

राजा भूपेंद्रकिशोर सपरिवार राजेंद्र और डेविड के साथ लंदन पहुँच गए। रोम के बाद घूमते हुए वह पेरिस पहुँचे, और वहाँ कई दिन तक ठहरे। राजेंद्रप्रसाद और मायावती की इच्छा वहाँ से बर्लिन जाने की थी, लेकिन राजा भूपेंद्रकिशोर को एक राजकीय काउंसिल में सम्मिलित होना था, इसलिये सर्व-सम्मति से यह तय हुआ कि थोड़े दिन बाद तो सारा योरप घूमा ही जायगा, अभी बर्लिन जाने की क्या ज़रूरत है।

डेविड ने अपनी सच्चरित्रता से उस परिवार पर अपना विश्वास जमा लिया था, और वह उसका एक अंग-विशेष हो गया था। रानी किशोरकेसरी और मायावती ने जब उसकी जीवन-कहानी सुनी, तो उनकी सहानुभूति विशेषकर जाग्रत् हुई, और जब उसने अपनी मुसीबतों का हाल बयान किया, तो उसके नेत्र आर्द्र हो गए। रानी किशोरकेसरी ने एक आह से कहा—"मनुष्य को यह अभिमान कभी न करना चाहिए कि मैं धनी हूँ, और मेरे जीवन में आपत्ति कभी नहीं आवेगी।" उनके कथन में कितनी सत्यता थी, यह तो वही जान सकती हैं।

रानी मायावती की जीवन-प्रगति में बहुत-कुछ अंतर आ गया था। जिस सभ्यता पर उनको नाज़ था, और जिसका अनुकरण करने के लिये वह आकुल थीं, उसी का पेरिस में नग्न-नृत्य देखकर लज्जा से उन्होंने अपनी आँखें बंद कर लीं। उन्हें मालूम हुआ कि सचमुच भारतीय नारियाँ इस कपट से तो बची हुई हैं। उनके प्रेम में कितना निःस्वार्थ भाव है, और उन्हें मानसिक शांति कितनी

प्राप्त है। कम-से-कम वे इस अविराम कृत्रिमता से, जो योरपियन स्त्री-जाति को, अपनी जीविका का प्रश्न हल करने के लिये, रौरवमय बनाए हुए है, बची हुई अपने छोटे-से टूटे-फूटे झोपड़े में पड़ी, अपने पति और पुत्रों के साथ सुख-शांति से कालक्षेप कर रही हैं। जिसे योरपियन सभ्यता के पुजारी पशुवत् जीवन कहते हैं। वह इस कृत्रिमता के निरंतर कलह से तो कहीं श्रेयस्कर है, जहाँ केवल इंद्रिय-सुखों की प्राप्ति के लिये मानव-जाति पाप-सागर में डूबी जा रही है, जहाँ स्त्री-जाति के कोमल गुणों का विकास नहीं होने पाता, जहाँ मातृत्व की महत्ता स्वार्थपरता की काली धारा में सदा के लिये डूब गई है, जहाँ दांपत्य जीवन की पवित्रता केवल भोग-विलास की सीमा के अंदर बद्ध है। मायावती ने एक गहरी साँस ली।

राजेंद्रप्रसाद वे दृश्य देखकर आश्चर्य-सागर में डूब गए। उनके मुँह से यह निकल पड़ा—"क्या यही योरपियन सभ्यता है, जहाँ स्त्री-जीवन की पवित्रता का मूल्य कुछ थोड़े-से रुपए हैं? योरप की स्त्रियाँ थोड़े-से धन के लिये अपना शरीर बेचने में कोई शंका नहीं करतीं। हिंदुस्थानी राजा के नाम से वे इस तरह आकर्षित होती हैं, जैसे मधु-मक्खियाँ शहद की सुगंध पाकर, अपना अस्तित्व भूल उसमें लिपट जाती हैं, चाहे उनके प्राण भले ही चले जायँ। राजेंद्रप्रसाद सोचने लगे कि क्या योरप ऐसा ही है, जहाँ पवित्रता दीपक लेकर खोजने से भी मुश्किल से मिलेगी। उन्होंने घृणा से बाहर निकलना ही बंद कर दिया।

और रानी किशोरकेसरी, वह तो असंतोष से बिलकुल विह्वल हो गईं। उन्होंने राजा भूपेंद्रकिशोर से साफ़-साफ़ कह दिया—"मैं यहाँ एक क्षण नहीं रह सकती। अगर ऐसा जानती, तो इस देश में आने का कभी नाम न लेती।" फिर उन्होंने साश्चर्य पूछा—"तुम इस देश में कैसे रहे?"

इस प्रश्न के उत्तर में राजा भूपेंद्रकिशोर केवल मुस्किरा दिए, और कहा—"यही बस नहीं है।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"इससे ज़्यादा सुखी और संतुष्ट मैं अपने गाँव की स्त्रियों के बीच में थी, जहाँ पवित्रता का आभास तो मिलता था।" वह पेरिस छोड़कर चलने का आग्रह करने लगीं। राजा भूपेंद्रकिशोर को भी लंदन पहुँचने की जल्दी थी, इसलिये वे लोग दूसरे ही दिन 'कैले' के लिये रवाना हो गए, जहाँ से 'इँगलिश चैनेल' पार कर डोवर होते हुए लंदन पहुँच गए।

संध्या का आगमन था, और दिवस का प्रस्थान। इस समय लंदन-शहर एक दूसरा आकाश मालूम हो रहा था, जिस पर असंख्य विद्युद्दीपक अपना प्रकाश छोड़कर भीषण कालिमा दूर करने का यत्न कर रहे थे। परंतु वे वैसे ही सफल-प्रयत्न नहीं हो रहे थे, जैसे कमज़ोर तारिकावृंद कभी सफल नहीं होता।

राजा भूपेंद्रकिशोर का एक मकान लंदन-शहर में भी था, जिसमें वह आजकल सपरिवार आकर ठहरे थे। अभी फ़िलहाल राजेंद्र-प्रसाद ने उसी मकान में रहना स्वीकार कर लिया था।

रानी मायावती ने कहा—"मिस्टर वर्मा, लंदन एक अद्‌भुत शहर है। पेरिस से यह स्थान मुझे ज़्यादा अच्छा लगता है।"

राजेंद्रप्रसाद ने जवाब दिया—"यह संसार का सबसे बड़ा शहर है, इसकी आबादी ९० लाख के लगभग है, और दिन-पर-दिन बढ़ती जाती है।"

रानी मायावती ने कहा—"मैं यह सोचती हूँ कि इतने मनुष्य कैसे इस शहर में रहते हैं, और फिर भी कितना साफ़ है। संसार की सबसे बड़ी मंडी है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"यही आश्चर्य है। हमारे लखनऊ-जैसे २९ शहर इसमें आबाद हैं, और फिर भी कैसा प्रबंध है।"

लखनऊ की स्मृति ने मायावती को दुखी कर दिया। वह किसी सोच में पड़ गईं।

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"इँगलैंड का गौरव अभी कई शताब्दी तक जीवित रहेगा, क्योंकि वहाँ के मनुष्यों में निस्स्वार्थ सेवा के भाव वर्तमान हैं। उदाहरण के लिये देखिए, हमारे यहाँ मिस ट्रेवीलियन हैं, जिन्होंने हमारी समाज की सेवा का व्रत लिया है।"

रानी मायावती ने एक भयंकर दृष्टि से राजेंद्रप्रसाद की ओर देखा।

राजेंद्रप्रसाद न समझ पाए कि क्या कारण है। वह समझे कि शायद उन्होंने किसी तरह अनजान में अपराध कर उन्हें खिन्न कर दिया है। उन्होंने अनुताप-पूर्ण स्वर में कहा—"अगर मुझसे कोई अपराध हो गया हो, तो क्षमा कीजिएगा।"

रानी मायावती ने तीव्र स्वर में कहा—"आप क्या कहते हैं कि उस राँड़ ने निस्स्वार्थ सेवा का व्रत लिया है। मैं कहती हूँ कि यह ग़लत है। उस दुष्ट का मेरे सामने आप नाम न लीजिए। जब मैं उसका नाम सुन लेती हूँ, तो मेरा ख़ून उबलने लगता है। आप उसे जानते नहीं, इसलिये ऐसा कहते हैं।"

राजेंद्रप्रसाद अवाक् होकर उनकी ओर देखने लगे।

रानी मायावती फिर कहने लगीं—"आप जानते हैं कि उस दुष्ट ने मेरा कितना सर्वनाश किया है। आप क्या जानेंगे? आपने तो उसका ऊपरी सुंदर आवरण देखा है, और उस पर मुग्ध हो गए, उसकी प्रशंसा के गीत गाने लगे, उसकी बड़ाई करने लगे। लेकिन उस आवरण को हटाकर उसका अंतरंग देखें, तो आपको मालूम होगा कि उसके अंदर शैतान का भयंकर मुख है। वह भारत के बेवक़ूफ़ों का धन लूट-लूटकर अपना घर भरती है, और दुनिया को दिखाती है कि वह हिंदू-समाज की सेवा करती है।

वह कहती है कि मैंने जन्म-भर अविवाहित रहने का व्रत लिया है, लेकिन वह दुनिया की सबसे नीच वेश्या से भी हीन है। वह कहती है कि मेरा जीवन संसार की सेवा के लिये है, लेकिन वह सिर्फ अपने लिये जीती है। उससे बढ़कर ख़ुदग़रज़, मक्कार, बद्-माश इस दुनिया में क्या कोई दूसरा मिलेगा? मिस्टर वर्मा, वह एक बड़ी विकट चोर भी है, उसके संसर्ग में जो आवेगा, वह पछ-तायगा। मैंने उसका साथ किया, और आज मैं पछता रही हूँ। हज़ारों नहीं, लाखों रुपया खो दिया, और मेरा सोने का संसार मिट्टी में मिल गया। मैं आज बरबाद होकर मारी-मारी घूम रही हूँ। अगर कहीं समय पर बाबा वहाँ न आ गए होते, तो मैं कभी की यमलोक पहुँचा दी गई होती। उसकी मंत्रणा से मुझे ज़हर तक देने की नौबत आ गई थी, परंतु ईश्वर को धन्यवाद है कि मैं अभी तक जीवित हूँ। जीवित हूँ तो क्या, मृत से भी ज़्यादा बदतर हूँ।"

रानी मायावती उद्वेग से काँपने लगीं। उनके नेत्र घृणा और क्रोध से लाल हो रहे थे, और युगल अधर फड़क रहे थे। राजेंद्र-प्रसाद सकते की हालत में उनकी ओर देखकर सोच रहे थे, क्या यह सत्य है?

रानी मायावती साँस लेकर फिर कहने लगीं—"आपको क्या मालूम कि स्त्री-जाति का हृदय कैसा गंभीर होता है, और साथ ही कैसा छिछला। स्त्री अपने निजी मामले में, जहाँ उसका ख़ुद का संबंध है, सागर-सी गंभीर है। उसे जानना स्वयं ब्रह्मा के लिये मुश्किल है, फिर मनुष्य की बिसात ही क्या। स्त्री का हृदय केवल स्त्री जानती है। पुरुष तो मूर्ख है, उसे उँगलियों पर नचाना तो हमारे बाएँ हाथ का खेल है।"

यह कहकर वह फिर राजेंद्रप्रसाद की ओर भयंकर दृष्टि से देखने लगीं।

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"देवी, आपकी तबियत कुछ ख़राब गई है, आप थोड़ी देर आराम करें।"

रानी मायावती बड़ी ज़ोर से हँस पड़ीं। आज के पहले राजेंद्रप्रसाद क्या, किसी ने भी उनको इतनी ज़ोर से हँसते नहीं देखा था। उत्तेजना की चरम सीमा का नाम पागलपन है।

राजेंद्रप्रसाद भयभीत हो गए।

रानी मायावती ने कहा—"क्यों मिस्टर वर्मा, क्या आप डर गए? आप घबराइए नहीं, मैं अपने होश-हवास में हूँ। मैं जब पहले पागल नहीं हुई, तो अब क्या होऊँगी। हाँ, अगर कुछ दिन तक हमारे बाबा लखनऊ न आते, तो मैं ज़रूर पागल हो गई होती, मगर अब कोई डर नहीं है।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा—"मैं यह नहीं कहता कि आप पागल हो गई हैं, ईश्वर करे, ऐसा कभी न हो, लेकिन आप उत्तेजित हैं, थोड़ी देर आराम करें, तो ठीक है।"

रानी मायावती ने कहा—"हाँ, उत्तेजित ज़रूर हूँ। आपने ऐसी दुष्टा का नाम ही लिया है, जिससे मुझको ग़ुस्सा आ गया। मिस्टर वर्मा, क्या आप जानते हैं कि ट्रैवीलियन ने मेरा क्या सर्वनाश किया है? आप नहीं जानते। उसने राजा साहब को अपने मोह-जाल में फँसाकर मेरा घर बरबाद कर दिया है। उसकी समाज-सेवा केवल एक ढोंग है, उसकी लंबी-लंबी, मीठी बातें केवल सुनहला कपट-जाल है। उसने उसी जाल में फाँसकर मुझको पथ का भिखारी बना दिया। उसने हमारे वंश की मर्यादा के कुछ बहुमूल्य ज़ेवर मेरे पति द्वारा चोरी करा लिए, और फिर मेरे पति को भी मुझसे छीन लिया। केवल मैं उसका यह भेद जानती हूँ, और कोई नहीं जानता। मैंने उसका असली रूप पहचाना है।"

राजेंद्रप्रसाद ने पूछा—"तो क्या राजा प्रकाशेंद्र इतने नीच हो गए ?"

रानी मायावती ने दुःख के साथ कहा—"हाँ, वह मनुष्य से पशु हो गए हैं। मुझे यह स्वीकार करते हुए शर्म आती है, लेकिन सत्य छिपाया नहीं छिपता।"

राजेंद्रप्रसाद सोचने लगे, और मायावती भी अपनी चिंता में लीन हो गईं। इसी समय रानी किशोरकेसरी ने आकर कहा—"माया, अँधेरे में क्यों बैठी हो ?"

यह कहकर, उन्होंने स्विच दबाकर कमरे में आलोक प्रज्वलित कर दिया। रानी किशोरकेसरी ने फिर कहा—"डेविड को थिएटर-घर भेजा था कि वह छ सीट रिज़र्व करा आवे, लेकिन अभी तक नहीं आया, मुझे यह डर लगा रहता है कि कहीं बेचारा पकड़ न जाय।"

राजेंद्रप्रसाद मनोरमा के लिये व्याकुल होकर सोच रहे थे कि कहीं वह भी मिस ट्रैवीलियन के जाल में फँसकर अपने जीवन की शांति न खो बैठे, और रानी मायावती सोच रही थीं कि मिस ट्रैवीलियन को किस तरह पराजित करना चाहिए। दोनो चुप रहे।

रानी किशोरकेसरी ने कुछ तीव्र स्वर में पुकारा—"माया !"

रानी मायावती ने उनकी ओर मलिन नेत्रों से देखा, फिर धीरे-धीरे कहा—"क्या है मा !"

रानी किशोरीकेसरी ने किसी आशंका से भयभीत होकर पूछा—"क्या सोच रही है। मैंने तुझे कई बार मना किया कि तेरी हालत फ़िज़ूल की बातें सोचनेवाली नहीं है, लेकिन तू मानती नहीं।"

रानी मायावती ने कहा—"मैं क्या करूँ, मैं क्या जान-बूझकर सोचती हूँ। आज मिस्टर वर्मा ने बातों-बातों में उस रात्रीस

का नाम ले लिया। पहले तो मैंने अपने को बहुत सँभाला, लेकिन बाद में गुस्सा आ ही गया।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"मरने दो उस राक्षसी चुड़ैल को। मैं इसीलिये तुझे लेकर यहाँ आई हूँ, जिससे तेरा ध्यान बँटा रहे, और तू उसके बारे में न सोचे, लेकिन तू मेरी बात नहीं मानती!"

राजेंद्रप्रसाद ने धीमे स्वर में कहा—"मा, इसके लिये मैं उत्तर-दायी हूँ। मैंने अनजाने उसका नाम ले लिया। आज मुझे उसकी काली करतूतें मालूम हुईं।"

रानी किशोरकेसरी ने बैठते हुए कहा—"बेटा, संसार में जितने मनुष्य हैं, उतनी ही प्रकृति हैं।"

इसी समय डेविड और कुँवर नरेंद्रकिशोर ने आकर कहा—"छ सीट रिज़र्व करा आया हूँ।"

नरेंद्रकिशोर ने कहा—"मा, लंदन-शहर तो कलकत्ते से भी बड़ा है। मुझे यहाँ बड़ा अच्छा लगता है, यहीं रहूँगा। तुम और दीदी चली जाना, लेकिन मैं बाबा के साथ यहीं रहूँगा।"

रानी किशोरकेसरी ने हँसकर कहा—"ठीक है। मालूम होता है, तुम्हारे बाबा का जादू तुम पर चल गया है, जो तुमने मा के स्नेह को भी भुला दिया।"

राजेंद्रप्रसाद और मायावती हँसने लगे; नरेंद्र अप्रतिभ होकर उनकी ओर देखने लगा।

(१२)

राजेश्वरी ने तीव्र कंठ से कहा—"तुम्हें हमारी या मन्नी की कुछ फ़िक्र नहीं है ?"

राधारमण ने विरक्त होकर कहा—"तुम हमेशा आजकल मुझे तंग करती हो । बात क्या है ?"

राजेश्वरी के नेत्रों में आँसू भर आए । रमणी के आँसू विश्व-विजयी हैं, इन्हें देखकर पुरुषों का ज्ञान खो जाता है । इन्होंने महाभारत-जैसा महायुद्ध रचाकर भारत की सभ्यता का नाश कराया था ।

राधारमण ने घबराकर कहा—"आज यह नई बात कैसी ? ऐसी कौन-सी विपत्ति आ गई है, जिससे तुम इतनी अधीर होती हो ?"

राजेश्वरी ने आँसुओं को पोंछते हुए कहा—"आज दोपहर को डॉक्टर आनंदीप्रसाद आए थे, उन्होंने कहा—'चाचीजी, आप मन्नी का इलाज कीजिए, नहीं तो फिर पछताना पड़ेगा । उसको कई दिनों से बुखार आता है । अगर ऐसी हालत रही, तो वह जीर्ण हो जायगा, फिर मुश्किल है ।' मैं सुनकर सन्न रह गई । मैंने ग़ौर कर देखा, तो मुझे भी यही मालूम होता है । वह दिन-पर-दिन दुबली और कमज़ोर होती जाती है । अगर कहीं उसे तपेदिक़ हो गया, तो फिर मैं क्या करूँगी ?"

राजेश्वरी भावी दुःख से विकल हो गई, उसके आँसू बाहर निकलने का प्रयत्न करने लगे ।

राधारमण ने हँसकर कहा—"यह ख़ूब रहा । तपेदिक़ क्या यों

ही होता है । इधर कुछ बुख़ार वग़ैरह आता होगा । मलेरिया के दिन आ गए हैं । दो-चार दिन में सब ठीक हो जायगा ।"

राजेश्वरी ने कहा—"मुझे तो मालूम होता है कि वह सख़्त बीमार है । वह अपनी बीमारी कहती नहीं । मैं उसको जानती हूँ । वह मर जायगी, लेकिन अपने मन का भेद किसी को नहीं देगी । ऐसी निकम्मी लड़की तो मैंने आज तक नहीं देखी ।"

इसी समय मनोरमा हँसती हुई वहाँ आई । राजेश्वरी के पास जाकर पूछा—"क्या है अम्मा ?"

राजेश्वरी ने कुछ उत्तर नहीं दिया । वह उसका हाथ पकड़कर देखने लगी । फिर राधारमण से कहा—"लो, मेरी बात नहीं मानते, तो तुम्हीं देखो, इसके बुख़ार है या नहीं । यह राक्षसी हँसती है । जानते हो क्यों ? मुझे धोखा देने के लिये ।"

मनोरमा चकित होकर राजेश्वरी की ओर देखने लगी ।

उसने भय-विह्वल कंठ से पूछा—"क्या हुआ, मैंने क्या किया है ?"

बाबू राधारमण मनोरमा की नाड़ी-परीक्षा करने लगे । सत्य ही मनोरमा का शरीर ज्वर से जल रहा था ।

बाबू राधारमण ने पूछा—"मनी, तुमको बुख़ार कब से आता है ?"

अब सब रहस्य मनोरमा की समझ में आ गया । उसने सिर नत कर कहा—"यही दो-चार दिनों से कभी-कभी आ जाता है, लेकिन आज तो मुझे कोई तकलीफ़ नहीं मालूम होती ।"

राजेश्वरी ने तीव्र स्वर में कहा—"तुम्हें तकलीफ़ तो तब होगी, जब तुम पलँग पर पड़ जाओगी । मनी, तुम्हें मैं अच्छी तरह पहचानती हूँ । अगर आनंदीप्रसाद ने आज मुझसे न कहा होता,

तो मुझे क्यों मालूम होता । यह भी कोई बात है कि आदमी अपनी बीमारी भी किसी से न कहे।"

मनोरमा ने हँसकर कहा—"दो-चार दिन में अपने आप ठीक हो जायगा। ऐसी घबराने की क्या बात है।"

राजेश्वरी ने बिगड़कर कहा—"हो जायगा। बस, अपने आप अच्छा हो जायगा। कल से कॉलेज मत जाना। पढ़ लिया, बस हो चुका । एक तो बुख़ार आवे, दूसरे पढ़ाई में मग़ज़ पच्ची करना।"

बाबू राधारमण ने कहा—"इतना घबराने की क्या ज़रूरत है, दो-एक दिन में अच्छी हो जायगी। दुनिया में क्या किसी को बुख़ार आता नहीं, और क्या जिसको बुख़ार आता है, उसको तपेदिक़ हो जाता है। कल डॉक्टर दास को बुलाकर इलाज शुरू कर देंगे।"

यह कहकर उन्होंने मनोरमा को आराम करने का आदेश दिया। राजेश्वरी मनोरमा को घसीटती हुई उसके कमरे में ले गई, और पलँग पर उसे लिटाकर उसका सिर दाबने लगी। मनोरमा ने बहुत मना किया, लेकिन उसने कुछ सुना ही नहीं।

अंत में मनोरमा ने विरक्त होकर कहा—"अम्मा, अगर तुम नहीं मानोगी, तो फिर मैं उठकर हवा में घूमूँगी। तुम मेरा सिर मत दाबो, मुझे कोई तकलीफ़ नहीं है।"

राजेश्वरी ने भय से उसका सिर दाबना बंद कर दिया।

मनोरमा ने कहा—"अम्मा, तुम मेरी ज़रा-सी बीमारी से तो इतना परेशान हो जाती हो, लेकिन अगर मैं कहीं मर जाऊँ, तो तुम..."

राजेश्वरी ने उसके मुँह को बंद कर दिया—"मन्नी, अगर ऐसी बात तुमने फिर कभी कही, तो तुम्हारे हक़ में अच्छा न होगा।"

मनोरमा हँसने लगी।

राजेश्वरी ने कहा—"तुमको मुझे रुलाकर हँसी आती है। मन्नी, तुम नहीं जानतीं कि मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ।"

कहते-कहते राजेश्वरी के नेत्रों में पानी भर आया।

मनोरमा ने अपने दोनो हाथ उसके गले में डालकर प्रेम से कहा—"तुम रोने लगीं। वाह अभी तो मैं ज़िंदा हूँ।"

राजेश्वरी ने उसको अपने हृदय से लगाते हुए कहा—"मन्नी।"

इस छोटे-से आह्वान में प्रेम का एक समुद्र छिपा हुआ था, जो मनोरमा को प्लावित कर रहा था। मनोरमा भी उसके हृदय से लिपट गई, और जवाब दिया—"अम्मा!" दोनो एक दूसरे के हृदय से लगी हुई पारस्परिक प्रेम की थाह ले रही थीं। बाहर पद-ध्वनि सुनकर मनोरमा ने राजेश्वरी को छोड़ दिया, और बाहर की तरफ़ देखने लगी। दूसरे ही क्षण हँसमुख मिस ट्रैवीलियन ने प्रवेश किया।

मनोरमा ने अपने मन का विरक्त भाव छिपाते हुए कहा—"आइए, तशरीफ़ लाइए। आज आपने बड़ी मेहरबानी की, जो यहाँ तक आने का कष्ट किया।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसते हुए कहा—"प्यासा कुएँ के पास जाता है, न कि कुआँ प्यासे के पास।"

राजेश्वरी भी मिस ट्रैवीलियन के आने से संतुष्ट न हुई थी। न-मालूम क्यों राजेश्वरी को उससे द्वेष था। वह उठकर जाने लगी।

मिस ट्रैवीलियन ने हँसकर कहा—"लीजिए, मैं आई नहीं कि अम्माजी चल दीं।"

राजेश्वरी ने अपनी विरक्ति छिपाते हुए कहा—"आज मन्नी को बुख़ार आ गया है, इसलिये उसके लिये नींबू का शरबत बनाने जाती हूँ, अगर पित्त का प्रकोप हो, तो फ़ायदा होगा।"

मिस ट्रैवीलियन ने घबराहट के साथ मनोरमा का हाथ छूते हुए कहा—"कब बुख़ार आया? अब भी तेज़ बुख़ार है। किसका इलाज होता है?"

राजेश्वरी ने जवाब दिया—"मुझे तो आज मालूम हुआ है, लेकिन बुख़ार कई दिनों से आता है। मन्नी ने बतलाया नहीं।"

मिस ट्रैवीलियन ने प्रेम-भाव के साथ कहा—"क्यों नहीं बतलाया। यह भी कोई शर्म की बात है। यही तो भारत में कमी है। यहाँ की स्त्रियाँ अपनी पीड़ा कहना नहीं जानतीं।"

मनोरमा ने मलिन हँसी के साथ कहा—"ऐसी कोई ज़्यादा बीमारी होती, तो कहती। थोड़ा-सा बुख़ार आया, उसी के लिये तोबा-तिल्ला मचा देना कौन अच्छी बात है। आजकल मलेरिया के दिन हैं, थोड़ा-बहुत बुख़ार आना अच्छा होता है। साल-भर का विकार निकल जाता है।"

मिस ट्रैवीलियन ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"यह तो ठीक है। दो-एक दिन में बेशक अच्छा हो जायगा। मैं आज आई थी यह कहने के लिये कि इस शनिवार को हमारी अंतरंग सभा की बैठक है, क्या आप उसमें पधारकर हमें कृतज्ञ करेंगी?"

राजेश्वरी ने विरक्त होकर कहा—"अभी मन्नी का जाना कहीं नहीं हो सकता। वह अपनी बीमारी से बहुत कमज़ोर हो गई है।"

मिस ट्रैवीलियन कभी हारनेवाली नहीं थी। उसने मुस्किराकर कहा—"मैं यह नहीं कहती कि तबियत ख़राब होने की हालत में आवें। हाँ, अगर तबियत साफ़ हो जाय, तो आने की मेहरबानी करें। आप जानती हैं कि ऐसे कामों से आदमी का मन बहल जाता है।"

राजेश्वरी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

मनोरमा ने बात टालने की ग़रज़ से कहा—"हाँ-हाँ, मैं ज़रूर हाज़िर होऊँगी। तबियत दो-एक दिन में अपने आप अच्छी हो जायगी। अम्मा फ़िज़ूल घबराती हैं, हालाँकि घबराने की कोई ख़ास बात नहीं है।"

राजेश्वरी ने सक्रोध कहा—"हाँ-हाँ, अम्मा बेवक़ूफ़ हैं, तुम्हारी कमज़ोरी क्या मैं देखती नहीं। ऐसी कमज़ोरी में बुख़ार आना क्या अच्छा होता है?"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"हाँ, कमज़ोर तो आप बहुत हो गई हैं। इसका क्या सबब है?"

मनोरमा ने म्लान हँसी से कहा—"इसका सबब क्या है। वाह, ज़बरदस्ती कमज़ोर चाहे भले बना दो।"

मनोरमा ने हँसने का प्रयत्न किया।

मिस ट्रैवीलियन ने उठते हुए कहा—"तो मुझे अब आज्ञा मिलना चाहिए। यहाँ से मैं मिसेज़ प्रसाद यानी कुसुमलता को भी निमंत्रण देने जाऊँगी। वह मीटिंग ज़रूरी है, और उसमें आप लोगों के सम्मिलित होने से हमारा बहुत कल्याण होगा। नए साल के लिये, जो ऑक्टोबर से शुरू होता है, पदाधिकारी चुने जायँगे। आपसे प्रार्थना यह है कि अगर तबियत अच्छी हो जाय, तो ज़रूर आने की तकलीफ़ करना।"

मनोरमा ने सहास्य उत्तर दिया—"ज़रूर, अगर तबियत बिलकुल ख़राब न रही, तो ज़रूर आऊँगी।"

मिस ट्रैवीलियन राजेश्वरी को अभिवादन करके चली गई।

राजेश्वरी ने कहा—"चलो, किसी तरह पिंड छूटा।"

राजेश्वरी और मनोरमा, दोनो हँसने लगीं।

---

(१३)

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कुसुमलता को समझाने के लिये बहुत यत्न किया, लेकिन वह सफल नहीं हुए। उनके लिये कुसुमलता एक न सुलझनेवाली प्रहेलिका ही रही। वह बराबर यह लक्ष्य कर रहे थे कि वह इस विवाह से संतुष्ट नहीं है, और वह इस भाव को दमन करने का भगीरथ प्रयत्न करती है। उसका व्यवहार उनके प्रति सम्मान-युक्त था, और किसी हद तक प्रेममय भी था। लेकिन उसमें वह भाव, बेतकल्लुफ़ी या आंतरिक प्रेम नहीं था, जो दांपत्य जीवन में होता है। उसमें मायामय बंधन का पूर्ण अभाव था, जो स्त्री में होता है, जिससे पुरुष को आनंद-अनुभव होता है, और उसके प्रति एक आकर्षण होता है, जो निरंतर उसको अपनी ओर घसीटा करता है। वह एक नीरसता और विरक्ति का भाव उसके हरएक काम में देखा करते थे, लेकिन कुछ न कहकर वह वेदना अपने मन में ही गुप्त रखते। कभी-कभी वह सोचते कि कुसुमलता क्यों उनसे असंतुष्ट और विरक्त रहती है, लेकिन इसका उत्तर उनको नहीं मिलता था। कभी-कभी उनको अचानक याद पड़ जाता कि मेरा वैवाहिक जीवन अभिशापित है, इसलिये कुसुमलता इतनी विरक्त रहती है। उस वक्त उनके सामने उनके पिता मुंशी गंगा-प्रसाद और उनकी माता त्रिवेणी का दुखी चेहरा आ जाता, और उनके जीवन की शांति चिंता-सागर में डूब जाती।

रात्रि के दो बज गए थे। कुसुमलता निद्रा में मग्न स्वप्नों के लोक में आज़ादी के साथ भ्रमण कर रही थी। वह देख रही थी

कि वह एक अद्भुत, अनजान लोक में आ गई है, जहाँ सभी वस्तुएँ अपरिचित हैं। वह आश्चर्य में डूबी हुई अपना रास्ता खोज रही है, लेकिन उसे कहीं मार्ग नहीं मिलता। वह जिस किसी से पूछती है, वही उसकी ओर क्रोधमय दृष्टि से देखता है, और बिना कुछ उत्तर दिए दूसरे मार्ग चला जाता है। कुसुमलता की घबराहट बढ़ रही थी, और वह तेज़ी से उस मायालोक के बाहर निकलने का प्रयत्न करने लगी। वह दौड़ते-दौड़ते थक गई, और प्यास से विह्वल होकर गिर पड़ी। उसकी जिह्वा बाहर निकल आई, और प्यास से कंठावरोध हो रहा था। वह चिल्लाने का प्रयत्न करने लगी, लेकिन उसका कंठ खुलता ही न था। वह घबराकर अपने हाथ-पैर पटकने लगी। प्यास की यंत्रणा से उसके प्राण शरीर के बाहर निकलने का उपक्रम कर रहे थे। ऐसी हालत में किसी ने शीतल जल की बूँदें उसके खुले हुए मुँह में डाल दीं। उनसे उसे शांति मिली, और वह आँखें खोलकर उस व्यक्ति की ओर देखने लगी। वह व्यक्ति राजेंद्रप्रसाद थे। उन्हें देखते ही वह उठने लगी, लेकिन उससे उठा नहीं गया। राजेंद्रप्रसाद के हाथ में एक शीशी थी, जिसमें वह अमृत भरा हुआ था, जिसकी दो बूँदों ने उसके मृत जीवन में नई जान डाल दी थी। उसके नेत्र उस शीशी की ओर स्थिर हो गए। उसने बोलने का प्रयत्न किया, लेकिन बोला नहीं गया। वह इशारों से उस शीशी का जल माँगने लगी। राजेंद्रप्रसाद ने वह हाथ, जिसमें शीशी थी, ऊँचा उठा लिया। उसके लेने के लिये उसने अपना हाथ ऊँचा उठाया, लेकिन राजेंद्रप्रसाद का भी हाथ ऊँचा उठ गया। वह ज्यों-ज्यों अपना हाथ ऊँचा करती, त्यों-त्यों उनका भी शीशीवाला हाथ ऊँचा होता जाता था। इसी समय उस जगह मनोरमा आ गई। उसे देखकर राजेंद्रप्रसाद ने वह शीशी उसे दे दी। मनोरमा

उसे पी गई, और कुसुमलता से कहा—"बहन, यह जल तो मैंने अपने लिये मँगाया था, इसकी अधिकारिणी मैं हूँ।" कुसुमलता की प्यास फिर बढ़ गई, और उसका दम घुटने लगा। मनोरमा पैशाचिक हँसी से हँसने लगी। कुसुमलता फिर सहायता के लिये कातर स्वर से प्रार्थना करने लगी। मनोरमा ने कहा—"बहन, तुम्हारे लिये मरना श्रेष्ठ है, तुम मर जाओ, नहीं तो अपना जीवन तो दुःखित करोगी ही, साथ में मेरा भी नष्ट कर दोगी।" कुसुमलता की घिग्घी बँध गई। वह तड़पने लगी।

इसी समय उसकी आँख घबराहट से खुल गई। थोड़ी देर तक उसे कुछ ख़याल न रहा कि वह कहाँ है। कमरा क्षीण विद्युत् के प्रकाश से धूमिल-वर्ण का था, और बिजली का पंखा अविराम गति से चल रहा था। वह सकते की हालत में लेटी हुई थी। डॉक्टर आनंदीप्रसाद पास ही गहरी नींद में सोए हुए थे।

कुसुमलता के हृदय की धड़कन इतने ज़ोर से हो रही थी कि वह उसकी आवाज़ सुन रही थी। उसका शरीर पसीने से तर था, और मस्तक तो बिलकुल भीगा हुआ था। उसके हाथ-पैर बिलकुल निःशक्त और निर्जीव थे। वह भय-विह्वल दृष्टि से चारो ओर देखने लगी, क्या यह उसी का कमरा है? वह विह्वल दृष्टि से चारो ओर देखनी लगी, और जब उसे विश्वास हुआ कि वह अपने कमरे में अपनी चारपाई पर लेटी है, तब उसे असीम संतोष हुआ। उसने शांति के साथ कहा—"यह तो स्वप्न था।"

कमरे में गर्मी बिलकुल नहीं थी, लेकिन उसके मन की घबराहट अभी तक नहीं गई थी। कृत्रिम हवा से उसका मन नहीं भरता था। प्राकृतिक मुक्त पवन के लिये उसका मन छटपटाने लगा। उसने डॉक्टर आनंदीप्रसाद को गहरी नींद सोते देखा, और एक ठंडी, गहरी साँस ली। दूसरे क्षण वह कमरे के बाहर बरामदे में

आराम-कुर्सी पर आकर बैठ गई। दशमी का चंद्रमा क्षितिज के कोने से निकलकर उसकी विषाद-पूर्ण कालिमा का मिलान अपने हृदय की कालिमा से करने लगा।

कुसुमलता कहने लगी—"कितना भयंकर स्वप्न था। मेरी नस-नस अभी तक डर से काँप रही है। उफ़्! वह कितना भीषण था। अगर कहीं सत्य होता, तो क्या होता। उफ़्, प्यास से मेरा अभी तक मन व्याकुल है।"

यह कह उसने उठकर पानी पिया, और फिर उसी आराम-कुर्सी पर बैठकर सोचने लगी। शीतल जल उसके बिखरे हुए विचारों को एकत्र करने लगा। वह कहने लगी—"ख़ैर, उनके दर्शन तो हुए। मुझे वह दिखाई तो दिए। यह सुख कौन कम है। मैं इतनी व्याकुल थी, लेकिन फिर भी सुखी थी। उनके मुख पर कैसा करुणा का भाव था। वह तो मेरे मुख में अमृत की बूँदें छोड़ रहे थे, लेकिन दुष्ट मनोरमा ने उन्हें छोड़ने नहीं दिया। वह अमृत की शीशी ख़ुद लेकर पी गई, और क्या कहा, कुछ याद नहीं पड़ता। हाँ, यह कहा—'बहन, यह तो मेरी वस्तु है।' वास्तव में वह उसका प्राप्य है। उसके पाने की इच्छा करना मेरी अनधिकार चेष्टा है। मनोरमा मुझे स्वप्न में भी सुख से उन्हें देखने नहीं देती।

"मैं विवाहिता हूँ, उनके बारे में सोचना पाप है, लेकिन मेरे ख़याल उन्हीं की उधेड़-बुन में लगे रहते हैं। जितना उन्हें अपने हृदय से निकालने का यत्न करती हूँ, उतना ही वह मेरे हृदय में घुसकर अधिकार जमाते हैं। उन्होंने मुझे बिलकुल मनुष्य से पशु बना दिया है। मैं क्या हो गई हूँ, स्वयं हैरान हूँ।

"मेरे स्वामी तो बिलकुल देवता हैं। मैं जानती हूँ कि अपना कर्तव्य उनके प्रति पूरा नहीं करती, शायद वह भी इसे अनुभव

करते हैं, लेकिन कुछ ख़याल नहीं करते। मैं उन्हें जा-बेजा भी कह देती हूँ, लेकिन मेरी बातों का जवाब हमेशा हँसकर देते हैं। कितने गंभीर हैं, कितने महत् हैं, और कितने सहनशील हैं। क्रोध तो उन्हें कभी आता ही नहीं। विरक्त होना तो जानते ही नहीं। मुझे संतुष्ट और प्रसन्न करने के लिये सदैव चिंतित रहते हैं, लेकिन मैं क्या करूँ। मैं जान-बूझकर उनसे ग़ुस्सा नहीं होती, और फिर भी कभी अनख उठती हूँ, लेकिन वह देवता की तरह कुछ ख़याल नहीं करते। मैं कभी-कभी उनकी अवहेलना कर देती हूँ, लेकिन देखकर भी कुछ नहीं देखते। उनके स्वभाव में, उनके प्रेम में, उनके विचार में रत्ती-भर अंतर ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलता। ऐसे देवता को पाकर मैं उन्हें भी सुखी नहीं कर सकी। मेरा अभाग्य !

"पहला महीना ख़त्म हुआ। उन्होंने सारी तनख़्वाह लाकर मेरे हाथ में दे दी, और कहा—'बस, मेरी यह धन-संपत्ति है। इसकी अधिकारिणी तुम हो।' मैंने लेने से बहुत इनकार किया, लेकिन उन्होंने भी अपने पास नहीं रक्खी। दो दिन वे रुपए मेज़ के 'ड्राअर' में पड़े रहे, लेकिन उन्होंने नहीं छुए। आख़िर मुझे ही रखने पड़े। उन्हें केवल दो रोटी से मतलब है, और खद्दर के पाँच-छ कपड़ों से। बस, यही उनका ख़र्च है। वह कितने सादे हैं, और कितने सरल। शिशु से भी अधिक सरल हैं, पवित्र हैं, और आडंबर-हीन। उसका जीवन देवता का जीवन है। परंतु मैं अभागिनी उन्हें फिर भी सुखी नहीं कर पाई, और उनका सुख भी हरण कर लिया। मेरा अभाग्य और किसी का अभिशाप।

"वह मेरी ओर हमेशा ध्यान से देखते रहते हैं, जैसे मेरे मुख के भावों से मेरे हृदय के पढ़ने का यत्न करते हों। वास्तव में मैं उनके लिये एक पहेली हूँ। मैं यह सतत प्रयत्न करती हूँ कि उन्हें दुखी न होने दूँ, उन्हें अपने मन की उदासीनता ज़ाहिर न होने दूँ,

लेकिन मैं क्या करूँ, अपने आप हो जाता है। मैं अपने स्वभाव पर स्वयं चकित हूँ, लेकिन फिर भी असहाय हूँ।

"मनोरमा को देखो, वह अपने पति को लेकर कितनी सुखी है, और उनके पति से भी श्रेष्ठ मेरा पति है, लेकिन मेरा जीवन देखो, न तो मैं सुखी हूँ, और न वह। वह भी अपने मन की चिंता बाहर प्रकट होने नहीं देते, और मैं भी अपनी पीड़ा आप लेकर बैठी हूँ। वह मेरे लिये चिंतित हैं, और मैं राजेंद्र के लिये। अरे, उनका नाम आज कैसे निकल गया! कोई सुन ले, तो क्या हो?

"दूसरे के लिये चिंता करना क्या मेरा विहित धर्म है? मेरा धर्म क्या है? अपने पति को संतुष्ट करना। मैंने कई बार यह प्रतिज्ञा की है कि मैं उनका ध्यान छोड़कर अपने पति को संतुष्ट करूँगी, लेकिन मेरी प्रतिज्ञा कभी पूर्ण नहीं होने पाती। मेरा मन अपने आप उनके पास चला जाता है, और फिर मेरे हाथ में कुछ नहीं रहता।

"क्या उनको मेरी याद भी आती होगी? वह इँगलैंड में बैठे हुए अपनी मनोरमा की याद में निमग्न होंगे। उन्हें क्या मालूम कि मैं उनको कितना प्यार करती हूँ। अपने कर्तव्य से, अपने प्राण से अधिक। और जितना मनोरमा उन्हें प्यार करती है, उससे भी ज़्यादा मैं उन्हें प्यार करती हूँ, लेकिन उन्हें क्या मालूम। बंबई में मैं उनको बिदा करने गई थी। ताजमहल-होटल के एक कमरे में, जब वह मनोरमा से बिदा ले चुके थे, मैं उन्हें हार पहनाने गई थी। उस समय उन्होंने क्या कहा था, कुछ याद नहीं पड़ता। हाँ, यह कहा था कि 'स्त्री का परम धर्म है अपने पति को संतुष्ट करना।' यह उन्होंने क्यों कहा था? क्या मनोरमा ने मेरे मन का भेद उनसे कह दिया। कौन जाने? अगर उसने कहा नहीं, तो फिर उन्होंने यह क्यों कहा? लेकिन बड़े हमेशा छोटों को यही

उपदेश देते हैं। मुमकिन है, यह उनका साधारण रूप में उपदेश ही हो। लेकिन यह उपदेश भी तो अर्थ-पूर्ण है। वास्तव में मेरा धर्म अपने पति को संतुष्ट करना है। वह मेरे देवता हैं, मैं उनका उपदेश कभी नहीं टालूँगी। आज से मैं अपने पति को संतुष्ट करने की कोशिश करूँगी।"

कुसुमलता ने उठकर फिर पानी पिया। जल ने पहुँचकर उसके विचारों को दृढ़ता दी। वह फिर कुर्सी पर बैठ गई। चंद्रमा ऊँचा होकर उसकी ओर वक्र दृष्टि से देखकर उपहास करने लगा। कुसुमलता फिर सोचने लगी—"बाबूजी ने मुझे सुखी करने का आयोजन किया, इसीलिये समाज के विरुद्ध होकर उन्होंने मेरा विवाह किया, लेकिन मैं क्या सुखी हो गई ? उन्होंने देवता-जैसा पति मेरे लिये ढूँढ़ निकाला, लेकिन मैं क्या उनको सुखी कर पाई ? मैं नहीं जानती कि कैसा भाग्य लेकर आई हूँ। हरएक, जिसका संबंध मुझसे है, मुझसे दुःख ही पाता है। एक दिन था, जब मैं भाग्य नहीं मानती थी, ईश्वर नहीं मानती थी, लेकिन समय ने मुझसे सब मनवा लिया। क्या वास्तव में भगवान् इस संसार में हैं ? होंगे, तभी तो दुनिया उनके लिये पागल है। वह भी रोज़ सबेरे-शाम उनका पूजन करते हैं। मैंने जब उनसे पूछा कि क्या इस जगत् में भगवान् हैं, तो वह मुस्किरा दिए, और कहा—'शक्ति का नाम भगवान् है। जो शक्ति संसार में व्याप्त है, वह भगवान् है। जिस शक्ति से पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है, जिस शक्ति से चर-अचर अपने-अपने स्वभावानुसार काम करते हैं, जिस शक्ति से ब्रह्मांड की प्रत्येक वस्तु अपने काम में लगी है, उस शक्ति का नाम ईश्वर है, ब्रह्मांड के शक्ति-समूह का नाम भगवान् है।' बिलकुल सत्य है। तभी से मैं भगवान् पर विश्वास करने लगी हूँ, और स्वयं विश्वास करने को मन चाहता है। मुमकिन है, यह

मेरी कमज़ोरी हो, मेरी मानसिक दुर्बलता हो, लेकिन मैं अब ईश्वर-वादिनी हूँ। देश और काल के अनुसार विचारों में परिवर्तन होता है। संसर्ग से विचार बदल जाते हैं। वह ईश्वरवादी हैं, मुझे भी होना पड़ा।"

इसी समय डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"कौन? तुम! यहाँ खुली हवा में क्यों बैठी हो? इतनी रात तक भी क्या तुम नहीं सोई?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद के स्वर में कौतूहल की झलक थी।

कुसुमलता की विचार-धारा रुक गई। उसने चौंककर उनकी ओर देखा। उसने जवाब दिया—"नहीं, मैं सो गई थी, अभी थोड़ी देर पहले एक डरावना स्वप्न देखकर जाग पड़ी। अंदर गर्मी में तबियत घबराती थी, इसलिये बाहर आकर बैठ गई।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद एक दूसरी कुरसी पर बैठ गए। प्रकृति भीषण निद्रा में निमग्न थी। वह कुर्सी पर बैठकर ध्यान-पूर्वक कुसुमलता की ओर देखने लगे। उसने अपनी दृष्टि नीची कर ली। चंद्रमा हँसने लगा, और अपनी धवल मयूखें उसके मुख पर लोटने लगा।

कुसुमलता ने धीमे कंठ से कहा—"आप मुझे इस तरह क्यों देखा करते हैं?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने अपनी दृष्टि फेर ली, और हँसते हुए चंद्रमा की ओर देखने लगे।

कुसुमलता ने फिर पूछा—"कहिए, मुझे आप अक्सर इस तरह क्यों देखा करते हैं? जब मैं आपको इस तरह देखती हूँ, तो मुझे बहुत भय मालूम होता है। आज आपको इसका उत्तर देना पड़ेगा।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद केवल एक गहरी साँस लेकर उसकी ओर देखने लगे।

कुसुमलता ने तीसरी बार पूछा—"क्या आप मुझे नहीं बतलाएँगे ? आप मुझसे कपट कब तक रक्खेंगे ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने बड़े ही दुःख-पूर्ण स्वर से कहा—"जब तक आप रक्खेंगी ?"

कुसुमलता विस्फारित नेत्रों से उनकी ओर देखने लगी।

उसने अपने मन का भाव छिपाते हुए कहा—"इसका अर्थ यह है कि आप मुझ पर संदेह करते हैं।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने चकित होकर कहा—"आप पर संदेह ! कैसा संदेह ?"

कुसुमलता कहते-कहते रुक गई। उसके शब्द उसके तालु में चिपक गए।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने फिर कहा—"संदेह मैंने आप पर कभी नहीं किया। मेरा आशय उस संदेह से है, जो अक्सर ऐसे मानी में व्यवहृत होता है।"

कुसुमलता ने कहा—"फिर कैसा संदेह करते हैं ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद कहने लगे—"आज जब आपने बात छेड़ दी है, और ज़िद करती हैं, तो मेरा कर्तव्य है कि मैं उसका जवाब दूँ। हाँ, मैं संदेह करता हूँ, लेकिन आप पर नहीं। आप दुग्ध की तरह निष्कलंक हैं, यह मेरा ध्रुव निश्चय है, लेकिन मैं संदेह यह अवश्य करता हूँ कि आप सुखी नहीं हैं। मुझमें किसी स्त्री को प्रसन्न करने का गुण है, इसमें मुझे संदेह है। इसी संदेह से मैंने अब तक विवाह नहीं किया था, लेकिन न-जाने कैसे मेरी इच्छा के प्रतिकूल यह विवाह आपके साथ हो गया। आज आपको अपने जीवन का पिछला इतिहास बताता हूँ, जब मैंने एम्० ए० पास किया था, तो पिताजी ने और अम्मा ने विवाह करने का आदेश दिया, नहीं, ज़िद की, लेकिन मैंने उनके अनुनय-विनय पर कुछ

ध्यान नहीं दिया। मैं अपने पढ़ने की धुन में मस्त था। नाम कमाना चाहता था, इसलिये एक दिन जब उन्होंने ज़बरदस्ती मेरा ब्याह कर देने का विचार किया, तो मैं घर से भागकर इलाहाबाद चला गया, और वहाँ से इँगलैंड। वापस घर नहीं आया। जब मैं जहाज़ पर बंबई से बैठ रहा था, तो एक बार मेरे मन में यह विचार आया कि वापस लौट जाऊँ, और विवाह करके माता-पिता को संतुष्ट करूँ। अगर पढ़ना भाग्य में बदा है, तो फिर पढ़ लूँगा। लेकिन मेरे मित्र ने, जो मुझे सारा ख़र्च देकर इँगलैंड लिए जा रहे थे, जाने नहीं दिया। मैं वह संदेह का काँटा अपने हृदय में चुभाए चला गया। नतीजा यह हुआ कि थोड़े ही दिनों में मेरी मा यानी आपकी सास रोते-रोते मर गईं। मेरे पिताजी, जो पहले से ही असंतुष्ट थे, इस दुःख से मेरे शत्रु हो गए, और मुझे शाप दिया कि विवाह से मुझे कभी सुख प्राप्त न होगा। उन्होंने मुझे मेरी मा के मरने की भी ख़बर नहीं दी, और जब मैं वापस आया, तो उनको क़रीब-क़रीब मौत के नज़दीक पाया। हालाँकि मैंने उनकी बड़ी सेवा की, लेकिन उनकी अंतरात्मा मुझसे प्रसन्न नहीं हुई। उनका शाप मेरे जीवन को दुखी बनावेगा, इसमें मुझे तिल-मात्र संदेह न था, क्योंकि अव्वल तो वह मेरे पिता थे, और दूसरे उनका जीवन एक तपस्वी का जीवन था। माता-पिता के निकले हुए उद्गार कभी झूठे नहीं होते।" डॉक्टर आनंदीप्रसाद चुप हो गए। अतीत की स्मृति ने उन्हें व्याकुल कर दिया। कुसुमलता उनकी ओर ध्यान-पूर्वक देख रही थी।

कुछ देर बाद वह फिर कहने लगे—"मेरे मन में तब से यह संदेह जाग्रत् है कि मेरा दांपत्य जीवन सुखी न रहेगा। इसमें न कोई दोष आपका है, और न मेरा। घटना-स्रोत कहो या भाग्य, वही उत्तरदायी है। मैंने अपनी संपूर्ण विवेक-शक्ति से

इस प्रश्न को हल करने की कोशिश और परिश्रम किया है, लेकिन इसका कोई उत्तर नहीं मिलता। जब मैं आपकी ओर देखता हूँ, तब इसी प्रश्न का उत्तर ढूँढ़ने के लिये। पिता के अभिशाप से मैं खेल रहा हूँ। विवाह के वक्त कुछ यह भी ख़याल आया था कि पिता के अभिशाप को पूर्ण होने दो, तब मेरी आत्मा का कल्याण होगा, नहीं तो शाप भोगने के लिये दूसरा जन्म लेना पड़ेगा। इस जीवन का कर्म-बंधन इसी जीवन में नष्ट कर डालना चाहिए। देवी, मैंने भोग की इच्छा से यह विवाह नहीं किया। अपनी आत्मा का मैल साफ़ करने के लिये किया है। मैं आपसे प्रेम पाने का अभिलाषी नहीं हूँ, बल्कि उपेक्षा और घृणा पाने के लिये लालायित हूँ, इसलिये कि इसमें मेरी निवृत्ति है, मेरी मुक्ति है। आप सोचती होंगी कि स्वार्थी जीव हूँ, अपने कल्याण के लिये आपको दुखी करता हूँ, परंतु आपको मैं बिलकुल दुखी नहीं करना चाहता, आपको संतुष्ट करने में ही मेरा कल्याण है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद फिर चुप हो गए। कुसुमलता अवाक् होकर उनकी ओर देख रही थी, और मन में प्रश्न कर रही थी कि यह कौन हैं? मनुष्य या देवता?

डॉक्टर आनंदीप्रसाद फिर कहने लगे—"मनुष्य को स्त्री का प्रेम बड़े भाग्य से मिलता है। स्त्री का प्रेम ईश्वर का मनोरम आशीर्वाद है। बिना भाग्य या पूर्व-संचित कर्म के मिलना असंभव है। यह मेरा विचार है, मुमकिन है, आप इससे सहमत न हों। परंतु मैं कट्टर हिंदू हूँ, भाग्य और ईश्वर में विश्वास करता हूँ। आप ही देखें, मनोरमा और राजेंद्र बाबू एक दूसरे के प्रेम में विभोर हैं, ओत-प्रोत हैं। यह क्यों? उनके पूर्व-संचित कर्म ऐसे हैं, उन्हें माता-पिता का आशीर्वाद प्राप्त है। उसकी मा यद्यपि सौतेली हैं, लेकिन सगी मा से भी ज़्यादा प्यार करती हैं। यह क्यों?

उसके पूर्व-संचित कर्म हैं, जो उसे सुखी होने में सहायता देते हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद फिर चुप हो गए। कुसुमलता के आगे विस्मृत राजेंद्रप्रसाद की मूर्ति फिर सजग हो गई।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद फिर कहने लगे—"आपके पिता ने मेरे साथ विवाह किया। यह जानकर कि वह आपको सुखी कर रहे हैं, लेकिन क्या वास्तव में आप सुखी हैं? नहीं। जिस तरह मैं अपनी पीड़ा में व्याकुल हूँ, उसी तरह आप भी किसी वेदना में लीन रहती हैं। वह कौन-सी वेदना है, यह मैं नहीं जानना चाहता क्योंकि मनुष्य-मात्र अपने विचार के लिये स्वतंत्र है। और, मैं कोई वेजा प्रभाव नहीं डालना चाहता। परंतु यह मैं जानता हूँ कि आप प्रसन्न नहीं हैं; इसके लिये मुझे दुःख होता है। मैं आपको किसी तरह दुखी नहीं देखना चाहता। अगर मैं सुखी नहीं हो सकता, तो यह दूसरी बात है, लेकिन आपको सुखी देखना चाहता हूँ। यदि आपके लिये मुझे अपना जीवन भी देना पड़े, तो निस्संकोच मैं दे दूँगा, और आपको प्रसन्न करूँगा। जिस अभिशाप को भोगने का केवल मैं अधिकारी हूँ, उससे मैं आपको दुखी नहीं देखना चाहता। इसलिये अगर आपकी वेदना मेरे किसी भी उपाय से कम हो सकती हो, तो आप उसे कहें, मैं सहर्ष करने को तैयार हूँ! यह मैं क्षण-भर के लिये विचार न करूँगा कि वह कैसा है, और उसमें मेरा क्या नुक़सान है? शायद आपको मेरी बात पर विश्वास न होता हो, लेकिन जो कुछ मैं कहता हूँ, सत्य कहता हूँ।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद फिर चुप हो गए। चंद्रमा अपनी वक्र दृष्टि से उनकी ओर देख रहा था।

कुसुमलता ने कहा—"आप मेरे लिये इतनी चिंता क्यों करते

है ? जिस तरह आपका जीवन अभिशापित है, वैसे ही मेरा भी, क्योंकि मैं आपकी पत्नी हूँ। ससुरजी के अभिशाप को मैं भी भोगूँगी, इससे मेरा निस्तार नहीं है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"ठीक है, परंतु मैं आपको सुखी करना चाहता हूँ।"

कुसुमलता ने मलीन हँसी के साथ कहा—"यह विचार आपका भ्रम-पूर्ण है। मैं इस जीवन में सुखी नहीं हो सकती।"

कुसुमलता के स्वर में वेदना थी, जिसने डॉक्टर आनंदीप्रसाद-जैसे धीर व्यक्ति को भी हिला दिया।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने पूछा—"क्यों ?"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"इसका जवाब मैं दे चुकी हूँ, इस-लिये कि मैं आपकी पत्नी हूँ। मेरे सुखी होने से ससुरजी का अभिशाप पूर्ण न होगा।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद सोचने लगे। कुसुमलता भी सोचने लगी। दोनो को सोच में निमग्न देख मुर्ग़ा चिल्ला-चिल्लाकर प्रकृति की नीरवता भंग करने लगा।

---

(१४)

प्रभाकर की किरणें नवीन संदेश राजा भूपेंद्रकिशोर के परिवार के लिये लाईं, और रूपगढ़-राज्य के भावी उत्तराधिकारी के आने की सूचना देने लगीं। मायावती की प्रसव-वेदना उस नवजात शिशु के कलरव में विलीन हो गई। रानी किशोरकेसरी ने हाथ जोड़कर, इष्टदेव को स्मरण कर धन्यवाद दिया।

राजा भूपेंद्रकिशोर भी प्रसन्न हुए। जब किशोरकेसरी ने मुस्किराहट के साथ वह शुभ समाचार कहा, तो उन्होंने हँसकर कहा—"बोलो, तुम क्या माँगती हो?"

रानी किशोरकेसरी ने गंभीर होकर कहा—"हँसी मत समझना, मैं माँगती हूँ, ऐसा न हो कि तुम इनकार कर दो।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"नहीं, मैं इनकार नहीं करूँगा, तुम जो कुछ माँगोगी, वह मैं दूँगा, परंतु उसका देना मेरे अधिकार में होना चाहिए। यह नहीं कि तुम संसार का राज्य माँग लो, तो मैं कहाँ से दूँगा।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"ऐसा भी कोई माँगता है, जो चीज़ होती है, वही माँगी जाती है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने दृढ़ता से कहा—"तो फिर कुछ परवा नहीं। दौहित्र होने की ख़ुशी में मैं तुम्हें सब कुछ दे दूँगा।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"नहीं, प्रतिज्ञा करो।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने एक अंतर्भेदी दृष्टि से देखते हुए कहा—"न-मालूम तुम क्या माँगना चाहती हो। अच्छा, माँगो, जब मैं तुम्हें वचन दे चुका हूँ, तब अवश्य दूँगा।"

रानी किशोरकेसरी ने आँखों से हँसते हुए कहा—"तो फिर माँगूँ ?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने रुकते-रुकते कहा—"अच्छा, माँगो, बार-बार क्या पूछती हो। मैं जब ज़बान हार गया, तो ज़रूर दूँगा।"

रानी किशोरकेसरी कुछ सोचने लगीं।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने अधीरता से कहा—"कहती क्यों नहीं। फ़िज़ूल में मेरी उत्सुकता बढ़ा रही हो।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"मैं माँगती हूँ क्षमा। अपने दौहित्र के पिता को क्षमा करो। प्रकाश को तुमने द्वंद्व-युद्ध के लिये ललकारा है, इसलिये उससे युद्ध न करने की प्रतिज्ञा करो। उसका अपराध क्षमा करो, और उसे रास्ते पर लाना मेरी ज़िम्मेवारी है। मैं तुम्हारा स्वभाव जानती हूँ, तुम जिस बात को विचार लेते हो, उसे अवश्य करते हो, लेकिन मैं तुम्हें यह युद्ध नहीं करने दूँगी। मैं उसकी ओर से माफ़ी माँगती हूँ।"

राजा भूपेंद्रकिशोर विचार में पड़ गए।

रानी किशोरकेसरी कहने लगीं—"तुमने परिणाम की भयंकरता को न जानते हुए ऐसी विकट बात सोच ली। क्या तुम नहीं जानते कि इस युद्ध में सब तरह से मेरी हानि है। मैं तुम्हें यह युद्ध नहीं करने दूँगी, और मैं इसीलिये देश छोड़कर तुम्हारे पीछे-पीछे इस म्लेच्छ देश में आई हूँ। प्रकाश अभी नवयुवक है, अपना भला-बुरा नहीं समझता। जब तक मनुष्य ठगा नहीं जाता, उसके बुद्धि नहीं आती। अब जब वह रास्ते पर आवेगा, तो कभी भूलकर उस कुराह पर नहीं जायगा, जहाँ उसको इतने कटु अनुभव प्राप्त हुए। मनुष्य को सदैव सत्य से ही शांति मिलती है, असत्य से नहीं। वह एक आवेश में भूलकर, मार्ग छोड़ कुमार्ग चला गया है। समय प्राप्त होने पर वह आवेश उतर जायगा, और फिर रास्ते पर आ जायगा।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"वह जब यहाँ आकर मुझे द्वंद्व-युद्ध के लिये ललकारेगा, तब मैं क्या करूँगा। कायर की तरह कहूँगा कि मैं तुमसे युद्ध नहीं कर सकता। क्यों?"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"यहाँ तक नौबत ही न आने पाएगी। जो पुरुष लंपट हो जाता है, उसका साहस नष्ट हो जाता है। अगर बहुत ज़ोर भी करता है, तो सिर्फ़ ज़बान से ही, लेकिन कार्य के लिये उसके हाथ बेकार हो जाते हैं। प्रकाश में अब वह साहस नहीं रहा, जिसको देखकर मैं रीझ गई थी, और माया को उसके पुरस्कार में दिया था। वह उस समय देवता था, और इस समय पशु है। वह यहाँ तक आकर कभी तुमसे युद्ध करने का साहस न करेगा।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"यह तो सीधी बात है, जब वह युद्ध के लिये मुझे नहीं ललकारेगा, तो फिर मैं युद्ध ही किससे करूँगा।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"वह युद्ध के लिये नहीं आवेगा। मुझे उसकी तरफ़ से कोई भय नहीं है। भय केवल तुम्हारी ओर से है। ऐसा न हो कि तुम उसे फिर ललकारो। कुछ थोड़ा-सा भय मुझको उस राँड़ की तरफ़ से है, जो शायद इस युद्ध के लिये उसको उत्तेजित करे, क्योंकि उसमें उसका स्वार्थ है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने उत्सुकता से पूछा—"वह क्या?"

रानी किशोरकेसरी कहने लगीं—"ऐसी दुष्ट स्त्रियाँ जब किसी से ऊब उठती हैं, तो उससे छुटकारा पाने के लिये अनेक प्रयत्न करती हैं। फिर इसमें सब तरह माया की हानि है। वह माया को नुक़-सान पहुँचाने के लिये सब प्रयत्न करेगी। मुझे विश्वास है कि यदि एक बार मैं प्रकाश से मिल सकूँ, तो उसे मैं रास्ते पर ले आऊँगी।"

राजा भूपेंद्रकिशोर अविश्वास से मुस्किराने लगे।

रानी किशोरकेसरी ने कुछ रुष्ट होकर कहा—"क्या तुमको मेरी बात पर विश्वास नहीं होता?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"विश्वास क्यों नहीं होता। तुममें असंभव को संभव करने की शक्ति है, यह मैं मानता हूँ, लेकिन शायद ही प्रकाश और माया का मनोमालिन्य दूर हो। क्या तुम नहीं जानतीं कि माया का स्वभाव कितना कोमल है?"

रानी किशोरकेसरी ने उत्तर दिया—"जानती हूँ, मैं माया की मा होकर क्या उसका स्वभाव न जानूँगी? माया को साथ में लाने का यही कारण था कि वह जान ले कि जिस मार्ग की ओर अग्रसर हो रही थी, दरअसल वह भारतीय नारियों के लिये उपयुक्त नहीं है। बस, इसी बात का ज्ञान कराना मेरा अभीष्ट था, और उसके प्रति घृणा तो स्वतः उत्पन्न हो जायगी। पेरिस का नाच-रंग देखकर उसको यह विश्वास हो गया, और मेरा भी मनोरथ सिद्ध हो गया।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने उनकी ओर प्रशंसा-पूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"तुम अद्भुत स्त्री हो। तुम इतनी कूटनीतिज्ञ हो, यह मुझे आज ही मालूम हुआ है।"

रानी किशोरकेसरी ने मुस्किराकर कहा—"ख़ैर, अब तारीफ़ रहने दीजिए, जो मैंने माँगा, क्या वह बात निष्फल जायगी?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कुछ सोचने के बाद कहा—"नहीं, मैं अपनी बात नहीं जाने दूँगा। अगर प्रकाश यहाँ आकर द्वंद्व-युद्ध के लिये मुझे ललकारेगा नहीं, तो मैं अब उसे नहीं छेड़ूँगा।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"ख़ैर, इतना ही बहुत है। यह तो मुझे विश्वास है कि प्रकाश यहाँ नहीं आवेगा। अच्छा,

तुम उसको तार देकर अपने दौहित्र होने की सूचना तो दे दो।"

राजा भूपेंद्रकिशोर भ्रूकुंचित करके कहा—"यह मुझसे नहीं होने का, और न मैं तुम्हें सूचना देने दूँगा। मैं किसी प्रकार अपने को उसके सामने नत करना नहीं चाहता।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"इसमें कौन बुरी बात है। पुत्र के उत्पन्न होने की ख़बर तो पिता को देना होता है।"

राजभूपेंद्रकिशोर ने बिगड़कर कहा—"तुम हर बात की ज़िद्द करती हो, यह अच्छा नहीं है।"

रानी किशोरीकेसरी ने कुछ और कहना मुनासिब नहीं समझा। वह चुपचाप चली गईं। राजा भूपेंद्रकिशोर कुछ विचारने लगे।

---

(१५)

मनोरमा की तबियत बहुत जल्दी सुधर गई, और वह धीरे-धीरे वियोग का दुख सहने में अभ्यस्त-सी हो गई। राजेश्वरी की सेवा और विकलता देखकर वह आश्चर्य करती और मन में कहती कि क्या यह मेरी सौतेली मा है ?

मनोरमा की तबियत उस दिन बिलकुल अच्छी थी। वह अपनी मेज़ पर बैठी हुई राजेंद्रप्रसाद को पत्र लिख रही थी कि राजेश्वरी उसका हाल-चाल लेने के लिये वहाँ आई। मनोरमा पत्र लिखने में लवलीन थी, उसे राजेश्वरी का आना नहीं मालूम हुआ।

राजेश्वरी ने उसे लिखते देखकर सक्रोध कहा—"अभी-अभी तुम बुख़ार से उठी हो, अंदरूनी गरम अभी तक नहीं गई, और फिर पढ़ना-लिखना शुरू कर दिया।"

मनोरमा ने पत्र लिखना बंद कर दिया, और उसे पैड के नीचे छिपा दिया।

राजेश्वरी ने निकट आकर पूछा—"देखूँ, तू क्या लिख रही थी ?"

मनोरमा ने मुस्किरा कहा—"मैं नहीं दिखाऊँगी। तुम्हारे देखने की चीज़ नहीं है।"

राजेश्वरी ने हँसकर कहा—"मैं जान गई, राजेंद्र बाबू को लिख रही हो। कुछ मेरी शिकायत लिखती होगी, तभी दिखाना नहीं चाहतीं।"

मनोरमा ने कहा—"हाँ, तुम्हारी शिकायत ही लिखती हूँ। बस, अब तो राज़ी हो।"

राजेश्वरी ने मुस्किराकर कहा—"तभी तो नहीं बतलातीं कि क्या लिख रही हो।"

इसी समय कुसुमलता ने आकर कहा—"कहिए अम्माजी, क्या हो रहा है?"

राजेश्वरी ने एक मधुर हँसी से स्वागत करते हुए कहा—"आज-कल तो बिट्टन के दर्शन ही नहीं होते। आज चार-पाँच दिन से मन्नी की तबियत ख़राब थी, और तुम उसे देखने भी नहीं आईं।"

कुसुमलता ने अवाक् होकर कहा—"मन्नी की तबियत ख़राब थी, मुझे ज़रा भी नहीं मालूम। अगर मालूम होता, तो क्या मैं आती नहीं? क्या बीमारी थी?"

राजेश्वरी ने उत्तर दिया—"बुख़ार आता था, अब तो ठीक है। देखो, बेचारी का मुँह कैसा निकल आया है, एक-एक हड्डी दिखाई देती है। बुख़ार भी बहुत तेज़ चढ़ता था; १०२, १०३ डिग्री तक आता था। मुझे पहले कुछ नहीं मालूम था, यह तो अकस्मात् उस दिन दोपहर को आनंदी बाबू आए, और उन्होंने कहा—'चाचीजी, ज़रा ख़याल रखना, मन्नी को रोज़ बुख़ार आता है। अगर अभी से इलाज नहीं किया जायगा, तो जीर्ण हो जाने का डर है।' बस, मेरी जान एकदम सूख गई। शाम को जो मन्नी को देखा, तो सचमुच बुख़ार चढ़ा हुआ था। इस बेवक़ूफ़ ने कभी कुछ नहीं बताया, और अगर वह मुझे न बतलाते, तो शायद मुझे इसकी बिलकुल ख़बर न होती। जानती हो, इसने क्यों नहीं बतलाया? मुझे जलाने के लिये। क्या करूँ, अगर कोई मेरे लड़का होता, तो मैं इसे बता देती कि सौतेली मा ऐसी होती है।"

राजेश्वरी का क्षोभ देखकर मनोरमा और कुसुमलता दोनो हँसने लगीं।

राजेश्वरी ने उनकी हँसी से रुष्ट हो उत्तेजित होकर कहा—"हाँ-हाँ, हँसती क्या हो, तब तुम्हें बता देती। एक टुकड़ा पहनाकर घर से बाहर निकाल देती, और सारी जायदाद उसे दे जाती, तुम्हें एक कौड़ी भी नहीं देती।"

कुसुमलता ने अपनी हँसी रोकते हुए कहा—"एक कानी कौड़ी भी नहीं ?"

मनोरमा ने मुस्किराते हुए कहा—"एक लँगोटी और फूटी कौड़ी तो ज़रूर ही दोगी।"

राजेश्वरी ने अधिक उत्तेजित होकर कहा—"चाहे किसी अनाथालय में भले ही दे जाऊँ, लेकिन तुझे एक कानी कौड़ी भी नहीं दूँगी। तू जिस तरह मेरा दिल जलाती है, वह मैं ही जानती हूँ। इन चार दिनों में तू तो आराम से सोती रही, लेकिन मुझे जो भुगतना पड़ा है, वह मैं ही जानती हूँ। मेरा खाना-पीना, हँसना-बोलना, सोना-जागना, सब हराम हो गया। मनी, अगर मैं तुझे इसी तरह न रुलाऊँ, तो मेरा नाम…"

"राजेश्वरीदेवी नहीं।" यह कहकर मनोरमा हँसने लगी।

कुसुमलता भी हँस पड़ी।

राजेश्वरी ने बड़े ही उत्तेजित स्वर में कहा—"तुम आज तो हँसती हो, लेकिन एक दिन रोओगी।"

मनोरमा ने तुरंत ही उत्तर दिया—"मैं रोऊँगी, उस दिन, जब मरते वक्त तुमसे बिदा लूँगी, पहले तो मैं नहीं रोने की।"

राजेश्वरी ने दौड़कर मनोरमा का मुँह पकड़ लिया—"मनी, क्या तूने मुझे रुलाने के लिये सचमुच क़सम खा ली है। याद रख, अगर मैं मर गई, तो फिर तुझे सात जन्म ऐसी मा नहीं मिलेगी।"

मनोरमा ने हँसते हुए कहा—"मा भले ही न मिले, लेकिन सौतेली मा तो मिलेगी।"

कुसुमलता हँस पड़ी, और उत्तेजित राजेश्वरी भी हँस पड़ी।

कुसुमलता ने कहा—"अम्मा, तुम मन्नी को तो इतना चाहती हो, लेकिन यह तुम्हें बिलकुल नहीं चाहती।"

राजेश्वरी ने जवाब दिया—"अभी नहीं चाहती, लेकिन जब मर जाऊँगी, तो गला फाड़-फाड़कर रोएगी। मैं जानती हूँ।"

मनोरमा ने क्षुब्ध होकर कहा—"क्या जानती हो, ख़ाक। मुझे वह दुख देखने को नहीं मिलेगा, तुम्हारे मरने से पहले ही मैं मर जाऊँगी।"

राजेश्वरी ने फिर उत्तेजित होकर कहा—"चुप रह, मनाकर दिया, मानती ही नहीं, बक-बक लगाए है। याद रख, अगर तूने दुबारा यह अशुभ वाक्य निकाला, तो मारते-मारते खाल निकाल लूँगी। यह याद रख कि मैं हूँ तेरी सौतेली मा। मुझे यह पीड़ा नहीं कि मैंने तुझे अपने गर्भ में रक्खा है।" यह कहकर वह सवेग कमरे के बाहर चली गई।

कुसुमलता ने गंभीर होकर कहा—"ईश्वर करे, ऐसी ही सौतेली मा घर-घर हों।" कहते-कहते उसके नेत्रों में पानी भर आया।

मनोरमा ने भी गंभीर होकर कहा—"कुसुम! ऐसी मा पाकर मैं धन्य हो गई।"

कुसुमलता ने जवाब दिया—"बेशक, मन्नी, यह सुख तेरे ही भाग्य में है। संसार में मा का प्रेम एक अद्भुत त्याग का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है, और सौतेली मा का प्रेम उससे भी महान् है।"

मनोरमा ने तुरंत ही कहा—"माता का प्रेम भगवान् का वात्सल्य रूप है।"

कुसुमलता ने धीमे कंठ से कहा—"मन्नी, यह तुम्हें सुनकर

प्रसन्नता होगी कि मैंने अपने विचार बदल दिए हैं। मैं अब नास्तिक नहीं रही, ईश्वर-वादिनी हो गई हूँ। भगवान् की विभूति में विश्वास करती हूँ, और उसकी शक्ति की क़ायल हूँ।"

मनोरमा ने चकित होकर उसकी ओर देखते हुए कहा—"यह परिवर्तन कब से हुआ ?"

कुसुमलता ने जवाब दिया—"अभी हाल में, दो ही चार दिनों से।"

मनोरमा ने मुस्किराते हुए कहा—"यह शायद डॉक्टर साहब के संसर्ग का फल है, क्योंकि वह बड़े पुजारी हैं।"

कुसुमलता ने विरोधमय हँसी से कहा—"नहीं, यह विचार अपने आप उदय हुआ है। उनकी पूजा-पाठ से मुझे ज्ञान नहीं हुआ। पूजा-पाठ पर मेरा विश्वास नहीं है। उसे मैं ग़ुलामी समझती हूँ।"

मनोरमा ने पूछा—"कैसे ?"

कुसुमलता ने जवाब दिया—"ज़रा विचारकर देखो, पूजा-पाठ के मंत्रों में क्या है, ईश्वर का गुण-गान और उसकी ग़ुलामी, मसलन्, आप ऐसे हो, आप वैसे हो, और मैं आपका दास हूँ, आपकी शरण में आया हूँ, आप दीन-बंधु हैं, मैं दीन हूँ, आप मेरी रक्षा कीजिए, मुझे संसार-सागर से पार उतारिए, इत्यादि-इत्यादि। मैं ऐसी पूजा-पाठ तनिक भी पसंद नहीं करती। मैं सिर्फ़ यह मानती हूँ कि शक्तियों के केंद्र का नाम भगवान् है। ब्रह्मांड किसी शक्ति के आश्रित है, बस, उस शक्ति का नाम ईश्वर है। वह शक्ति न तो किसी का नुक़सान करती है, और न फ़ायदा।"

मनोरमा ने पूछा—"अच्छा, मुझे यह बतलाओ कि मनुष्य और ईश्वर में क्या संबंध है ?"

कुसुमलता ने उत्तर दिया—"संबंध वैसा है, जैसा दो स्वतंत्रराष्ट्रों में होता है। उन दोनो में दो प्रकार के ही संबंध हो सकते हैं—एक

मित्रता का, दूसरा शत्रुता का। मित्रता का संबंध सुख-शांतिदायक है, और शत्रुता का संबंध एक अविराम कलह का रूप है। मित्रता का संबंध स्थापित करने के लिये गुलामी करने की ज़रूरत नहीं है। उसे हम अपनी इज़्ज़त और अभिमान रखते हुए भी स्थापित कर सकते हैं। सत्य और कर्तव्य-पालन से वह मैत्री-भाव स्वय-मेव स्थापित हो जायगा। हाँ, विरोधाभास अवश्य हानिकारक है।"

मनोरमा ने कहा—"तुम्हारा विचार कोई नया विचार नहीं है। हमारे शास्त्रकारों ने नौ प्रकार की भक्ति कही है, उसमें से सत्य और कर्तव्य-पालन भी एक है। यह तो अपने-अपने पसंद की बात है। जिस प्रकार संसार में एक ही रूप, गुण के सब मनुष्य नहीं होते, उसी प्रकार स्वभाव में भी विभिन्नता होती है। कोई स्वभाव से उद्दंड और क्रोधी होता है, कोई शांत-प्रकृति का और कोई नीच स्वभाव का होता है। सत्त्व, रज और तम, यह तीन मुख्य भेद हैं, और इन्हीं के न्यूनाधिक भाव से समग्र सृष्टि रची हुई है। यह भेद तीन होकर फिर भी एक है। मनुष्य ने अपने समझने के लिये यह भेद किया है। सत्त्व गुण भगवान् का निकटतम उज्ज्वल रूप है, राजस उससे कुछ दूर व कुछ अस्पष्ट और तामस सबसे दूर, बिलकुल धूमिल। ये ही तीन गुण किसी अंश में न्यून और प्रधान होकर मनुष्य का स्वभाव बनाते हैं, और फिर वह अपने स्वभावा-नुसार ईश्वर की पूजा कहो, उपासना कहो, या भक्ति कहो, करता है।"

कुसुमलता ने कहा—"ठीक है, यही मैं भी सोचती हूँ।"

इसी समय राजेश्वरी दो तश्तरियों में कुछ अंगूर और दूसरे फल लेकर आई, और कहा—"अच्छा, बातें फिर करना, पहले फल खा लो।"

कुसुमलता ने तश्तरी हाथ में लेते हुए कहा—"लाओ, भला, मा का प्रसाद कौन छोड़ेगा ?" यह कहकर वह फल खाने लगी।

राजेश्वरी ने कहा—"आजकल बड़े बाबूजी की कैसी तबियत है ?"

राजेश्वरी सर रामप्रसाद को बड़े बाबू कहकर पुकारती थी।

कुसुमलता ने कहा—"आजकल तो अच्छी है।"

राजेश्वरी ने दुख के साथ कहा—"बिट्टन, उनके स्वास्थ्य की ओर कोई देखनेवाला नहीं है। मैं जानती हूँ, वह बड़े दुखी हैं। तुम उनकी ओर विशेष ध्यान रक्खा करो। यह तुम्हें जानना चाहिए कि स्त्री का कर्तव्य पढ़ने-लिखने के अतिरिक्त कुछ और भी है। मैं पढ़ने-लिखने को मना नहीं करती, लेकिन इसमें इतनी निमग्न न हो जाओ कि तुम अपना स्वाभाविक कर्तव्य भूल जाओ। स्त्री-जाति का प्रथम कर्तव्य है सेवा करना; पिता, माता, पति और पुत्र की सेवा कर संतुष्ट करना। जो स्त्री ऐसा करती है, उसका जीवन सार्थक है, और वह कभी दुखी नहीं रहेगी। आजकल जो स्त्रियाँ पुरुषों की बराबरी में अपनी शक्ति क्षीण कर रही हैं, उन्हें नहीं मालूम कि वे मातृत्व और पत्नीत्व की जड़ पर कुठाराघात कर रही हैं। स्त्री और पुरुष, ये भगवान् की दो विभूतियाँ हैं; एक कोमल और शृंगार की मनोरम विभूति है, और दूसरी कठोर पौरुष की तेजोमयी विभूति है। दोनो बराबर तो नहीं, लेकिन दोनो एक ही वस्तु के दो रूप हैं। बिट्टन, तुम्हारे मा नहीं है, इसलिये मुझे कहना पड़ता है कि शायद पढ़-लिखकर तुम भी 'बराबरी' के झगड़े में पड़ जाओ, और तुम्हारा गार्हस्थ्य जीवन का सुख नष्ट हो जाय। पति की सेवा करने में ही स्त्री का कल्याण है। वह उसकी गुलामी नहीं है, अपना प्राप्य अधिकार है। पुत्र की सेवा करना

मातृत्व की चरम सीमा है। वह उसकी गुलामी नहीं, अपनी आत्मा की पूजा है। पिता की सेवा करना उसके ऋण से मुक्त होना है।"

मनोरमा ने बीच में बात काटकर कहा—"देखो, अभी तक तो झगड़ा करती थीं, अब उपदेशक बनकर आई हैं।"

कुसुमलता ने कहा—"अम्मा ठीक कहती हैं। मुझे इन विचारों में कुछ नवीनता मालूम होती है, और मैं यह सोचती हूँ कि शायद यही सत्य है।"

बाबू राधारमण कचेहरी से आकर सीधे मनोरमा के कमरे में चले आए, और कमरे के बाहर से ही पूछा—"मन्नी, आज कैसी तबियत है ?"

उनके प्रश्न ने तीनो को शांत कर दिया।

मनोरमा ने उत्तर दिया—"आज तो ठीक है।"

राधारमण ने नब्ज़ देखते हुए कहा—"हाँ, ठीक मालूम होती है। अब सब ठीक हो जायगा।"

यह कहकर वह संतुष्ट मन से बाहर चले गए।

---

(१६)

शीतकाल की ठंडी हवाएँ मायावती के हृदय को कँपाती हुई स्वदेश की याद दिलाने लगीं, जहाँ शिशिर और हेमंत-ऋतुएँ अमीरों के लिये विलास का उपहार लेकर आती हैं। परंतु इँगलैंड में यह समय बड़ी विपत्ति का होता है। वृक्ष पत्र-हीन होकर धनाढ्य इँगलैंड को ग़रीब दिखलाने का प्रयत्न करते हैं, और देश के ग़रीब मनुष्य ही अपनी तुलना उनसे करके दुखी होते हैं।

यद्यपि राजेंद्रप्रसाद अब राजा भूपेंद्रकिशोर के परिवार में न रहते थे, क्योंकि डॉक्टर की उपाधि लेने के लिये उनको कैंब्रिज में रहना पड़ता था, परंतु फिर भी उनकी घनिष्ठता उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी। बड़े दिन या क्रिसमस की छुट्टियाँ बिताने के लिये वह रानी मायावती का निमंत्रण पाकर लंदन चले आए।

दोपहर का समय था। आकाश बादलों से घिरा हुआ था। ठिठुरन से शरीर की रग-रग बेहाल थी। एक बंद कमरे में रानी मायावती लेटी हुई थीं। सिरहाने की तरफ़ रानी किशोरकेसरी उदास बैठी थीं, क्योंकि आज कई दिनों से रानी मायावती बीमार थीं। एक दिन वह राजेंद्रप्रसाद के साथ घूमने गईं, उसी दिन उनके ठंड लग गई, और ज़ुकाम हो गया। एक-दो दिन तक उन्होंने कोई ध्यान नहीं दिया। जब 'ब्रान्काईटीस' हो गया, तो राजा भूपेंद्रकिशोर को भी चिंता हुई, और उन्होंने इलाज करवाना शुरू किया। डॉक्टर ने सावधान रहने की चेतावनी दी, और न्यूमोनिया हो जाने का अंदेशा बतलाया। एक दिन उसने उनकी दशा देख-कर न्यूमोनिया होना ज़ाहिर भी कर दिया। राजा भूपेंद्रकिशोर

अत्तरशः डॉक्टर की आज्ञा पालन करने लगे। रानी मायावती की विकलता दिन-पर-दिन बढ़ती गई। अंत में वह दशा आ गई, जो बड़ी भयानक होती है। डॉक्टर ने साफ़-साफ़ शब्दों में कह दिया कि अगर आज दो दिनों में हालत सँभली रही, तो ठीक है, वरना केस हाथ से बेहाथ हो जायगा। उस भयानक दशा का एक दिन तो बीत गया था, लेकिन दूसरा दिन आज बाक़ी था।

राजेंद्रप्रसाद मन-ही-मन बड़े व्याकुल थे। वह रानी मायावती की बीमारी का कारण अपने को समझते थे, और इसी चिंता ने उनकी हालत बीमार से ज़्यादा कर रक्खी थी।

रानी किशोरकेसरी की चिंता का वारपार न था। वह उद्विग्न मन से उनकी सेवा कर रही थीं। डॉक्टर ने एक नर्स रखने की आवश्यकता बतलाई, और राजा भूपेंद्रकिशोर ने सहर्ष अपनी सम्मति दे दी, लेकिन रानी किशोरकेसरी किसी तरह राज़ी नहीं हुईं। उन्होंने उनकी सेवा का भार अपने ऊपर लिया। राजा भूपेंद्रकिशोर उनकी इस ज़िद से बहुत नाराज़ हुए। परंतु अंत में रानी किशोरकेसरी को हारकर नर्स रखने के लिये तैयार होना पड़ा, क्योंकि रानी मायावती के नवजात शिशु कुँवर चंद्रकिशोरसिंह के पालन-पोषण का भार उनके ही ऊपर था, और दोनो की देख-रेख उनकी ताक़त से बाहर की बात थी।

रानी मायावती अपनी चिंताओं में मग्न, आँखें बंद किए हुए लेटी थीं। रानी किशोरकेसरी ने पूछा—"माया, अब तबियत कैसी है?"

मायावती ने विना नेत्र खोले हुए कहा—"अब कुछ अच्छी है। शरीर जला जाता है। मा, बोलने में तकलीफ़ होती है।"

रानी किशोरकेसरी की उद्विग्नता बढ़ गई।

नर्स ने कोमल स्वर में पूछा—"दवा खाने का वक़्त हो गया है, क्या आप दवा खायँगी ?"

रानी मायावती ने संकेत से अपनी सम्मति दी।

नर्स ने दवाएँ मिलाकर उनके खाने के लिये दवा तैयार की। रानी मायावती ने मुँह खोल दिया, और दवा उनके मुँह में डाल दी।

दवा पिलाकर उसने रानी किशोरकेसरी से कहा—"अब आप जाकर आराम करें। इस दवा से इन्हें नींद आ जायगी।"

राजेंद्रप्रसाद ने नर्स के कथन का मतलब समझकर कहा—"मा, आप कल रात-भर जागती रहीं, ज़्यादा जागने से आपकी भी तबियत ख़राब हो जाने का अंदेशा है। अब आप आराम करें। मैं यहाँ बैठा हूँ।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"तुम्हारे ही बैठने की क्या ज़रूरत है। तुम भी तो रात-भर जागे हो। जब माया सो जाय, तो तुम भी जाकर सो जाना।"

रानी किशोरकेसरी और राजेंद्रप्रसाद, दोनो कमरे के बाहर चले आए। बाहर शीत का निष्कंटक राज्य था, और इस वक़्त कुछ बूँदें भी गिरने लगी थीं।

रानी किशोरकेसरी ने राजेंद्रप्रसाद का हाथ पकड़कर कहा—"सच कहना, तुम्हें क्या मालूम होता है ? क्या माया बच जायगी ?"

राजेंद्रप्रसाद ने आशा-पूर्ण स्वर में कहा—"बेशक, इसमें कोई संदेह नहीं। कल की हालत कुछ चिंताजनक ज़रूर थी, लेकिन अब ठीक है।"

रानी किशोरकेसरी किसी चिंता में डूब गईं।

थोड़ी देर बाद फिर कहा—"तुम्हारी क्या राय है, प्रकाश को इसकी ख़बर दी जाय ?"

राजेंद्रप्रसाद ने जवाब दिया—"हर्ज क्या है। मेरे ख़याल में तो ठीक होगा। तार दे दिया जाय, जिसमें कल ही उनके पास ख़बर पहुँच जाय।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"लेकिन अगर उन्हें ख़बर हो जायगी, तो वह नाराज़ होंगे।"

राजेंद्रप्रसाद ने पूछा—"कौन, राजा साहब?"

रानी किशोरकेसरी ने जवाब दिया—"हाँ, वह प्रकाश पर सख़्त नाराज़ हैं, क्या तुम्हें नहीं मालूम? प्रकाश को उन्होंने द्वंद्व-युद्ध के लिये ललकारा था, लेकिन मैंने किसी तरह उनसे यह प्रतिज्ञा करा ली कि अगर प्रकाश कुछ नहीं कहेगा, तो वह फिर दुबारा छेड़छाड़ नहीं करेंगे। उनका स्वभाव तो तुम जानते हो कि वह कैसे सनकी हैं। यह जब कुँवर पैदा हुआ था, तो इसकी ख़बर देने की ज़िद मैंने की थी, लेकिन उन्होंने कुछ सुना नहीं, और प्रकाश को इसकी ख़बर नहीं दी। यह ठीक है कि उसने भी आज तक कोई पत्र नहीं भेजा, हालाँकि माया को आए हुए छ महीने से ज़्यादा हो गए हैं। तुम्हारी क्या राय है, क्या इसके बारे में मैं उनसे पूछूँ?"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"पूछना ठीक होगा। न पूछने से वह नाराज़ भी हो सकते हैं।"

रानी किशोरकेसरी कुछ सोचने लगीं।

इसी समय डेविड ने आकर पूछा—"रानी साहबा की तबियत कैसी है?"

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"अब तो कुछ ठीक मालूम होती है।"

डेविड ने घड़ी देखते हुए कहा—"दो बजनेवाला है। डॉक्टर को जाकर बुला लाऊँ, एक मर्तबे और दिखा दूँ। राजा साहब का यही हुक्म है।"

रानी किशोरकेसरी ने पूछा—"वह क्या करते हैं ?"

डेविड ने उत्तर दिया—"कमरे में बैठे हुए कुछ ज़रूरी काग़ज़ात देख रहे हैं।"

रानी किशोरकेसरी राजेंद्रप्रसाद को लिए हुए राजा भूपेंद्रकिशोर के कमरे में गईं।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने उन्हें देखकर चिंताजनक स्वर में पूछा—"क्या है, इतनी घबराई हुई क्यों हो ? माया की तबियत कैसी है ?"

रानी किशोरकेसरी ने उत्तर दिया—"माया की तबियत तो कुछ अच्छी है। उसे सोने की दवा दी गई है। मैं किसी दूसरे काम से आई हूँ।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कौतूहल-पूर्वक उनकी ओर देखते हुए पूछा—"क्या काम है ?"

रानी किशोरकेसरी ने जवाब दिया—"मैं यह पूछने आई हूँ कि माया की बीमारी की ख़बर प्रकाश को दे दी जाय, तो क्या हर्ज है ?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने व्यंग्य-पूर्ण स्वर में पूछा—"क्या वह आकर, माया को सजीवन बूटी देकर बचा लेगा ?"

रानी किशोरकेसरी ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

राजा भूपेंद्रकिशोर कहने लगे—"मैं तुमसे कई मर्तबे कह चुका हूँ कि उसका नाम मेरे सामने मत लिया करो। तुम्हारी आँखों में मोह का परदा पड़ा हुआ है, जिससे तुमने उसकी असलियत नहीं पहचानी, लेकिन मैं जानता हूँ। अगर उसमें ज़रा भी इंसानियत होती, तो वह इस तरह माया को धोखा देकर अपने घर की संपत्ति न लुटाता, उसे ज़हर देने की कोशिश न करता। उससे किसी तरह की उम्मीद करना फ़िज़ूल है। अगर तुम्हारी ऐसी ही मंशा है, तो उसे ख़बर दे दो, लेकिन जानती हो, तुम्हारे तार को कहाँ

जगह मिलेगी ? रद्दी की टोकरी में। इस ख़बर से अगर तुम अपने प्रकाश को और उस बदमाश मिस ट्रैवीलियन को ख़ुश करना चाहती हो, ज़रूर दे दो। इसमें मेरी हँसी ख़ूब उड़ाई जायगी, लेकिन तुम्हें इसकी कब चिंता है। तुम तो उसके पीछे दीवानी हो रही हो, और वह हम लोगों की रत्ती-भर परवा नहीं करता।"

रानी किशोरकेसरी को प्रतिवाद करने का साहस नहीं हुआ। वह राजेंद्रप्रसाद को वहीं, उनके कमरे में, छोड़कर वापस चली आईं।

राजा भूपेंद्रकिशोर और राजेंद्रप्रसाद दूसरे विषय पर बातें करने लगे।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"डेविड के संबंध में जो मैंने बंगाल-गवर्नमेंट से इनक्वायरी की थी, उसका जवाब आज की डाक से आया है।"

राजेंद्रप्रसाद ने पूछा—"क्या जवाब आया ?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने उत्तर दिया—"मेरा अनुमान ठीक निकला। नूरइलाही, मुंशी अलीसज्जाद कोतवाल का लड़का आजकल नागपुर में डिप्टी-सुपरिंटेंडेंट-पुलिस है, और डेविड मायादास कई साल से ग़ायब है। मिसेज़ डेविड मायादास उर्फ़ एलिनर रोज़ भी लापता है। उसकी दूकान कई साल पहले मिसेज़ डेविड मायादास ने एक ऐंग्लो-इंडियन के हाथ बेच दी थी, और वह अभी तक चल रही है। डेविड मायादास के बारे में यह सुना जाता है कि वह नर्मदा में डूब गया है, हालाँकि अभी तक कोई सुबूत नहीं मिला।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—"तब तो डेविड की कहानी बनावटी नहीं, सच्ची है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने उत्तर दिया—"बेशक सत्य है। डेविड

एक सच्चरित्र, भोला आदमी है, जो बुरी तरह से ठगा गया है। इसका उद्धार करना बहुत ज़रूरी है।"

इसी समय डेविड ने आकर कहा—"डॉक्टर आ गए हैं।"

डेविड को देखते ही राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"डेविड, तुम्हारी स्त्री एलिनर रोज़ का कोई पता नहीं है। तुम्हरी दूकान चल रही है, लेकिन आजकल उसका मालिक थॉमसन-नामक एक ऐंग्लो-इंडियन है। तुम्हारे बारे में यह मशहूर हुआ है कि तुम नर्मदा में डूब मरे हो।"

डेविड ने साश्चर्य देखते हुए कहा—"क्या बंगाल-गवर्नमेंट की रिपोर्ट आ गई?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने मुस्किराकर कहा—"हाँ, अभी - अभी आई है।"

डेविड ने प्रसन्न कंठ से कहा—"आज मेरे दिल का बोझ हलका हुआ। अब तो आपको मेरी कहानी की सत्यता विदित हो गई।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"मैंने तो उसी दिन विश्वास कर लिया था, लेकिन जो कुछ थोड़ी शंका थी, वह भी निकल गई।"

डेविड खिड़की के बाहर धूमिल आकाश की ओर देखने लगा। उसकी आँखों से अश्रु-बिंदु निकलकर कृतज्ञता प्रकाश करने लगे। समय के बादलों में छिपा हुआ अदृष्ट मनोहर मुस्कान से आशीर्वाद देने लगा।

राजा भूपेंद्रकिशोर और राजेंद्रप्रसाद डेविड को उसी दशा में छोड़ डॉक्टर से मिलने के लिये मायावती के कमरे में चले गए।"

---

(१७)

शीतकाल के आगमन के साथ मनोरमा की सहज सुंदरता वापस आ गई, और वह पहले की तरह फिर यौवन की वाटिका में बुलबुल की तरह चहकने लगी, यद्यपि उसके अंतस्तल में राजेंद्रप्रसाद के वियोग की पीड़ा निरंतर होती रहती थी। राजेश्वरी को प्रसन्न करने के लिये वह सदैव हँसमुख रहने की कोशिश करती, और इस तरह से वह उनको धोखा देने में सफल भी हुई।

क्रिसमस के उपलक्ष में मिस ट्रैवीलियन को बधाई देना उसने अपना कर्तव्य समझा, क्योंकि इधर कई दिनों में वह उससे बहुत घनिष्ठ हो गई थी। २४ दिसंबर की शाम को मनोरमा मिस ट्रैवीलियन के बँगले की ओर अकेले ही चल दी।

मोटर बाहर खड़ी करके वह मिस ट्रैवीलियन के कमरे में गई। वह मेज़ पर बैठी हुई किसी को पत्र लिख रही थी, और राजा प्रकाशेंद्र एक ओर बैठे हुए सिगार पी रहे थे।

मनोरमा को देखकर उन्होंने प्रसन्न कंठ से कहा—"आइए, आइए, आज किधर सूर्य उदय हुआ था!"

उनके मुँह से शराब की तीव्र गंध निकलकर मनोरमा को विरक्त करने लगी।

मिस ट्रैवीलियन ने सिर घुमाकर देखा, और एक मनोहर मुस्कान से स्वागत करते हुए कहा—"ख़ुशामदीद! मैं देखती हूँ कि आज मेरी क़िस्मत का सितारा बुलंद है। तशरीफ़ लाइए।"

मनोरमा ने दोनों को अभिवादन किया, और कहा—"आज मैं आपको क्रिसमस के उपलक्ष में बधाई देने आई हूँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने सप्रेम उसका हाथ पकड़कर कहा—"धन्यवाद ! मैं सच ही आज धन्य हो गई। आप-जैसे हितेच्छुकों की बधाई से मेरा कल्याण निश्चय होगा। मैं नहीं जानती कि किस तरह आपको धन्यवाद दूँ।"

मनोरमा ने लजाकर कहा—"इसमें धन्यवाद की क्या ज़रूरत है ? यह तो मेरा कर्तव्य है।"

मिस ट्रैवीलियन ने उसे सप्रेम एक सोफ़े पर बिठाते हुए कहा—"आज के दिन मुझे मालूम हुआ कि मेरे मित्रों की मुझ पर कैसी कृपा है। अभी-अभी राजा साहब भी इसी ग़रज़ से तशरीफ़ लाए, और मैं ज़रा एक ज़रूरी पत्र लिखने बैठ गई। आज तो आपको यहीं भोजन करना होगा। नहीं-नहीं, मैं कोई भी आपत्ति नहीं सुनूँगी। ऐसा सुअवसर मुझे कब प्राप्त होगा। मिसेज़ प्रसाद नहीं आईं ? वह कहाँ हैं ?"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"कुसुम आज सुबह आई थी, और कलकत्ता जाने के लिये कह रही थी। आज दोपहर के मेल से वह डॉक्टर प्रसाद के साथ घूमने के लिये कलकत्ता गई। इसीलिये तो मुझे अकेले आना पड़ा।"

राजा प्रकाशेंद्र की लोलुपता-भरी आँखें मिस ट्रैवीलियन की शैतानी-भरी आँखों से मौन-भाषा में विचार-विनिमय कर रही थीं।

मिस ट्रैवीलियन ने बड़ी सतर्कता से पूछा—"अम्माजी को क्यों नहीं इस मौक़े पर साथ लाईं ? अच्छा, उन्हें आदमी भेजकर बुला लूँ ?"

अम्माजी से मतलब राजेश्वरी से था।

मनोरमा ने कहा—"नहीं, मैं उनसे कुछ कहकर नहीं आई। मैं अभी एक ज़रूरी काम से वापस जाऊँगी। उन्हें बुलाने की क्या ज़रूरत है।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक अर्थ-भरी दृष्टि से राजा प्रकाशेंद्र की ओर देखा। फिर मनोरमा से कहा—"ऐसा नहीं हो सकता, आज आपको यहाँ भोजन करना ही पड़ेगा। क्या आपको मेरे यहाँ खाने में परहेज़ है। यह आपको शायद नहीं मालूम कि मैंने इधर कई दिनों से ब्राह्मण रसोइया रख लिया है, वह इसीलिये, जिसमें मेरे मित्रों को मेरे यहाँ भोजन करने में कोई असुविधा न हो। आज तो मेरा अनुरोध रखना ही पड़ेगा।"

इसी समय राजा प्रकाशेंद्र ने अपना टोप पहनते हुए कहा—"आप लोग एकांत में बातें करें, और मुझे बिदा दें।"

मनोरमा ने शिष्टाचार से कहा—"आप कहाँ जायँगे? बैठिए।"

राजा प्रकाशेंद्र ने मुस्किराकर जवाब दिया—"आपका अनुरोध रखने में मेरा गौरव है, लेकिन मुझे सख़्त अफ़सोस है कि मुझे इनकार करना पड़ रहा है, क्योंकि मिस्टर सेसिलल्वायंस ने, जो यहाँ के डिप्टी-कमिश्नर हैं, एक 'ऐट होम' दिया है, जिसमें मेरा सम्मिलित होना निहायत ज़रूरी है। अगर उनके यहाँ न जाऊँगा, तो वह असंतुष्ट हो जायँगे। आपके पिताजी और सर रामप्रसाद भी तो अवश्य ही सम्मिलित होंगे।"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"हाँ, निमंत्रण-पत्र तो आया था, जाने की मुझे नहीं मालूम। ख़ैर, तो फिर मजबूरी है।"

राजा प्रकाशेंद्र दोनो को अभिवादन करके चले गए।

मिस ट्रैवीलियन ने मृदु हास्य से कहा—"राजा साहब बड़े मिलनसार हैं। इन्होंने जिस तत्परता से हमारी संस्था की सहायता की है, मैं उसे बयान नहीं कर सकती। ऐसे सहृदय मनुष्य इस संसार में बहुत कम मिलते हैं।"

मनोरमा उनका गुण-गान सुनती रही।

मिस ट्रैवीलियन फिर कहने लगी—"आप समझती होंगी कि

मैं झूठी तारीफ़ के पुल बाँधती हूँ, लेकिन दरअसल ऐसा नहीं है। अभी आप राजा साहब के गुणों को जानती नहीं, जब जान जायँगी, तब आप भी उन पर मुग्ध होकर उनकी तारीफ़ करेंगी।"

मनोरमा ने शिष्टता के लिहाज़ से कहा—"हाँ, ज़रूर वह एक सज्जन और सहृदय पुरुष हैं।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"अच्छा, आप थोड़ी देर यहाँ तशरीफ़ रक्खें, मैं महराज से खाना बनाने के लिये कह आऊँ।"

मिस ट्रैवीलियन जाने लगी, लेकिन मनोरमा ने उसे पकड़कर कहा—"मैं आपको हृदय से धन्यवाद देती हूँ, अब तकलीफ़ न कीजिए, मैं अब जाऊँगी। किसी दूसरे दिन आकर भोजन कर लूँगी, अगर आपका ऐसा ही अनुरोध है।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"ऐसा कभी हो सकता है? जब भगवान् घर में पधार जायँ, तो उनको जाने कौन दे सकता है। मिसेज़ वर्मा, आपको आज कुछ-न-कुछ मेरे यहाँ खाकर जाना होगा। कोई हर्ज नहीं, अगर आप मेरे यहाँ का बनाया हुआ खाना न खायँ, मैं अभी चौक से मिठाई मँगाए लेती हूँ। आधे घंटे में राधा माली मोटर पर जाकर ले आवेगा। अब आपको क्या आपत्ति हो सकती है? मैं आपको बिना खिलाए हुए अपने घर से नहीं जाने दूँगी।"

मनोरमा यह आग्रह किसी तरह न टाल सकी।

मिस ट्रैवीलियन ने प्रसन्न मन से बाहर जाकर राधा माली को चौक से मिठाई लाने का आदेश दिया।

संध्या की कालिमा धीरे-धीरे अग्रसर होकर मिस ट्रैवीलियन के पैशाचिक कर्म को अपनी निविड़ कालिमा में छिपाने का प्रयत्न कर रही थी। न-मालूम क्यों मनोरमा का शरीर किसी भावी आतंक से सिहिर उठा। उसने घूमकर चारो ओर देखा, घोर निस्तब्धता

छाई हुई थी, जिसमें भय का संचार था। मनोरमा की समझ में कुछ न आया। वह बरामदे में आकर टहलने लगी।

मिस ट्रैवीलियन राधा माली को मिठाई लाने का आदेश देकर अपने शयनागार में चली गई, और एक अलमारी से दो शीशियाँ निकालीं, जिनमें कोई श्वेत अर्क भरा हुआ था। उसने उन्हें अपने कपड़ों में छिपा लिया, और वेग से पास ही लगे हुए टेलीफ़ोन से राजा प्रकाशेंद्र के बँगले से नंबर मिलाकर पुकारा—"हलो।"

थोड़ी देर में जवाब आया—"हलो।"

मिस ट्रैवीलियन ने पूछा—"कौन हैं आप ?"

दूसरी ओर से जवाब मिला—"प्राइवेट सेक्रेटरी राजा रूप-गढ़।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"क्या राजा साहब कोठी पर हैं ?"

दूसरी ओर से जवाब मिला—"हाँ, अभी तशरीफ़ लाए हैं। इस वक़्त ग़ुसलख़ाना में हैं। आप कहाँ से बोल रहे हैं ?"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"तुम जाकर राजा साहब से बोलो, फूल खिल गया है, अगर परीक्षा करना हो, तो शीघ्र आवें।"

राजा प्रकाशेंद्र के प्राइवेट सेक्रेटरी ने पूछा—"आपका नाम ?"

मिस ट्रैवीलियन ने आदेश-पूर्ण स्वर में कहा—"नाम की ज़रूरत नहीं, जो संदेश कहा है, उसे कह दो। बस।" यह कहकर मिस ट्रैवीलियन ने संबंध तोड़ दिया।

वह उन दो शीशियों को सँभालती हुई अपने ड्राइंग रूम की ओर दौड़ती हुई आई। मनोरमा उद्विग्नता के साथ बरामदे में टहल रही थी।

मिस ट्रैवीलियन ने आते ही कहा—"माफ़ कीजिएगा, मैं ज़रा एक काम में फँस गई, इसलिये आने में देर हो गई। हरामज़ादे नौकर कभी घर पर हाज़िर नहीं मिलते, फिर आज ख़ास तौर पर

छुट्टी मनाने गए हैं। आप अँधेरे में क्यों घूम रही हैं, लाइट क्यों नहीं जला ली ?"

मनोरमा ने जवाब दिया—"नहीं, कोई हर्ज की बात नहीं। अकेले बैठे-बैठे जी नहीं लगा, इसलिये यहाँ टहलने लगी। अब आप मेहरबानी करके इजाज़त दें, मैं जाऊँगी, मेरा मन न-मालूम क्यों घबराता है।"

मिस ट्रैवीलियन ने बड़े प्रेम के साथ मनोरमा को पकड़कर कहा—"यह भी हो सकता है ? मैंने मिठाई लेने के लिये आदमी भेज दिया है, वह आनेवाला है। सिर्फ़ मुँह मीठा कर चली जाना। ऐसी घबराने की क्या बात है। आप तो शिक्षित स्त्री हैं, जहाँ तक समझती हूँ, भूत-प्रेत पर विश्वास न करती होंगी।"

मनोरमा ने हँसकर कहा—"मैं भूत-प्रेत पर विश्वास नहीं करती, परंतु मेरा मन आज न-मालूम क्यों विकल है। ऐसा मालूम होता है कि कोई विपत्ति आनेवाली है।"

मिस ट्रैवीलियन ने ज़ोर से हँसकर कहा—"ये ही तो हिंदू-समाज के कुसंस्कार हैं, जो न होनेवाली बातों में भी विचित्र अर्थ उत्पन्न करते हैं। आप ही बताइए, यहाँ आपको क्या भय हो सकता है ? लेकिन चूँकि आप अकेले रहने की आदी नहीं हैं, इसीलिये आप घबरा गईं, और कहने लगीं कि मुझ पर कोई विपत्ति आने-वाली है, हालाँकि आपसे विपत्ति लाखों कोस दूर होगी।"

उसकी हँसी की ध्वनि ने कमरे को कंपित कर दिया।

इसी समय राधा माली मिठाई लेकर आ गया, बोला—"हुज़ूर, मिठाई हाज़िर है।"

मिस ट्रैवीलियन ने आदेश दिया—"सुखराम को बोलो कि वह तीन-चार जगह मिठाई लगाकर ले आवे।"

राधा के जाने के बाद मनोरमा से कहा—"आप मेहरबानी

कर थोड़ी देर बैठें, मैं अपने सामने मिठाई तश्तरियों में सजवा लूँ, नहीं तो गधे नौकर बिगाड़ देंगे। आप किसी बात की चिंता न करें। तब तक आप इसी सप्ताह का 'इलस्ट्रेटेड वीकली' देखें। मैं दो मिनट में आती हूँ।"

यह कहकर मिस ट्रैवीलियन बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए सवेग कमरे से बाहर हो गई।

मनोरमा फिर विचार-सागर में निमग्न हो गई।

मिस ट्रैवीलियन ने एक खीरमोहन लेकर, शीशी निकालकर उसमें दो बूँदें छोड़ दीं, और दूसरे खीरमोहन में दूसरी शीशी की कुछ बूँदें डाल दीं। सुखराम ब्राह्मण ध्यान-पूर्वक दूसरी मिठाइयाँ सजा रहा था। दोनों खीरमोहन एक तश्तरी में रखकर उस पर सोने के वर्क़ चपका दिए, और कहा—"यह सोने के वर्क़वाली तश्तरी मनोरमा की मेज़ पर रखना।"

सुखराम ने सिर हिलाकर अपनी सम्मति दे दी। दूसरे क्षण मिस ट्रैवीलियन मनोरमा के पास चली आई।

मनोरमा अपने सामने 'इलस्ट्रेटेड वीकली' लेकर बैठी थी, लेकिन उसका ध्यान किसी दूसरी ओर था।

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"आप क्या यहाँ बैठना उचित समझेंगी, या दूसरे किसी कमरे में? मेरे ख़याल से अंदर के कमरे में बैठना उचित होगा, क्योंकि यहाँ हरएक आदमी आ सकता है। खाना-पीना हमेशा एकांत में होना उचित है।"

मनोरमा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

मिस ट्रैवीलियन ने हँसकर कहा—"आज क्या बात है, जो आप इतनी व्याकुल हैं?"

मनोरमा ने अन्यमनस्क भाव से कहा—"मैं स्वयं नहीं जानती। मेरा मन होता है कि यहाँ से भाग जाऊँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने ज़ोर से हँसते हुए कहा—"आप ज़रा भी न घबराइए, दो खीरमोहन खाकर और जल पीकर चली जाना।"

इसी समय राधा और सुखराम मिठाई की तश्तरियाँ दो ट्रे पर सजाकर ले आए, और हुक्म की प्रतीक्षा करने लगे।

मिस ट्रैवीलियन ने उनको अपने शयनागार के बग़लवाले कमरे में दो मेज़ें लगाने का हुक्म दिया। दोनो नौकर आदेश-पालन के लिये चले गए। संध्या-समय की पोशाक पहने हुए राजा प्रकाशेंद्र ने आकर कहा—"कहिए, मिसेज़ वर्मा, क्या आप भी 'गेट होम' में चलेंगी? मैंने अभी फ़ोन से बैरिस्टर साहब से बातचीत की थी, तो उन्होंने कहा—'मैं मन्नो की इंतज़ारी में हूँ, उसके आने से आऊँगा।' मैंने जवाब दिया—'वह तो मिस ट्रैवीलियन के यहाँ हैं, उन्हें लेकर मैं आता हूँ। आप कमिश्नर साहब के बँगले चलें।' उन्होंने अपनी सम्मति दे दी। अब आपका क्या विचार है?"

मिस ट्रैवीलियन ने आपत्ति करते हुए कहा—"बड़ी मुश्किल से तो मैंने मिठाई खाने को तैयार किया, और आप बीच में आकर बेसुरा राग अलापने लगे। मैं किसी भाँति मिसेज़ वर्मा को बिना मिठाई खाए नहीं जाने दूँगी।"

राजा प्रकाशेंद्र ने मुस्किराकर कहा—"मिठाई में क्या मेरा हिस्सा नहीं है?"

मिस ट्रैवीलियन ने सहास्य उत्तर दिया—"क्यों नहीं, शौक़ से नोश फ़रमाइए। लेकिन आप तो बड़े लोगों के 'गेट होम' में जा रहे हैं, ग़रीबों के घर में मिठाई कैसे खायँगे!"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"टालने का यह सबसे शरीफ़ाना तरीक़ा है।"

दोनो हँसने लगे, लेकिन मनोरमा का व्याकुल हृदय हँसने के

लिये तैयार नहीं था। उसकी व्याकुलता को लक्ष्य कर राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"आज आप उदास क्यों हैं ?"

मनोरमा ने हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा—"नहीं, उदास तो नहीं हूँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराकर कहा—"मिस्टर वर्मा की अकस्मात् याद ने दुखी कर दिया है।"

राजा प्रकाशेंद्र और मिस ट्रैवीलियन हँसने लगी।

मिस ट्रैवीलियन ने एक खीरमोहन उठाते हुए कहा—"मिसेज़ वर्मा, खीरमोहन खाइए, अच्छा है। ललू हलवाई के खीरमोहन मशहूर हैं।"

मनोरमा ने सोने के वर्क़ से ढके हुए खीरमोहन को खाते हुए कहा—"हाँ, अच्छा है।" यह कहकर वह दूसरा खीरमोहन भी खा गई।

मिस ट्रैवीलियन की आँखों से शैतान राजा प्रकाशेंद्र की ओर झाँककर हँसने लगा। उसने हँसकर कहा—"संसार में दो ही वस्तुएँ श्रेष्ठ हैं, एक पुरुष और दूसरी स्त्री, और दोनों का जीवन तभी सुखमय हो सकता है, जब हिजाब यानी शर्म का पर्दा दोनों के दरम्यान उठ जाता है।" यह कहकर उसने वंकिम कटाक्ष से मनोरमा की ओर देखा। मनोरमा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

पाँच मिनट तक तीनों चुप रहे, और अपने-अपने हिस्से की मिठाई खाते रहे।

मिस ट्रैवीलियन ने पानी पीकर कहा—"अब पान-इलायची से आप लोगों की ख़ातिर करना होगा।"

यह कहकर वह कमरे से बाहर हो गई, और दूसरे ही क्षण दो पान, जो उसी शीशी के अर्क़ से भीगे हुए थे, मनोरमा को खिला दिए। मनोरमा की हालत इस समय विचित्र थी। उसकी रग-रग से उत्तेजना निकल रही थी। उसकी आँखें लाल थीं, जिनसे लालसा बाहर निकलने का उपक्रम कर रही थी।

मिस ट्रैवीलियन ने उसके गले में हाथ डालकर उसके कपोलों को चूम लिया।

मनोरमा ने कोई आपत्ति नहीं की, वरन् मिस ट्रैवीलियन का मुख प्रत्युत्तर में चूम लिया। मिस ट्रैवीलियन हँसने लगी, और वह मनोरमा के शरीर से लिपट गई। मनोरमा सब कुछ भूलकर मिस ट्रैवीलियन के गले से लिपटकर उसे प्यार करने लगी।

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"अरे भई, मैं पुरुष नहीं हूँ, मैं भी तुम्हारी तरह स्त्री हूँ।"

लेकिन मनोरमा ज्ञान-शून्य होकर उससे ही प्रेम करती रही।

मिस ट्रैवीलियन ने उसे अपने शयनागार में ले जाकर कहा—"यहाँ पलँग पर बैठकर आराम करो। स्त्री के जीवन का आनंद भोग और विलास में है। उस स्त्री से बढ़कर बेवकूफ़ दुनिया में कोई दूसरी नहीं, जो एक पुरुष की ग़ुलाम होकर रहती है। यहाँ आज राजा प्रकाशेंद्र हैं, जो तुम्हारे प्रेम में बरसों से तड़प रहे हैं। उनके साथ प्रेम करो, तुम्हारा हृदय शांत होगा।"

मनोरमा ने भर्राए हुए स्वर में कहा—"हाँ-हाँ।" आगे वह न कह सकी।

मिस ट्रैवीलियन मनोरमा को पलँग पर लिटाकर कमरे के बाहर हो गई। कमरे की सुगंध मनोरमा को पागल करने लगी। कामाग्नि से उसका अंग-अंग जल रहा था।

मिस ट्रैवीलियन ने कमरे के बाहर आकर राजा प्रकाशेंद्र से कहा—"जाइए राजा साहब, अभिमानिनी का घमंड तोड़िए। आज बड़ी मुश्किल से क़ाबू में आई है। मैंने दो ख़ुराकें पिला दी हैं, जिसमें कहीं बहँक न जाय। वह इस वक्त, अपने होश में बिलकुल नहीं है।"

यह कहकर वह हँसने लगी। पैशाचिक हँसी ने एक बार राजा प्रकाशेंद्र को भी दहला दिया।

उन्होंने मिस ट्रैवीलियन से कहा—"ऐसा न हो कि कोई आफ़त आवे।"

मिस ट्रैवीलियन ने सक्रोध कहा—"मूर्ख, का पुरुष इतना डरता है। इसी दिल से ऐयाशी करने चले हो। जाओ, देर न करो। याद रक्खो, ऐसा मौक़ा हाथ नहीं आवेगा। क्या बताऊँ, मैं पुरुष न हुई। जाओ, उसका सर्वनाश कर दो, मैं हुक्म देती हूँ। इस छोकरी ने मेरा बहुत अपमान किया है, जिसका यही दंड है। जाओ।"

राजा प्रकाशेंद्र जाने में हिचकिचाहट करने लगे। उनकी मनुष्यता अभी तक बिलकुल मरी नहीं थी।

मिस ट्रैवीलियन ने अपने कपड़ों के भीतर से दोनों शीशियाँ निकालकर, एक गिलास में मिलाकर कहा—"नामर्द ले, इसे पीकर मर्द बन।"

राजा प्रकाशेंद्र में उसका हुक्म टालने की हिम्मत न थी। वह चुपचाप पी गए। थोड़ी देर बाद उनकी भी दशा बदलने लगी। उनकी रग-रग में कामुकता दौड़ने लगी। वह मदांध होकर मिस ट्रैवीलियन की ओर बढ़े, लेकिन उसने उन्हें पकड़कर अपने शयनागार में ढकेलते हुए कहा—"दुष्ट, अब मर्द बनकर मुझ पर वार करने चला है। जा, तेरा आहार वह है।"

राजा प्रकाशेंद्र मदमत्त होकर उसके कमरे में चले गए। मिस ट्रैवीलियन ने कमरा बाहर से बंद कर लिया।

उसका चेहरा तमतमाया हुआ था, और पैशाचिक प्रसन्नता से वह कमरे में घूमने लगी। शैतान भी डरकर सोचने लगा—क्या यह मुझसे भी दो हाथ बढ़कर है? महात्मा ईसा स्वर्ग से अपने

जन्म-दिन के उपलक्ष में ईश्वर की पुत्री की यह काली करतूत देख-कर, शर्म से अपनी आँखें बंद कर उसकी आत्मा के कल्याण के लिये प्रार्थना करने लगे।

❀ ❀ ❀

आध घंटे बाद मिस ट्रैवीलियन हँसती हुई अपने शयनागार में गई। उसने जाकर देखा, मनोरमा बिलकुल अचेतावस्था में पड़ी है, और राजा प्रकाशेंद्र उसकी बग़ल में वैसे ही पड़े हैं। मनोरमा की दशा देखकर उसकी चतुर आँखों ने तुरंत जान लिया कि उसका पूर्ण रूप से सर्वनाश हो गया है। उसने अलमारी से एक दूसरी शीशी निकालकर, उसकी कुछ बूँदें जल में मिलाकर मनोरमा के मुख में डाल दिया। मनोरमा उसे पी गई। वह उसके होश में आने की प्रतीक्षा करने लगी। धीरे-धीरे मनोरमा ने अपने नेत्र खोल दिए, और चारो ओर विकलता से देखने लगी। उसकी स्मृति बिलकुल लुप्तप्राय थी।

मिस ट्रैवीलियन ने डपटकर कहा—"अरी पापिनी, तेरा भेद आज खुला। मैं पान लाने गई, और तू मदमत्त होकर अपने यार को लिए यहाँ लेटी है!"

मनोरमा घबराकर उठ बैठी। बग़ल में राजा प्रकाशेंद्र को देख-कर अपने शरीर पर नज़र डाली, तो वह शर्म से कटकर लहू-लुहान हो गई। उसके मुख से कोई शब्द नहीं निकला। यह स्वप्न है या सत्य, वह इस उधेड़-बुन में लग गई।

मिस ट्रैवीलियन उसकी यह दशा देखकर भयंकर स्वर से हँस पड़ी, और कहा—"पवित्रता की डींग मारनेवाली तुम्हारी यह दशा! ईश्वर ही ऐसे पापियों से बचावे। क्यों मनोरमाजी, हिंदू-धर्म की प्यारी लाड़ली, तुम्हारा यह नीच काम! तुमने मेरा पवित्र कमरा भ्रष्ट कर डाला। ऐसी ही मस्ती सवार थी, तो अपने यार को अपने

घर ले गई होतीं, या राजा साहब के बँगले में चली जातीं। अब पड़ोस के लोगों को बुलाकर दिखाती हूँ कि देखो, बैरिस्टर राधा-रमण साहब की लाड़ली मनोरमादेवी बी० ए० इस तरह कामातुर होकर ऐसा पापाचार करती फिरती हैं, और बेचारा राजेंद्रप्रसाद विलायत में बैठा अपनी स्त्री की बड़ाई में डींग मारते नहीं अघाता।"

यह कहकर वह फिर हँसने लगी। हँसी की कर्कशता ने मनोरमा को पूरी तरह सचेत कर दिया। वह अपनी साड़ी पहनती हुई पलँग के नीचे उतर पड़ी, और चोभ से मिस ट्रैवीलियन का गला पकड़कर कहा--"दुष्ट, तूने मुझे कुछ मिठाई में खिलाकर मेरा सत्यानाश कर दिया। आज मैं तुझे ज़िंदा न छोड़ूँगी।"

मिस ट्रैवीलियन ने बल-पूर्वक अपने को छुड़ाकर एक ज़ोर का धक्का मारा, बेचारी मनोरमा ज़मीन पर गिर पड़ी। अभागिनी की सहायता के लिये आँसू अपनी सुध-बुध खोकर दौड़े। मनोरमा ज़ोर-ज़ोर रोने लगी।

मिस ट्रैवीलियन ने हाँफते हुए कहा—"अब स्त्री-चरित्र फैलाकर रोने चली है। तुझे जन्म-भर न रुलाऊँ, तो मेरा नाम नहीं। चल हट, निकल मेरे घर से पापिनी वेश्या।"

मनोरमा ने तड़पकर कहा—"पापिनी और वेश्या तू है। देख, तेरे ऊपर मुक़द्दमा क़ायम कर तुझे जेल भिजवाऊँगी।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसकर कहा—"मेरे खिलाफ़ मुक़द्दमा क़ायम करोगी। इस्तग़ासा में क्या लिखोगी कि मिस ट्रैवीलियन के घर में राजा प्रकाशेंद्र के साथ मैं छिपे-छिपे विषय-भोग करती थी, जिसको उसने रोका। क्यों? यही लिखोगी, या और कुछ? फिर देखो, तुम्हारा कैसा नाम होता है। गली-गली के आदमी तुम्हारी प्रशंसा के गीत गाएँगे।"

मनोरमा अवाक् होकर उसकी ओर देखने लगी।

मिस ट्रैवीलियन ने शांत होकर कहा—"ख़ैर, मैं तेरा भेद छिपाऊँगी, क्योंकि मैं अपनी ज़बान से तुझे अपना मित्र कह चुकी हूँ। अब तुम्हारी इसी में भलाई है कि चुपचाप अपने घर जाकर बैठ रहो। इसकी चरचा किसी से मत करना, नहीं तो याद रखना कि राजेंद्रप्रसाद को हमेशा के लिये खो दोगी। चलो, मैं तुम्हें तुम्हारी मोटर तक पहुँचा आऊँ। बेचारा शोफ़र राह देखते-देखते परेशान हो गया होगा।"

मनोरमा में आपत्ति करने की शक्ति नहीं थी। वह कमरे के बाहर धीरे-धीरे हो गई।

मिस ट्रैवीलियन ने नौकर को बुलाकर मनोरमा की मोटर लाने का आदेश दिया। दूसरे ही क्षण मोटर बरामदे के पास आकर खड़ी हो गई। मनोरमा को मोटर में बिठाते हुए मिस ट्रैवीलियन ने उसके कान में कहा—"देखो, मैं यह बात सब भूली जाती हूँ, इसका ज़िक्र न करने में ही तुम्हारा कल्याण है। चुपचाप इस बात को दबा दो। मैं तुमसे प्रतिज्ञा करती हूँ कि मैं यह भेद किसी से ज़ाहिर न करूँगी।"

मोटर वेग से चल दी। बाहर की शीतल हवा ने मनोरमा को सारी स्थिति पर विचारने को उद्यत किया। मनोरमा को बिदा कर मिस ट्रैवीलियन पैशाचिक हँसी से हँसने लगी, और शैतान भी उस हँसी में योग देने लगा।

पंचम खंड

(?)

कुसुमलता ने उद्विग्न कंठ से पूछा—"अभी तक आपकी चिंता का अवसान नहीं हुआ। ज्यों-ज्यों दिन बीतते हैं, आपकी चिंता भी क्रमशः बढ़ती जाती है। इसका रहस्य मेरी समझ में नहीं आता।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने अपनी गंभीर मुद्रा को एक ज़बरदस्ती की मुस्कान से छिपाने का प्रयत्न करते हुए कहा—"चिंतित रहने का मैं तो कोई कारण नहीं देखता, मगर असली बात यह है कि मेरा चेहरा ईश्वर ने ऐसा ही बनाया है, या यों कहो कि मेरी सूरत ही मुहर्रमी है।"

यह कहकर वह हँस पड़े, लेकिन कुसुमलता का मुख और गंभीर हो गया।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कुसुमलता की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"आपको क्या मेरी बात पर विश्वास नहीं होता?"

कुसुमलता ने कुर्सी से उठते हुए पूछा—"क्या आप सत्य कहते हैं?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"यह क्या, आप तो चल दीं?"

कुसुमलता ने बैठते हुए कहा—"सत्य बात पर स्वतः विश्वास हो जाता है, उसमें यह पूछने की आवश्यकता नहीं रहती कि 'क्या मेरी बात पर विश्वास नहीं है।' आप तो मनोविज्ञान के आचार्य हैं, फिर मैं इस विषय में अधिक क्या कहूँ।"

कहते-कहते कुसुमलता की नारी-सुलभ कमज़ोरी आँखों के बाहर निकलने का उद्योग करने लगी।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने संकुचित होकर कहा—"क्या मैंने आप पर कोई बेजा दबाव डालने की कोशिश की है ? अगर ऐसा कोई अपराध भूल से हो गया हो, तो आप मुझे क्षमा करें ।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद के स्वर में कातरता का वास्तविक रूप झाँक रहा था ।

कुसुमलता ने अपनी आँखें पोंछते हुए कहा—"आप ऐसा क्यों कहते हैं । जहाँ तक मुझे याद है, मैंने कभी बेजा दबाव की शिकायत नहीं की ।"

कुसुमलता के स्वर में रुक्षता थी ।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कोई उत्तर नहीं दिया । वह चुपचाप पीले गुलाब की पँखुड़ियों को अलग कर उसके भीतर छिपे हुए उद्गारों का नीरव संदेश सुनने का प्रयत्न करने लगे ।

कुसुमलता ने मलिन स्वर से कहा—"यह आपका अन्याय है, जो..."

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने सिर उठाकर उसकी ओर अंतर्भेदी दृष्टि से देखकर कहा—"यह क्या ? मैंने आज तक अपनी जान में कोई अन्याय आपके साथ नहीं किया ।"

कुसुमलता ने उत्तेजित स्वर में कहा—"मैं पूछती हूँ कि क्या यह आप सत्य कहते हैं ?"

उत्तेजना कुसुमलता के उन्नत वक्षःस्थल को बड़े वेग से उद्वेलित कर रही थी । आँखों से ज्वाला निकलकर डॉक्टर आनंदीप्रसाद को पीड़ित करने लगी । उन्होंने कोई जवाब नहीं दिया ।

कुसुमलता फिर कहने लगी—"हृदय का उत्तर हृदय में स्वयं आ जाता है । उसके लिये किसी विशेष आधार की आयोजना नहीं करनी पड़ती । आज हमारे और आपके विवाह को हुए लगभग सवा वर्ष हो गया है, लेकिन मैं आज तक आपको समझ नहीं सकी ।

जैसी अज्ञान में विवाह के दिन थी, वैसी ही आज हूँ। आज तक क्या एक दिन भी आपने अपना कर्तव्य पालन किया है ?"

आवेग ने कुसुमलता के कंठ को अवरुद्ध कर दिया। वह संगमरमर की कुर्सी से उठ खड़ी हुई।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद के मुख पर असीम शांति विराज रही थी। उन्होंने शांत स्वर से कहा—"अगर मैंने आपके साथ अन्याय किया है, तो मैं उसकी क्षमा चाहता हूँ। अपना कर्तव्य पालन करने में यदि मुझसे कुछ भूल हो गई हो, तो आप महान हैं, मुझे क्षमा करें।"

कुसुमलता ने उत्तेजित स्वर में कहा—"यह व्यंग्य ही तो है। पति और पत्नी में ऐसा संबंध तो मैंने कहीं नहीं देखा।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने धीमे स्वर में कहा—"पति और पत्नी ?"

कुसुमलता ने ज़ोर के साथ कहा—"हाँ, पति और पत्नी। क्या इसमें भी आपको कोई संदेह है ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया "संदेह संबंध के विषय में नहीं है, संदेह है इस संबंध के सुख के विषय में, इस संबंध के परिणाम के विषय में। एक दिन पहले मैं आपसे कह चुका हूँ कि यह संबंध अभिशापित है, इस संबंध पर मेरे माता-पिता के शाप की मुद्रा अंकित है; इसका परिणाम न तो पति के लिये सुखप्रद होगा, और न पत्नी के लिये मंगलकारी। इसी भय से मैंने विवाह का विचार छोड़ दिया था, लेकिन भगवान् की इच्छा और कर्म-विपाक से आपको इस पंक में ला घसीटा। नतीजा जो कुछ है, वह आपको मालूम है, और जो वेदना मैं भोग रहा हूँ, वह मुझे ज्ञात है। मैं स्वप्न में भी यह नहीं चाहता कि आपको कोई कष्ट हो, मैं आपके किसी भी काम में हस्तक्षेप नहीं करता, आप स्वतंत्रता से अपना काम करें।"

कुसुमलता ने व्यंग्य के स्वर में कहा—"मैंने आपसे कभी स्वतंत्रता की दरख्वास्त तो नहीं की ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया - "हाँ, आपने कभी नहीं कहा, लेकिन इस ओर मुझे तो ध्यान देना वाजिब था ?"

कुसुमलता ने कहा—"ठीक है, आप उस अभिशाप पर विश्वास करते हैं, इसी मूर्खता-पूर्ण अन्ध विश्वास ने हमारे जीवन को नीरस और दुःखप्रद बना रक्खा है ।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने तीक्ष्ण दृष्टि से कुसुमलता की ओर देखते हुए कहा—"पहले विश्वास नहीं था, और इसी विश्वास से लड़ने के लिये ही मैंने आपके साथ विवाह किया था, लेकिन विवाह के बाद ही मुझे मालूम हुआ कि पिताजी के उस अभिशाप में कितनी सत्यता है । विवाह के बाद से अभी तक उस अभिशाप से लड़ रहा हूँ, लेकिन मेरा सारा कौशल व्यर्थ गया । मुझे हारकर कहना पड़ता है कि हमारा यह संबंध अभिशापित है । मेरे जीवन में वैवाहिक सुख का लेश नहीं है । जब मनुष्य सब प्रयत्न करके हार जाता है, तभी अदृष्टवादी होता है ।"

कहते-कहते डॉक्टर आनंदीप्रसाद उत्तेजित हो उठे, और ज़ोर की खाँसी आ गई । खाँसी के साथ खून की धारा छूट गई । उनके कपड़े और संगमरमर की कुर्सी लाल हो गई । कुसुमलता पथराई हुई आँखों से उस रक्त की ओर देखने लगी । उसके मुँह से एक शब्द न निकला । डॉक्टर आनंदीप्रसाद शिथिल होकर कुर्सी के एक कोने में झुक गए । क्षण-भर बाद कुसुमलता का ज्ञान वापस आया । उसने माली को बुलाया, और स्वयं पानी लेने के लिये दौड़ी ।

माली पानी का फ़ौवारा लिए हुए दौड़ा आया, और कुसुमलता पानी के छींटे देने लगी । डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने अपने नेत्र

धीरे-धीरे खोले। कुसुमलता के जी में जी आया। उसने नौकर से कहा—"बड़े बाबूजी से कहो कि फ़ोन से डॉक्टर दास को फ़ौरन् बुला लें। कहना, छोटे बाबू की तबियत बहुत ज़्यादा ख़राब हो गई है।"

माली परेशानी के साथ भागा।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने धीमे स्वर में हँसने का प्रयत्न करते हुए कहा—"घबराओ नहीं, मैं अब अच्छा हूँ।"

कुसुमलता के कंठ से शब्द न निकला। आवेग और वेदना उसकी आँखों के बाहर निकल रही थी।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उठने का यत्न करते हुए कहा—"अब आप तकलीफ़ न करें, मैं बिलकुल ठीक हूँ।"

इसी समय जस्टिस रामप्रसाद ने सवेग आकर पूछा—"क्यों बिट्टन, क्या हुआ?"

फिर डॉक्टर आनंदीप्रसाद को रक्त से सराबोर देखकर वह भी घबरा गए। वह प्रश्न-सूचक दृष्टि से उन दोनों की ओर देखने लगे।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने हल्की मुस्किराहट के साथ कहा—"कुछ नहीं, घबराने की कोई बात नहीं। यों ही थोड़ा-सा ख़ून खाँसी के साथ निकल पड़ा। अब तो बिलकुल ठीक है।"

जस्टिस रामप्रसाद ने कपड़े लाने का आदेश दिया। उन्होंने उनके कपड़े खोलते हुए कहा—"थोड़ा तो नहीं, यह तो बहुत ख़ून निकला है। बात क्या हुई। डॉक्टर दास को फ़ोन से बुला लिया है, वह आते हैं। यह क्या हुआ, कैसे हुआ, कुछ समझ में नहीं आता।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने अपने कपड़ों को स्वयं खोलते हुए कहा—"यह कुछ नहीं है, आप घबराइए नहीं, मैं आपको विश्वास

दिखाता हूँ कि मैं बिलकुल स्वस्थ हूँ। खून तो थोड़ा निकला था, लेकिन पानी पड़ने से ज़्यादा मालूम होता है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद के साहस ने जवाब दे दिया। शिथिलता ने अपना क़ब्ज़ा कर पुनः उनकी आँखें बंद कर दीं। जस्टिस रामप्रसाद ने उन्हें अपने हाथ के सहारे रोक लिया।

इसी समय नौकर के साथ डॉक्टर दास दौड़ते हुए आए।

उनको देखते ही जस्टिस रामप्रसाद ने घबराए हुए स्वर में कहा—"दौड़िए डॉक्टर साहब, बड़ी भयंकर घटना हो गई !"

डॉक्टर दास भी वह दृश्य देखकर स्तंभित रह गए। उन्होंने डॉक्टर आनंदीप्रसाद की नाड़ी देखते हुए कहा—"नाड़ी तो बहुत कमज़ोर चलती है। यह 'ऐक्सीडेंट' कैसे हुआ ?"

जस्टिस रामप्रसाद ने भय-विह्वल स्वर में उत्तर दिया—"मैं कुछ नहीं कह सकता। बिट्टन से पूछिए।"

कुसुमलता एक प्रस्तर-प्रतिमा की भाँति निश्चल खड़ी थी। वह पथराई हुई आँखों से अपने पति की ओर देख रही थी। बाह्य ज्ञान उसका पूर्णतया अंतर्हित हो गया था।

डॉक्टर दास ने पूछा—"आप ही बतलाइए कि क्या हुआ ?"

कुसुमलता की चेतना जागी। उसने प्रश्न-सूचक दृष्टि से डॉक्टर दास की ओर देखा।

डॉक्टर दास ने दुबारा प्रश्न किया—"क्या आप बतला सकती हैं कि यह ख़ून किस तरह निकला ?"

कुसुमलता ने धीमे स्वर में उत्तर दिया—"उत्तेजित होने से यह ख़ून खाँसी के साथ मुँह से गिरा है।"

डॉक्टर दास हृदय की परीक्षा करने लगे। नौकरों को पंखा चलाने को मना किया।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने धीरे-धीरे नेत्र खोलकर, डॉक्टर दास को

पहचान कर कहा—"कहिए, आपको भी तकलीफ़ उठानी पड़ी। मैं तो बिलकुल ठीक हूँ, थोड़ी-सी खाँसी आ गई थी।"

डॉक्टर दास ने डॉक्टरी कर्कशता से कहा—"आप लेटे रहिए, और चुप रहिए। बोलने की आवश्यकता नहीं।" फिर जस्टिस रामप्रसाद से कहा—"आप मेहरबानी करके इन्हें मकान के अंदर ले चलें, और इनके कपड़े बहुत जल्द बदला दें।"

जस्टिस रामप्रसाद ने उचित आदेश दे दिया। डॉक्टर आनंदी-प्रसाद स्वयं उठकर चलने के लिये उद्यत हुए, किंतु डॉक्टर दास ने उन्हें अनुमति नहीं दी। आराम कुर्सी पर बैठकर ही उन्हें जाना पड़ा। उनके पीछे-पीछे मंत्र-चालित पुत्तलिका की भाँति कुसुमलता भी चली गई।

जस्टिस रामप्रसाद ने उद्विग्नता से डॉक्टर दास से पूछा—"क्यों डॉक्टर साहब, खाँसी के साथ इतना ख़ून कैसे गिरा?"

डॉक्टर दास ने कोई उत्तर नहीं दिया।

जस्टिस रामप्रसाद ने फिर पूछा—"मेरी समझ में नहीं आता कि यह घटना क्योंकर घटी?"

डॉक्टर दास ने कोठी की ओर जाते हुए कहा—"अभी मैं निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकता। जब तक रोगी की पूरी तरह परीक्षा न कर लूँ, तब तक मैं कोई उत्तर नहीं दे सकता।"

जस्टिस रामप्रसाद का भय किसी प्रकार कम न हुआ, बल्कि और बढ़ गया। वह भय-विह्वल दृष्टि से डॉक्टर दास के मस्तिष्क के विचारों को पढ़ने का यत्न करने लगे। डॉक्टर दास भ्रू कुंचित किए गंभीर विचार-सागर में निमग्न धीरे-धीरे कोठी की ओर अग्रसर हो रहे थे।

---

(२)

डॉक्टर दास ने अपनी परीक्षा करने के बाद जस्टिस रामप्रसाद की ओर देखते हुए कहा—"कोई घबराने की बात नहीं। सब ठीक है।"

हालाँकि डॉक्टर दास के स्वर में सांत्वना थी, किंतु वह कितनी शुष्क थी, इस बात का अंदाज़ा जस्टिस रामप्रसाद को मिल गया। उन्होंने कोई उत्तर नहीं दिया। वह डॉक्टर आनंदीप्रसाद के सिर पर सस्नेह हाथ फेरने लगे। उनके सिर में हाथ लगाते ही उन्होंने चौंककर डॉक्टर दास की ओर देखा, और कहा—"डॉक्टर साहब, बुख़ार तो बड़े ज़ोर का चढ़ आया है।"

डॉक्टर दास ने केवल 'हूँ' कहा, और अपने बैग से दवाइयाँ निकालकर दवा बनाने लगे।

डॉक्टर दास ने दवा की एक ख़ूराक पिलाते हुए कहा—"इस दवा से बुख़ार कुछ कम पड़ जायगा। मैं एकांत में दो-तीन प्रश्न प्रोफ़ेसर साहब से पूछना चाहता हूँ।"

जस्टिस रामप्रसाद ने नौकरों को बाहर जाने का आदेश दिया। डॉक्टर दास ने फिर कहा—"आप और कुसुम भी जायँ, मैं बिलकुल एकांत चाहता हूँ।"

डॉक्टर के हुक्म के ख़िलाफ़ कोई अपील नहीं होती, उसका आदेश सख़्त-से-सख़्त क़ानून से भी अधिक प्रभावशाली होता है। जस्टिस रामप्रसाद कुसुमलता को लेकर कमरे के बाहर हो गए। कमरे में केवल डॉक्टर दास और आनंदीप्रसाद रह गए।

डॉक्टर दास ने अपनी कुर्सी उनके पास लाकर बैठते हुए पूछा—"अब सच्चा-सच्चा हाल कहिए, जनाब !"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने प्रश्न-सूचक दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए कहा—"पूछिए, मैं झूठ कभी नहीं बोलता, यह तो आपको मालूम है।"

डॉक्टर दास ने अंतर्भेदी दृष्टि से देखते हुए कहा—"दूसरों से झूठ आप भले ही न बोलते हों, लेकिन अपने से आप अवश्य कपट रखते हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कौतूहल-पूर्ण दृष्टि से देखा, और फिर कहा—"मैं आपका मतलब नहीं समझा।"

डॉक्टर दास ने कुछ संकोच के साथ कहा—"आपने जान-बूझकर अपने को ऐसी नाज़ुक हालत में पहुँचाया है। आपने अपने आत्मघात का पूरा आयोजन किया है। यह क्यों ? मैं इसका सबब जानना चाहता हूँ।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने अपने नेत्र नीचे करते हुए कहा—"मैंने जान-बूझकर अपनी हालत ऐसी की है, कुछ समझ में नहीं आता।"

डॉक्टर दास ने ज़ोर के साथ कहा—"हाँ, बेशक आपने ख़ुद यह अपनी हालत की है। आप ख़ुद अपनी जान देने के लिये ज़िम्मेवार हैं।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद चकित होकर उनकी ओर देखने लगे।

डॉक्टर दास ने कुछ शांत होकर कहा—"क्या आप कुसुम को, हमारी भोली-भाली कुसुम को, फिर उसी गड्ढे में डालना चाहते हैं, जिससे हम लोगों ने बड़ी मुश्किल से उसे बाहर निकाला है ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर दास ने फिर कहना आरंभ किया—"यह रोग आपका

नया नहीं है, यह कम-से-कम एक-दो महीने का है। आपको रोज़ बुख़ार आता था, और आज इधर यह ख़ून भी आपके फेफड़े से निकलता है, लेकिन क्या आपने एक दिन भी अपने को मुझे या किसी अन्य डॉक्टर को दिखलाया ? नहीं। दिखलाने की उस वक़्त ज़रूरत पेश आती, जब आप अपनी जीवन-रक्षा की ज़रूरत समझते। लेकिन जब आप आत्मघात का विचार कर रहे थे, तो आप यह उपाय कैसे करते। आज जब रोग ने आपको अपने क़ाबू में कर लिया है, और जब उसने ख़ुद-बख़ुद अपना इज़हार भयंकर वेग से किया, तब इसका भेद मालूम हुआ। प्रोफ़ेसर साहब, आपने यह प्रवंचना कर हम सबको दुखी करने का क्यों आयोजन किया है, मेरी समझ में कुछ नहीं आता।"

डॉक्टर दास का कंठ अवरुद्ध हो गया। डॉक्टर आनंदीप्रसाद अपने नेत्र बंद किए हुए चुपचाप कुछ सोचने लगे।

डॉक्टर दास ने फिर कहना आरंभ किया—"वह पुरुष कापुरुष है, जो जीवन की लड़ाई लड़ने से घबराता है। जीवन का आनंद तो संघर्षण में ही है। आप-जैसे विद्वान्, वेदांती, धर्मनिष्ठ भी जीवन-संग्राम से घबराते हैं। मुझे तो आपसे बहुत उम्मीदें थीं, किंतु आप इतने भीरु निकले!"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने फिर भी कोई उत्तर नहीं दिया।

डॉक्टर दास ने उनके सिर पर सप्रेम हाथ फेरते हुए कहा—"पहलेपहल यह ख़ून आपके मुँह से कब निकला था?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने खाँसकर अपने गले को साफ़ करते हुए कहा—"कोई दस-पंद्रह रोज़ हुए, जब थूक में मिला हुआ निकला था।"

डॉक्टर दास के नेत्र चमकने लगे। उनका अनुभव प्रमुदित

होकर मुस्किराने लगा। उन्होंने फिर पूछा—"कितने-कितने दिन के अवकाश में यह ख़ून गिरता रहा ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने धीमे स्वर में उत्तर दिया—"पहले पाँच-छ दिन के अंतर में ख़ून गिरता था, परंतु आजकल नित्य-प्रति निकलता है। आज कुछ विशेष रूप से निकला है।"

डॉक्टर दास के नेत्र निस्तेज हो गए। आशंका की कृष्ण छाया से आवृत हो गए।

डॉक्टर दास ने फिर पूछा—"आपको बुख़ार कब से आता है ?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उत्तर दिया—"बुख़ार तो दो-एक महीने से आता होगा। मैंने कभी इस पर कोई ध्यान नहीं दिया, मामूली ज्वर समझा, और ख़याल किया कि स्वतः अच्छा हो जायगा, व्यर्थ में किसी को कष्ट देने से फ़ायदा क्या है ? बड़े बाबू साहब को मेरी ज़रा-सी तबियत ख़राब होने का हाल मालूम हो जाता है, तो बड़े चिंतित होते हैं, इसलिये मैंने कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। डॉक्टर साहब, आपने मेरे ऊपर बड़े-बड़े अभियोग लगाए हैं, जिनका उत्तर मैं क्योंकर दूँ, कुछ समझ में नहीं आता।"

डॉक्टर दास ने शुष्क स्वर में कहा—"अभियोग मिथ्या नहीं, बिलकुल सत्य हैं। वास्तव में तुमने अपने आत्मघात का पूरा आयोजन कर लिया है। लेकिन मैं भी तुम्हारा पीछा नहीं छोड़ने का। मैं तुम्हारे लिये यमराज से भी लड़ूँगा। किंतु मैं इसमें तुम्हारा सहयोग चाहता हूँ। तुम्हें मेरी सहायता करनी पड़ेगी। राजयक्ष्मा-जैसे भयंकर रोग से भी मैं लड़ने के लिये प्रस्तुत हूँ, परंतु तुम्हें मेरी सहायता करनी पड़ेगी। दूसरे डॉक्टर रोगी को उसका मर्ज़ नहीं बतलाते, लेकिन मैंने तो स्पष्ट इसीलिये किया है, जिसमें आपका पूरा सहयोग प्राप्त कर सकूँ। क्या मुझे वचन देते हैं कि

आप अपने आत्मघात की इच्छा को ठुकराकर मुझे मेरे उपचार में सहायता देंगे ?"

कहते-कहते डॉक्टर दास की आँखें स्नेह से आर्द्र हो गईं।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद को मालूम हुआ कि वास्तव में उन्हें लोग कितना चाहते हैं। उन्होंने धीमे कंठ से कहा—"हाँ, मैं आपसे पूर्णतया सहयोग करूँगा।"

डॉक्टर दास ने कहा—"अच्छा, अगर आप सहयोग करेंगे, तो मैं आपके जीवन की रक्षा कर सकूँगा, यह मेरा विश्वास है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद की आँखें बंद हो गईं। दवा के प्रभाव से वह थोड़ी ही देर में गहरी नींद में सो गए।

डॉक्टर दास चिंतित नेत्रों से देखते हुए उठ खड़े हुए। कमरे के बाहर निकले ही थे कि जस्टिस रामप्रसाद ने उनकी ओर व्यग्रता से देखा। उस दृष्टि में भावना का एक असीम संसार छिपा हुआ था, जिसने डॉक्टर दास की हृत्तंत्री को भी झंकृत कर दिया।

जस्टिस सर रामप्रसाद ने पूछा—"डॉक्टर साहब, आप क्या अनुमान करते हैं ?"

डॉक्टर दास ने एक कुर्सी पर बैठते हुए कहा—"अनुमान नहीं, निश्चय हो गया कि यह दिक़ की बीमारी है।"

जस्टिस रामप्रसाद ने विस्फारित नेत्रों से पूछा—"तपेदिक़ ! यह कैसे ? नहीं-नहीं, आपका अनुमान ग़लत है। ऐसा कभी हो ही नहीं सकता।"

डॉक्टर दास ने गंभीरता के साथ कहा—"ऐसे नाज़ुक विषय में मैं क्या आपसे मज़ाक़ करूँगा ? आपके दामाद साहब आज दो-तीन महीनों से बीमार हैं, लेकिन उन्होंने यह बीमारी आप लोगों से छिपाई, और ख़ुद भी इसका इलाज नहीं किया। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि वह किसी अज्ञात कारण से आत्मघात कर रहे हैं।"

इसी समय कुसुमलता ने सवेग आकर पूछा—"क्या कहा डॉक्टर साहब, वह आत्मघात कर रहे हैं ?"

कुसुमलता के स्वर में एक विचित्र खनखनाहट थी, और वेदना का एक संसार छिपा हुआ था। डॉक्टर दास और जस्टिस रामप्रसाद, दोनों भय-विह्वल दृष्टि से उसकी ओर देखने लगे।

डॉक्टर दास ने मुस्किराकर कहा—"मैं प्रोफ़ेसर प्रसाद के विषय में नहीं कह रहा था, मैं किसी अन्य के बारे में कह रहा था। प्रोफ़ेसर प्रसाद तो कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो जायँगे। आपके घबराने की कोई बात नहीं।"

कुसुमलता ने नत नेत्रों से कहा—"आप मुझे बहला नहीं सकते, मैंने अपने कानों से सुना है। आज मैं स्वयं दो-तीन महीने से उनमें परिवर्तन देखती हूँ, मैंने कई बार कहा कि किसी डॉक्टर से वह अपना इलाज करावें, लेकिन उन्होंने कभी मेरी बात पर ध्यान नहीं दिया।"

कहते-कहते कुसुमलता के नेत्र आर्द्र हो गए।

धीरे-धीरे वह कमरे से बाहर हो गई।

जस्टिस रामप्रसाद ने बड़ी उद्विग्नता से कहा—"डॉक्टर साहब, हमारे अनुकूल ईश्वर का विधान नहीं है। ज्यों-ज्यों मैं सुखी होना चाहता हूँ, त्यों-त्यों विपत्ति के पहाड़ मेरे ऊपर गिरते हैं। नहीं मालूम होता कि दैव की क्या इच्छा है ?"

डॉक्टर दास ने सहानुभूति-पूर्ण स्वर में कहा—"आप घबराइए नहीं, भगवान् सब मंगल करेंगे। प्रोफ़ेसर प्रसाद की अवस्था अभी आशाजनक है। मुझे तो उम्मीद है कि अगर रोगी का सहयोग मुझे मिले, तो मैं अब भी इस रोग का नाश कर सकता हूँ।"

जस्टिस रामप्रसाद ने आकुल स्वर से पूछा—"क्या छोटे बाबू इसमें सहयोग नहीं करेंगे ? आप यह कैसे कहते हैं ?"

डॉक्टर दास ने गंभीरता से कहा—"इसके कई कारण हैं। अव्वल तो यह कि जहाँ तक मेरा ख़याल है, उन्होंने जान-बूझकर यह बीमारी बुलाई है। अत्यधिक चिंता और कोई ज़बरदस्त, आठों पहर रहनेवाली चिंता भी कभी-कभी इस रोग का कारण हुआ करती है। मैं यह नहीं समझता कि उन्हें कौन-सी चिंता है। मगर इतना अवश्य है कि वह किसी अव्यक्त कारण से चिंतित रहते हैं। जब शुरू-शुरू में इस भयंकर बीमारी के लक्षण प्रकट हुए, तो उन्होंने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया, बल्कि उसे छिपाने का प्रयत्न करते रहे। वह जानते थे कि वह यक्ष्मा-जैसे रोग में धीरे-धीरे ग्रस्त हो रहे हैं, लेकिन उन्होंने इसकी पूरी तरह अवहेलना की। इससे मालूम होता है कि उन्हें अपने जीवन से कोई प्रेम नहीं।"

जस्टिस रामप्रसाद ने कहा—"मैं नहीं जानता कि उन्हें अपने जीवन से क्यों वैराग्य पैदा हुआ। जब से बिट्टन का विवाह हुआ है, तब से मैं उन्हें अपने पुत्र का स्थानीय समझता हूँ। यही नहीं, अपनी सारी जायदाद उनके और बिट्टन के नाम छोड़ जाने का इरादा है। इसी विषय का मैंने वसीयतनामा लिख डाला है। मेरी तरफ़ से अगर उन्हें कोई शिकायत है, तो मैं इसका कोई कारण नहीं देखता। अब रहा बिट्टन के निस्बत, जहाँ तक मैंने लक्ष्य किया है, उससे यही अनुमान होता है कि दोनों में कोई वैमनस्य नहीं है, एक दूसरे के प्रति प्रेम है। फिर समझ में नहीं आता कि यह आत्मघात का उद्योग क्यों किया है। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि आपका यह विचार निराधार है।"

डॉक्टर दास ने प्रश्न किया—"अगर आत्मघात का उद्योग नहीं है, तो फिर उन्होंने इस भयंकर रोग को पनपने क्यों दिया?"

जस्टिस रामप्रसाद ने सिर खुजलाते हुए कहा—"इसका कारण

मेरी समझ में नहीं आता। मुमकिन है, उन्होंने इसे मामूली रोग समझकर लापरवाही दिखलाई हो। नौजवान अक्सर अपने स्वास्थ्य के बारे में असावधान हुआ करते हैं। नए ख़ून में यह रोग बहुत आसानी से छिप जाता है, और 'अच्छा हो जायगा', कहकर टाल दिया करते हैं। ख़ैर, जो कुछ हो, यह तो आपको निश्चय है कि यह यक्ष्मा है। क्या अब भी बचने का उपाय है? आप तो इस रोग के विशेषज्ञ हैं, और आपकी ही बदौलत बिट्टन की मा क़रीब-क़रीब अच्छी हो गई थीं। अगर बिट्टन के विधवा होने का हाल न सुनती, तो वह अवश्य उठ खड़ी होती। अब हमारे परिवार की शांति आपके हाथ में है, जैसा मुनासिब समझें, करें। रुपए की चिंता न करें, उनके बचाने के लिये जितना भी ख़र्च होगा, करूँगा। आप यह भली भाँति समझ लें कि हमारी बिट्टन के सारे सुख-सुहाग का दारोमदार आप पर है। यदि किसी अन्य डॉक्टर की सहायता लेना पसंद करें, तो आप सहर्ष परामर्श ले सकते हैं।"

डॉक्टर दास ने चिंतित स्वर में कहा—"मुझे अपना उत्तरदायित्व मालूम है। कुसुम आपकी नहीं, मेरी लड़की है। चाहे मेरा अनुमान ग़लत हो, और ईश्वर करे वह ग़लत हो, मैंने प्रोफ़ेसर प्रसाद का सहयोग प्राप्त करने के लिये उन्हें सचेत किया, और कुछ भला-बुरा कहा भी। उनकी मुखाकृति से यह मुझे अवश्य ही भासित हुआ कि वह मेरे साथ सहयोग करेंगे। इस मर्ज़ में और ख़ासकर उस वक़्त, जब कि मर्ज़ बढ़ गया हो, जब तक रोगी का सहयोग प्राप्त नहीं होता, चिकित्सक को तब तक सफलता नहीं मिलती। आत्मघात का उद्योग छुड़ाने के लिये ही मैंने बहुत साफ़-साफ़ तरीक़े पर बातें की हैं।"

जस्टिस रामप्रसाद ने डॉक्टर दास का हाथ उस भाँति पकड़

लिया, जैसे कोई डूबता हुआ आदमी अपनी जान बचानेवाले का हाथ पकड़ता है। उनका हाथ काँप रहा था, आँखें निस्तेज थीं, और मुख एक विषाद-छाया से आवृत था।

डॉक्टर दास ने सप्रेम उत्तर दिया—"आप इतना मत घबराएँ। भगवान् सब कुशल करेंगे। अगर इस मौक़े पर हमें किसी की चिंता है, तो वह है कुसुम की। कुसुम सब सच्चा हाल जान गई है, वह बड़ी भावुक है। उसके सँभालने का भार आप लें, और मैं प्रोफ़ेसर प्रसाद का भार वहन करता हूँ। क्या आप कुसुम को थोड़े दिनों के लिये किसी अन्य स्थान में न भेज सकेंगे?"

जस्टिस रामप्रसाद ने कहा—"कहाँ भेजूँ? और अगर कहीं भेजने का भी प्रबंध कर लूँ, तो क्या वह उन्हें छोड़ने के लिये तैयार होगी?"

डॉक्टर दास ने कुछ सोचते हुए कहा "हाँ, यह तो मुश्किल ही दिखाई देता है। मगर फिर भी कोशिश तो करना चाहिए। क्या वह थोड़े दिनों के वास्ते वकील राधारमण के यहाँ जाकर नहीं रह सकती। उनकी लड़की से तो कुसुम का घनिष्ठ संबंध है।"

जस्टिस रामप्रसाद ने शोक-पूर्ण स्वर में कहा—"उनके यहाँ बिट्टन नहीं रह सकती। वह आजकल बड़ी मुसीबत में हैं। मन्नी आज सात-आठ महीने से बीमार है, और ऐसा मालूम होता है कि वह भी यक्ष्मा से पीड़ित है। तीन-चार दिन हुए, जब राधारमण मिले थे, तब उन्होंने सारा हाल-चाल बतलाया था। आज कई महीने से वह वकालत नहीं करते, मन्नी के लिये सब कुछ छोड़ दिया है।"

डॉक्टर दास ने आश्चर्य के साथ पूछा—"मुझे इसकी ख़बर नहीं, उनका इलाज कौन करता है?"

जस्टिस रामप्रसाद ने जवाब दिया—"कर्नल स्माइल्स, जो

यक्ष्मा के विशेषज्ञ हैं। इसके अलावा, दो डॉक्टर कलकत्ते और दो बंबई से बुलाए गए हैं।"

डॉक्टर दास ने कहा—"तब फिर प्रोफ़ेसर प्रसाद को भी उन लोगों को दिखलाइए। मैं आज ही शाम को उनके यहाँ जाऊँगा, और उन विशेषज्ञों से साक्षात्कार कर प्रोफ़ेसर प्रसाद को दिखलाने के लिये ले आऊँगा। मैं भी देखूँगा कि मञ्जी की कैसी तबियत है। भगवन्! उन्हें चारो तरफ़ से विपत्ति-ही-विपत्ति दिखाई पड़ती है।"

जस्टिस रामप्रसाद ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर आकाश की ओर शून्य दृष्टि से देखा।

डॉक्टर दास चुपचाप कमरे के बाहर चले गए।

(३)

चाय का कप देते हुए मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"आज की चाय बहुत अच्छी बनी है। यह कश्मीरी चाय है। राजा विजय-सिंह ने एक डिब्बा भेजा है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने मुस्किराते हुए कहा—"अब यह कोई नई 'चिड़िया' मालूम होती है।"

मिस ट्रैवीलियन की भृकुटियाँ चढ़ गईं। सुंदर, मंडलीकृत कपोल रक्ताभ होने लगे।

राजा प्रकाशेंद्र हँस पड़े, और हँसते-हँसते कहा—"ख़ुदादाद हुस्न ज्यों-ज्यों तपाओ, त्यों-त्यों खुलता है।"

मिस ट्रैवीलियन ने सक्रोध कहा—"चुप रहो, मुझे फ़िज़ूल की हँसी अच्छी नहीं मालूम होती। आजकल तुम अपनी सीमा से बाहर निकलने लगे हो। मैं सचेत किए देती हूँ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उस झिड़की की उसी तरह परवा न की, जिस तरह अड़ियल टट्टू कोचवान के चाबुकों की परवा नहीं करता। उन्होंने हँसते हुए कहा—"ठीक है, मैं आपका दंड सर-आँखों पर लेने के लिये उत्सुक हूँ। आप मेहरबानी करके सज़ा की तजवीज़ तो करें।"

मिस ट्रैवीलियन का क्रोध गलकर बह गया, उसने एक अदा के साथ मुस्किराकर कहा—"तुम बड़े बेहया हो।"

राजा प्रकाशेंद्र ने सिगरेट का धुआँ निकालते हुए कहा—"इश्क़ के मकतब में पहला सबक़ है बेहयाई का। मैं तो इश्क़ की युनिवर्सिटी का ऑनर्स-समेत ग्रेजुएट हूँ।" फिर गंभीर होकर

कहा—"यह कोई नई बात तो आप नहीं फ़रमा रही हैं। यह तो वही पुराना जर्जर तोहफ़ा है, जो सदियों से माशूक़ अपने आशिक़ के लिये व्यवहार में लाते हैं।"

मिस ट्रैवीलियन ने हँसकर कहा—"नाटी, ओल्ड क्राय !"

राजा प्रकाशेंद्र ने सिर नत कर अदब के साथ कहा—"अलबत्ता, भारत-जैसी सर-ज़मीन में यह एक नया बीज बोया गया है, लेकिन यह भी पुराना है। यहाँ न सही, लेकिन इँगलैंड में तो यह बरसों से इस्तेमाल हो रहा है। मैं तो आपको नवीनता की खान समझता हूँ, लेकिन आप मेरी धारणा को झूठा साबित कर रही हैं।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"चुप रहो, फ़िज़ूल की बकवास से दिमाग़ ख़राब होता है। तुमने मेरे सामने, मेरे ख़ास कमरे में मनोरमा को अग़वा किया, तब तो मैंने कुछ बुरा नहीं माना, और अगर किसी राजा ने, मेरा कृपा-पात्र होने के लिये, एक डिब्बा चाय भेज दी, तो आप बिगड़ गए।"

राजा प्रकाशेंद्र का चेहरा अपने आप मलिन हो गया। जैसे बिजली का बटन उलटा घुमा देने से अंधकार हो जाता है, वैसे ही मनोरमा के नाम ने राजा प्रकाशेंद्र के मुख की ज्योति को अंतर्हित कर दिया।

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराकर कहा—"क्यों, क्या हुआ ? यह बदहवासी क्यों ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने वैसे ही मलिन मुख से पूछा—"कुछ मालूम हुआ कि आजकल मनोरमा की कैसी तबियत है ?"

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्कान-सहित कहा—"मालूम होता है, अभी आपकी तबियत भरी नहीं। अब क्या उसे मार डालना ही चाहते हो।"

राजा प्रकाशेंद्र ने भय-विह्वल दृष्टि से कहा—"क्या इतनी हालत

नाज़ुक है । अगर वह मर गई, तो इसका ज़िम्मेवार मैं तुम्हें ठहराऊँगा । तुम्हीं ने उस दवा की बदौलत मुझे और उसे पशु बना दिया था। मैंने तुम्हारे शैतानी चक्र में पड़कर ही उसका सर्वनाश किया । तुम जानती हो कि मैं आज नौ महीने से सुख की नींद नहीं सो सका हूँ । जब तक शराब का नशा रहता है, तब तक तो मैं वह भीषण घटना भूले रहता हूँ, लेकिन जहाँ वह नशा उतरा, फ़ौरन् उसकी करुण-मूर्ति मेरी आँखों के सामने आ जाती है । एलिनर, मैं नहीं जानता कि मुझे क्या हो गया है, लेकिन मेरे कानों में कोई बार-बार कहता है कि तुम दोनो इसके ज़िम्मेवार हो । अगर यही हालत रही, तो थोड़े ही दिनों में मैं पागल हो जाऊँगा ।"

मिस ट्रेवीलियन बड़े ज़ोर से हँस पड़ी । उसकी हँसी की कर्कशता कमरे में गूँजकर राजा प्रकाशेंद्र की कमज़ोरी का परिहास करने लगी ।

उसने व्यंग्य-पूर्ण स्वर में कहा—"इसी हौसले पर इश्क़ के मकतब में दाख़िल हुए हो ? जिसका मान मर्दन करने के लिये तुम इतना परेशान थे, उसी को मौक़ा मिलने पर हाथ से खोए देते थे, इसीलिये तुम्हें अपनी अमूल्य दवा की दो बूँदें पिलाकर हिम्मत पैदा करनी पड़ी । मुझे नहीं मालूम था कि तुम इतने बुज़दिल हो । इससे अच्छा है कि तुम चूड़ियाँ पहनकर घर में बैठो ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उत्तर दिया—"तुम मेरी कमज़ोरी पर हँसो भले ही, लेकिन मेरी आत्मा मुझे बराबर धिक्कारती है । मैं नहीं जानता कि तुम कौन हो, और तुमने कैसे मेरे ऊपर इतना अधिकार जमा लिया है । मैं अब तुम्हारे इशारों का ग़ुलाम-मात्र हूँ । मेरा इतना उद्धत स्वभाव था, लेकिन मैं इस समय पाले हुए कुत्ते

के समान हूँ, जो तुम्हारी चढ़ी हुई भृकुटियाँ देखकर डर जाता हूँ, और तुम्हारे मुख पर हँसी देखकर दुम हिलाने लगता हूँ। मैं स्वयं नहीं जानता कि मेरा ऐसा परिवर्तन क्यों हुआ ?"

मिस ट्रैवीलियन ने भ्रू कुंचित कर तेज़ी से कहा—"बस, अब चुप रहो, अपनी कमज़ोरियों का इज़हार देकर अपनी बुज़दिली की नमाइशें मत बढ़ाओ। तुममें मर्दानियत की बू नहीं। तुम्हारी स्त्री को मिस्टर वर्मा भोगते हैं, लेकिन तुममें प्रतिहिंसा, इंतिक़ाम का भाव पैदा नहीं होता। अगर तुम ने मिस्टर वर्मा की स्त्री को पामाल किया, तो इसमें क्या दोष है, कौन गुनाह है ? ईंट का जवाब पत्थर होता है। मनोरमा मेरी हँसी उड़ाती थी, मेरा मज़ाक़ उड़ाती थी, लेकिन उस दिन के बाद आज तक, हालाँकि उस घटना को घटित हुए लगभग नौ महीने हो गए, उसे नहीं देखा। उसका मुँह हमेशा के लिये बंद कर दिया है।"

यह कहकर वह बड़े वेग से हँसी। शैतान अपना प्रतिद्वंद्वी देखकर सर से पैर तक काँप उठा।

मिस ट्रैवीलियन ने अलमारी से मदिरा का एक प्याला भरकर देते हुए कहा—"लो, बुज़दिली के पुतले, इसे पीकर आदमी बनो। दुनिया शराब पीकर शैतान बनती है, लेकिन तुम इंसान बनते हो।"

राजा प्रकाशेंद्र बिना कोई आपत्ति किए वह गिलास पी गए, और दूसरा गिलास पीने की इच्छा की। मिस ट्रैवीलियन ने बिना आपत्ति किए दूसरा गिलास भी भर दिया, और ख़ाली बोतल बाहर फेंक दी। राजा प्रकाशेंद्र ने दूसरी साँस में वह गिलास भी ख़ाली कर दिया, सुरादेवी राजा प्रकाशेंद्र को मनुष्य बनाने लगी।

मिस ट्रैवीलियन ने उनकी आँखों पर सुरूर चढ़ते देखकर कहा—"क्या तुम्हें अब भी मनोरमा के संबंध में पछतावा है ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"अच्छा ही हुआ, तुमने मुझे प्रतिशोध लेने में सहायता की, इसके लिये मैं तुम्हें हृदय से धन्यवाद देता हूँ। तुम क्या माँगती हो, माँगो।"

मिस ट्रैवीलियन ने सविनोद कहा—"अभी तो मुझे कोस रहे थे, लेकिन अब इनाम देने को तैयार हो। यह तो बताओ, रानी मायावती की कोई ख़बर मिली ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने जवाब दिया—"मैं कुछ नहीं जानता। उस बदज़ात का नाम मेरे सामने मत लो। मेरा उससे कोई संबंध नहीं।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"यह कैसे हो सकता है, रूपगढ़ की रानी को मैं कैसे भूल सकती हूँ ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने गर्जकर कहा—"कौन उसे रूपगढ़ की रानी कहता है ? रूपगढ़ की रानी वह नहीं है।"

मिस ट्रैवीलियन ने सरलता-पूर्वक पूछा—"फिर रूपगढ़ की रानी कौन है ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने जवाब दिया—"रूपगढ़ की रानी तुम हो—तुम......तुम......एलिनर ट्रैवीलियन, समझीं...... ।"

राजा प्रकाशेंद्र सुरा के आवेश में अधिक नहीं बोल सके।

मिस ट्रैवीलियन ने मन-ही-मन मुस्किराकर कहा—"तुम कहीं नशे में बहँक तो नहीं गए। मैं रूपगढ़ की रानी नहीं हूँ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने अपने को सावधान करते हुए कहा—"मैं नशे में नहीं हूँ, मैं साबित होश-हवास में हूँ। मैं जानता हूँ, तुम्हें वैध रूप से उस आसन पर प्रतिष्ठित नहीं किया है, लेकिन अब शीघ्र ही करूँगा। जब तुम कहो, उसी दिन तुम्हारे साथ विवाह करके तुम्हें रानी बना दूँ। जानती हो, रूपगढ़ रियासत की

सालाना आमदनी डेढ़ करोड़ रुपया है। यू० पी० की सबसे बड़ी रियासत है।"

मिस ट्रैवोलियन ने कुर्सी पर से उठकर, राजा प्रकाशेंद्र के गले में हाथ डालकर कहा—"क्या सचमुच तुम मुझे रूपगढ़ की रानी बनाना चाहते हो ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने उसे अपनी गोद में बिठाते हुए कहा—"बेशक, बेशक। तुम और मैं इस तरह एक दूसरे में घुल-मिल गए हैं कि एक का जीवन बग़ैर दूसरे के असंभव है। तुम्हें रूपगढ़ की रानी बनाने में मेरा कल्याण है। बोलो, तुम क्या इसे मंज़ूर करती हो ?"

मिस ट्रैवोलियन ने किंचित् भीत स्वर में कहा—"दुनिया क्या कहेगी, और हमारी संस्था का नाम मिट्टी में मिल जायगा। लोग क्या कहेंगे।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"दुनिया, दुनिया किस चिड़िया का नाम है। दुनिया रुपए का नाम है। जहाँ दो-चार लंबी-लंबी दावतें कीं, और दस-बीस हज़ार रुपया पानी में डाला कि लोग हमारे-तुम्हारे विवाह को आदर्श विवाह कहेंगे। जहाँ कुछ थोड़े हज़ार पत्र-संपादकों को दिए नहीं कि हमारे आदर्श विवाह के चित्रों से संसार के समाचार-पत्र भर जायँगे। दुनिया तो एक दूसरा ही गीत अलापेगी। अब रहा सवाल तुम्हारी संस्था का, सो यह तुम भी जानती हो, और मैं भी कि यह धोखे की टट्टी तुमने शिकार खेलने के लिये खड़ी की है। तुम रुपयों का शिकार करती हो, और मैं सुंदरियों का। रूपगढ़ की रानी हो जाने से तुम्हारे रुपयों का सवाल मिट जायगा, और फिर तुम मेरे लिये आसानी से शिकार ला सकती हो। इस परेशानी-नाहक़ का नेस्तनाबूद होना ही ठीक है।"

मिस ट्रैवीलियन ने सप्रेम राजा प्रकाशेंद्र के कपोलों पर अपना प्रेम-चिह्न अंकित करते हुए कहा—"रूपगढ़ की रानी होने के बाद मैं फिर यह नीच काम तुम्हें नहीं करने दूँगी।"

राजा प्रकाशेंद्र ने मुस्किराकर कहा—"अगर तुम भी बंद कर दोगी, तो मैं भी बंद कर दूँगा।"

मिस ट्रैवीलियन ने एक प्रेम की चपत लगाकर कहा—"तुम्हारे सिवा क्या आज तक मैंने किसी को आत्मसमर्पण किया है?"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"इसके विषय में मैं शर्त नहीं लगा सकता। इसका सत्य उत्तर तो तुम्हीं दे सकती हो। ख़ैर, मुझे कुछ इससे बहस नहीं। मैं तो बहुत आज़ाद ख़याल का आदमी हूँ। बस, मुझे इसी से पूर्ण संतोष है कि तुम्हें मेरी ज़रूरत है, और मुझे तुम्हारी। तुम्हें रूपगढ़ की रानी बनाने में मेरी कोई हानि नहीं है। बस, मैं संतुष्ट हूँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने वल्लरी की भाँति राजा प्रकाशेंद्र से लिपटकर पूछा—"तो वह शुभ मुहूर्त कब होगा?"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"जब तुम कहो, मैं तो हमेशा तैयार हूँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने उनके अधरों का रस पान करते हुए बहुत ही धीमे स्वर में कहा—"अगले महीने की आजवाली तारीख़ को ठीक रहेगा। आज अगस्त की १२वीं तारीख़ है, और हमारा विवाह १२ सितंबर को होना चाहिए। शादी का पूरा सामान करने के लिये कम-से-कम एक महीना तो ज़रूर चाहिए।"

राजा प्रकाशेंद्र ने मिस ट्रैवीलियन के अधरों को पान करते हुए कहा—"ठीक है, १२ सितंबर निश्चित रहा। कल ही से सारे समाचार-पत्रों में इसकी चर्चा होनी चाहिए। दुनिया जान ले कि एक आदर्श विवाह होनेवाला है। हमारे-तुम्हारे सम्मिलित फ़ोटो

नए-नए रूप में निकलने चाहिए। इस विवाह का इतना हलकंप मचना चाहिए कि इँगलैंड में बैठी हुई मायावती और उसके बाप को मालूम हो जाय कि रूपगढ़ की रानी के पद से उसे हटा दिया गया है, और कोई दूसरा ही उसकी जगह प्रतिष्ठित होगा। विश्व चकित होकर कहे कि ऐसा अद्भुत विवाह न कहीं देखा है, न सुना। दोनो हाथ खोलकर रुपया ख़र्च करो। मेरे बाप ख़ज़ाने में करोड़ों रुपयों की मालियत छोड़ गए हैं, उसका सद्व्यय हम-तुम मिलकर ही करेंगे। हम दोनो की सम्मिलित पूजा से ही शैतान प्रसन्न होगा।"

राजा प्रकाशसिंह हँसने लगे। मिस ट्रैवीलियन भी हँसने लगी। फिर दोनो एक दूसरे के अधर पान करने लगे। शैतान अपने बालकों को आमोद-प्रमोद में मग्न देखकर वृद्ध द्वार-रक्षक की भाँति परदा खींचकर द्वार की रखवाली करने लगा।

(४)

राजेश्वरी ने बहुत धीमे स्वर में पुकारा—"मनी !"

मनोरमा ने अपने नेत्र खोल दिए, और शून्य दृष्टि से अपनी मा की ओर देखा। उस दृष्टि को देखकर राजेश्वरी को रुलाई आ गई। उसने घूमकर अपनी आँखों के आँसू पोंछते हुए कहा—"अब कैसी तबियत है ? मनी !"

मनोरमा ने भय-विह्वल दृष्टि से चारो ओर देखा, फिर धीमे स्वर में कहा—"अब तो अच्छी है। अम्मा, तुम रोती क्यों हो ?"

राजेश्वरी के नेत्रों से आँसू ज़बरदस्ती गिरने लगे। मनोरमा भी रोने लगी।

राजेश्वरी मनोरमा के आँसू देखकर अपना रोना भूल गई। उसे हृदय से लगाते हुए कहा—"मनी, तुम रोओ नहीं। तुम्हीं इस अभागिनी का सर्वस्व हो। तुम किसी बात का दुख न करो। तुम्हारी शरम मैं ओढ़ लूँगी। तुम्हारे पेट के बालक को मैं अपना कहकर संसार में परिचय दूँगी। हम लोगों के अतिरिक्त यह भेद कोई तीसरा व्यक्ति नहीं जानेगा। तुम अधीर मत हो।"

मनोरमा ने फूट-फूटकर रोते हुए कहा—"कोई तीसरा नहीं जानेगा, लेकिन भगवान् तो सब जानते हैं। जो मेरे रक्त और मांस से पल रहा है, जिसे मैं अपने पेट में छिपाए हुए हूँ, वह एक पाप-चिह्न है। अम्मा, मैं पवित्र नहीं रही। मैं किस तरह उन्हें अपना मुँह दिखलाऊँगी ? अम्मा, अम्मा !"

कहते-कहते मनोरमा व्याकुल होकर रोने लगी।

राजेश्वरी ने उसे हृदय से लगाए हुए कहा—"तुम उनको

चिंता मत करो । राजेंद्र बाबू को जब सब हाल मालूम होगा कि तुम्हें पाविन ने बेहोश करके तुम्हारा सत्यानास कराया है, वह कुछ नहीं कहेंगे । मैं उन्हें जानती हूँ । उनकी तरफ़ से तुम भय न करो । मैं इसका ज़िम्मा लेती हूँ ।"

मनोरमा ने रोते-रोते कहा—"वह कुछ न कहेंगे, मैं जानती हूँ । लेकिन मैं तो पवित्र नहीं रही । मेरी अपवित्रता मुझे आप खाए जा रही है । अम्मा, मेरा मरना ही श्रेयस्कर है ।"

राजेश्वरी ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"बेटी, जानती हो, तुम्हारे मरने से हमारा सबका क्या हाल होगा । मैं तो तुम्हारे साथ ही परलोक चलूँगी, और मुझे विश्वास है कि राजेंद्र भी तुम्हारे बिना न रह सकेंगे । मन्नी, तुम्हारी इस दशा का उत्तर-दायित्व मेरे ऊपर है । मैंने ही तुम्हें अपने स्वार्थ के वशीभूत होकर राजेंद्र के साथ इँगलैंड जाने से रोक रक्खा । मैं सचमुच तुम्हारी विमाता हूँ, और वैसा ही किया है ।"

कहते-कहते राजेश्वरी फूट-फूटकर रोने लगी ।

मनोरमा ने हिचकियाँ लेते हुए कहा—"तुम्हारी-जैसी माताएँ ही कितनी होंगी ? तुम क्यों अफ़सोस करती हो, यह सब कर्म-विपाक है । मैं बहुत सुखी थी, अहंकार और अभिमान से ओत-प्रोत हो रही थी, उसी का दंड विधाता ने दिया है । मैं दैव के विधान को नत-मस्तक होकर ग्रहण करती हूँ । यदि मुझे कोई चिंता है, तो इस पापी बालक की । पाप के चिह्न का मरण ही श्रेयस्कर है । संसार की माताएँ अपनी संतान की मंगल-कामना करती हैं, किंतु मैं उसका मरण चाहती हूँ ।"

मनोरमा कातर होकर फिर रोने लगी ।

राजेश्वरी ने सांत्वना देते हुए कहा—"यह बालक तो मेरा हो जायगा, इसकी चिंता तुम क्यों करती हो । आज नौ महीने से

तुम्हें समझाती हूँ, लेकिन तुम मानतीं नहीं । तुमने रो-रोकर अपनी यह हालत कर डाली । तुम्हारे पापा ने भी सब काम छोड़कर तुम्हारी सेवा का भार अपने ऊपर लिया है । तुम्हारे रोग से लड़ने के लिये हिंदुस्थान ही नहीं, दुनिया के मशहूर चार-चार डॉक्टरों को बुलाया है ।"

मनोरमा ने बीच ही में टोककर कहा—"यह सब फ़िज़ूल क्यों ख़र्च करती हो अम्मा, संसार का बड़ा-से-बड़ा डॉक्टर मुझे अच्छा नहीं कर सकता । भगवान् ने मेरी प्रार्थना सुन ली है । वह मुझे अपवित्र करके जीवित नहीं रक्खेंगे । मेरी ओर मौत अग्रसर होती आ रही है । मेरा मरण निश्चय है ।"

राजेश्वरी ने व्याकुल होकर कहा—"तुम हमेशा यही बकवास लगाए रहती हो । क्या तुम नहीं जानतीं कि तुम्हारे ये शब्द सुनकर मेरे मन में कितना दुख होता है । मन्नी, मेरी प्यारी मन्नी, यह तुम न कहो ।"

मा-बेटी थोड़ी देर के लिये चुप होकर एक दूसरे के हृदय का स्पंदन सुनती रहीं । इसी समय घड़ी ने तीन बजा दिए ।

राजेश्वरी ने सचेत होकर कहा—"दवा पी लो मन्नी, समय हो गया ।"

मनोरमा ने मलिन स्वर में कहा—"लाओ, तुम लोगों को धैर्य बँधाने के लिये पी लूँ । अम्मा, किसी दवा से कोई फ़ायदा नहीं होगा ।"

राजेश्वरी ने उठकर, गिलास में दवा डालकर पिलाते हुए कहा—"तुम बार-बार यह क्या कहती रहती हो ।"

मनोरमा ने दवा पीकर आँखें बंद कर लीं ।

घड़ी की आवाज़ सुनकर बाबू राधारमण ने पूछा—"तीन बज गया है, मन्नी को दवा पिला दी ।"

राजेश्वरी ने अपने नेत्र पोंछते हुए कहा—"हाँ, पिला दी है।"

बाबू राधारमण ने राजेश्वरी को दूसरे कमरे में आने के लिये संकेत किया।

राजेश्वरी के वहाँ जाने पर उन्होंने कहा—"मैंने तुमसे कितनी मर्तबा मना किया कि मन्नी के पास रहकर मत रोया करो, लेकिन तुम मानतीं नहीं। तुम्हारे रोने से उसके मन में बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है; उसे तो हमेशा प्रसन्न-चित्त रखना चाहिए। अगर तुम्हें उसके पास जाने को मना करता हूँ, तो तुम मानतीं नहीं, और फिर उसके सामने रोती हो। उसकी हालत दिन-पर-दिन ख़राब होती जा रही है।"

कहते-कहते स्वयं बाबू राधारमण की आँखों में आँसू भर आए। आगे कुछ न कहकर कमरे में लगी घड़ी की ओर देखने लगे।

राजेश्वरी ने आँसू पोंछते हुए कहा—"मैं क्या करूँ, उसकी हालत देखकर आँसू अपने आप आ जाते हैं। भगवान् से रात-दिन प्रार्थना करती हूँ कि उसके बदले मुझे उठा ले, लेकिन वह सुनता ही नहीं। मन्नी के बिना मेरा जीवन मुश्किल होगा।"

बाबू राधारमण ने साहस संचित करके कहा—"मन्नी अवश्य अच्छी होगी। डॉक्टर तो यही आशा बँधाते हैं। देखें भगवान् की क्या इच्छा है। क्या इस अवसर पर राजेंद्र को बुलाया जाय? अभी तक मैंने सिर्फ़ यही लिखा है कि आजकल मन्नी कुछ बीमार है। पहले तो घूमने का बहाना करके पाँच-छः महीने टाल दिए, लेकिन आज की चिट्ठी से मालूम होता है कि वह बहुत उद्विग्न हैं। तार से मन्नी के स्वास्थ्य के बारे में समाचार मँगाया है। मेरी समझ

में नहीं आता कि क्या लिखूँ। एक चिट्ठी मन्नी के भी नाम की है। डाक 'एयरमेल' से आई है।"

राजेश्वरी ने आँखें पोंछते हुए कहा—"मन्नी को पत्र देने में कोई हानि नहीं है, इससे तो उसका मन बहलेगा, और रह गया मन्नी के बारे में लिखने का, सो उससे पूछ लेना चाहिए। वह उन्हें अपना मुख दिखलाना नहीं चाहती। ऐसी हालत में मैं भी कुछ ज़ोर नहीं देती, और न कुछ कहती हूँ। एक दिन उसने कहा था—"अगर तुम उन्हें बुला लोगी, तो समझ लेना, मेरा वही दिन आख़ीर दिन होगा। मैं अपने पेट में घूँसे मार-मारकर इस बालक की और अपनी हत्या कर डालूँगी। मैं इस अपवित्र शरीर से उन्हें छूकर कलुषित नहीं करूँगी, इन अपवित्र नेत्रों से उन्हें देखकर उन पर पाप की छाया नहीं डालूँगी।' तब से मैं बुलाने का नाम नहीं लेती। अब जैसा उचित मालूम पड़े, वैसा करो। मेरी तो सब बुद्धि लोप हो गई है, मैं कुछ नहीं कह सकती।"

कहते-कहते राजेश्वरी की आँखों में पुनः आँसू भर आए।

इसी समय नौकर ने आकर कहा—"डॉक्टर दास आए हैं।"

बाबू राधारमण बाहर चले गए।

डॉक्टर दास ने चौंककर कहा—"अरे, आप तो पहचाने नहीं जाते! क्या आप बीमार थे? यह क्या बात है?"

बाबू राधारमण ने शुष्क हँसी के साथ कहा—"मैं तो बीमार नहीं हूँ, लेकिन मेरी मन्नी बीमार है।"

डॉक्टर दास ने कहा—"हाँ, कल जस्टिस रामप्रसाद के यहाँ सुना था। यह सुनकर तो उसे देखने आया हूँ। आपने मुझे बिलकुल भुला दिया।"

बाबू राधारमण ने उत्तर दिया—"हाँ, आपको दिखलाया नहीं,

यह ज़रूर ग़लती हुई, इसके लिये माफ़ी चाहता हूँ। मैं कई महीने तक मन्नी को लिए पहाड़ों पर रहा, और वहीं इसका इलाज कराता रहा। अब पहाड़ों पर रहना नामुमकिन समझकर लखनऊ आया हूँ, इसलिये आपको तकलीफ़ नहीं दी। आइए, मन्नी को देखिए।"

डॉक्टर दास बाबू राधारमण के पीछे-पीछे चल दिए।

बाबू राधारमण ने मन्नी के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—"मन्नी, डॉक्टर दास आए हैं। अब कैसी तबियत है?"

मनोरमा ने धीरे-धीरे नेत्र खोलकर डॉक्टर दास की ओर देखा, और प्रणाम किया। डॉक्टर दास मनोरमा की परीक्षा करने लगे।

लगभग आध घंटा परीक्षा करने के बाद डॉक्टर दास ने कहा—"ठीक है।"

यह कहकर वह बाहर आ गए।

बाबू राधारमण ने पूछा—"आपका क्या विचार है?"

डॉक्टर दास ने कहा—"भगवान् की इच्छा होगी, तो ठीक ही होगा। अब मैं उन डॉक्टरों से मिलना चाहता हूँ, जो मन्नी का इलाज करते हैं।"

बाबू राधारमण ने उत्तर दिया—"अभी थोड़ी देर में सब आते होंगे। मैं उनसे परिचय करवा दूँगा। आप अपने विचार तो बतलाइए।"

डॉक्टर दास ने जवाब दिया—"अभी मैं निश्चित रूप से कुछ नहीं कह सकता। इसमें कोई शक नहीं कि हालत ख़राब है, और हमल होने से इसकी हालत और चिंताजनक है। कमज़ोरी हद दरजे की है। ऐसी अवस्था में कमज़ोरी कहीं-कहीं घातक हो जाती है।"

बाबू राधारमण की चिंता और बढ़ गई।

डॉक्टर दास ने कहा—"लेकिन धैर्य खोने की कोई वजह नहीं है। मैंने इससे भी ख़राब केसेज़ को आराम होते देखा है। कर्नल स्माइल्स की क्या राय है? वह तो इस रोग के स्वयं भुक्तभोगी और विशेषज्ञ हैं।"

बाबू राधारमण ने उत्तर दिया—"वह तो कहते हैं कि 'डिलवरी' होने के बाद निश्चय रूप से कह सकेंगे कि कैसी हालत है।"

डॉक्टर दास ने उत्तर दिया—"यही मेरा भी ख़याल है। आपको सुनकर दुख होगा कि जस्टिस रामप्रसाद के दामाद प्रोफ़ेसर प्रसाद भी इसी भयंकर रोग से पीड़ित हैं! उनकी हालत भी चिंता-जनक है।"

बाबू राधारमण ने दुःखित स्वर में कहा—"उन पर भी मुसीबत का पहाड़ टूटा। मैं आज कई महीनों से उन लोगों से नहीं मिला। इसके अलावा इस छूत की बीमारी से मैं सबको अलाहिदा रखने के लिये किसी को बुलाता भी नहीं, और जो आता है, उसे दूर ही से समझा-बुझाकर टाल देता हूँ। बिहन एक-दो मर्तबे पहले आई थी, लेकिन उसको मनी से मिलने नहीं दिया। पहाड़ पर से आने के बाद वे लोग नहीं आए। कुछ दिन हुए, जस्टिस साहब से मुलाक़ात हुई थी, लेकिन उन्होंने मुझसे कुछ नहीं कहा।"

डॉक्टर दास ने जवाब दिया—"यह भेद तो कल ही सबको मालूम हुआ है। कल उनके मुँह से ख़ून गिरा, और जब मैं बुलाया गया, तो परीक्षा के बाद मुझे मालूम हुआ कि रोग बड़ी भयंकर अवस्था में पहुँच गया है। हालाँकि वह जानते थे कि यह रोग उन्हें दबा रहा है, लेकिन उन्होंने उसका उपचार नहीं किया; उपचार की कौन कहे, पूरी-पूरी लापरवाही दिखाई।"

बाबू राधारमण ने जवाब दिया—"इसका क्या कारण है?

उन्होंने ही पहलेपहल परसाल आजकल के ही दिनों में यहाँ आकर मन्नी की मा को चेतावनी दी थी कि 'आप ध्यान रक्खें, मन्नी को रोज़ बुख़ार आता है, मुझे भय है कि कहीं थाइसेस न हो जाय।' ऐसा विचारवान्, दूरंदेश युवक कैसे उसी लापरवाही का शिकार हुआ, कुछ भी समझ में नहीं आता।"

डॉक्टर दास ने कहा—"यही तो मेरी समझ में भी कुछ नहीं आता। मुझे तो यह ख़याल होता है कि वह जान-बूझकर अपने को मौत के मुँह में डालना चाहते थे।"

बाबू राधारमण ने कहा—"तब तो यह एक तरह का आत्मघात का आयोजन है। इसको क़ानूनी आत्मघात कह सकते हैं, क्योंकि ऐसा आत्मघात क़ानून के शिकंजे से बाहर है।"

डॉक्टर दास ने चिंतित स्वर में कहा—"मैं सबसे ज़्यादा दुखी हूँ कुसुम के लिये, न-मालूम कितनी कोशिशों के बाद उसका विवाह हुआ था, और फिर वह उसी गड्ढे में गिर रही है, जहाँ से आप लोगों ने उसे निकाला था। विधाता का यह परिहास कितना अर्थ-पूर्ण है।"

बाबू राधारमण क्षण-भर के लिये अपना दुख भूल गए। जस्टिस रामप्रसाद और कुसुमलता के लिये वह भी कातर हो गए। थोड़ी देर बाद कहा—"जस्टिस साहब की दशा बड़ी शोचनीय हो जायगी। भगवान् की सृष्टि में न्याय नहीं है। संसार के दो दुखी परिवार सुख की किंचित् छटा देखकर हमेशा के लिये रोने का आयोजन कर रहे हैं।"

बाबू राधारमण हताश होकर कुर्सी पर गिर पड़े।

डॉक्टर दास ने कहा—"प्रोफ़ेसर प्रसाद को मैं उन डॉक्टरों को दिखलाना चाहता हूँ, जिनको आपने बंबई और कलकत्ते से बुलाया है। इसीलिये मैं आया हूँ।"

बाबू राधारमण ने कहा—"आप सहर्ष उन्हें ले चलिए। मैं भी चलता हूँ। विधाता का क्रूर परिहास तो देखना पड़ेगा।"

यह कहकर वह अंदर चले गए। मनोरमा के नाम का पत्र उसे देकर कहा—"यह पत्र भाभी को पढ़ने को दे दो। मैं ज़रा जस्टिस रामप्रसाद के यहाँ डॉक्टरों को लेकर जाता हूँ। अगर कोई ज़रूरत हो, तो फ़ौरन् फ़ोन से बुला लेना। मैं आध घंटे के अंदर-अंदर आ जाऊँगा।"

राजेश्वरी मनोरमा को वह पत्र देने के लिये चली गई। और बाबू राधारमण डॉक्टर दास को लेकर दूसरे डॉक्टरों के बँगले चले गए।

---

(५)

दूसरे दिन पलँग की बिछावन साफ़ करते हुए मनोरमा के तकिए के नीचे, राजेश्वरी को बाबू राजेंद्रप्रसाद का पत्र मिला। वह वैसा ही बंद था। मनोरमा ने उसे खोलकर पढ़ा तक न था। राजेश्वरी ने प्रश्न-भरी दृष्टि से मनोरमा को देखकर पूछा—"तुमने अब तक यह पत्र नहीं पढ़ा ?"

मनोरमा आँखें बंद किए आराम-कुर्सी पर बैठी थी। उसने वैसे ही जवाब दिया—"नहीं पढ़ा, पढ़ने की इच्छा नहीं होती।"

राजेश्वरी ने पूछा—"उनका क्या अपराध है ?"

मनोरमा ने कहा—"तो फिर अपराधी कौन है ?"

राजेश्वरी ने उत्तर में कहा—"अपराधिनी मैं हूँ। तुम्हारी इस दुर्दशा की जवाबदेह मैं हूँ, तुम्हारी सौतेली मा।"

मनोरमा ने कोई उत्तर नहीं दिया।

राजेश्वरी फिर कहने लगी—"मनी, जो कुछ दंड देना हो, मुझे दो। अपने को और उन्हें क्यों देती हो। वास्तविक अपराधिनी तो मैं हूँ। मैं ईश्वर की साक्षी देकर कहती हूँ कि अगर तुम स्वस्थ होने के लिये उद्योग करने का वचन दो, तो मैं ज़हर का प्याला पीने को तैयार हूँ। तुम्हारे लिये ही मैं जीवित रहना चाहती हूँ, नहीं तो मैं मरने में ही आनंद समझती हूँ। मेरी रानी, क्या इस अभागिनी की कातर प्रार्थना नहीं सुनोगी ?"

मनोरमा ने धीर कंठ से कहा—"अम्मा, मेरे ज़िंदा रहने से कोई फ़ायदा नहीं। मैं मरते-मरते हत्यारिनी नहीं बनना चाहती, इसलिये अभी तक यह भार वहन किए हुए हूँ। भगवान् की इच्छा,

और क्या कहूँ। तुम्हारा अपराध इसमें नहीं है, केवल लीलामय की लीला है। आपदाएँ जीवन को महत् बनाने के लिये आती हैं। अच्छा, लाओ, देखूँ, इस चिट्ठी में क्या लिखा है। और क्या होगा, मेरे रोने के लिये बहुत कुछ होगा!"

यह कहकर, मनोरमा पत्र खोलकर पढ़ने लगी।

राजेश्वरी खिसकती हुई कमरे के बाहर हो गई।

पत्र इस प्रकार था—

प्रियतमे,

तुम इतनी निष्ठुर हो सकती हो, यह मुझे स्वप्न में भी अनुमान नहीं था। मुझे देश और तुम्हें छोड़े हुए लगभग एक साल के ऊपर हो गया; और इसी थोड़े समय में तुमने मुझे भुला दिया। मैं यह विश्वास नहीं कर सकता, परंतु इसके अतिरिक्त और क्या समझूँ। तुम्हारे इस मौन का क्या कारण है?

जब शुरू-शुरू में मैं आया था, तो तीन-चार महीने तक तुम्हारे पत्र आते रहे। लेकिन उसके बाद तुमने न-मालूम मेरे किस अपराध पर रुष्ट होकर पत्र भेजना बिलकुल बंद कर दिया। सबसे आख़िरी तुम्हारा पत्र तारीख़ २४ दिसंबर का था, फिर इसके बाद पत्र नहीं है। इस अपरिचित देश में तुम्हारे उन्हीं पुराने पत्रों को बार-बार, क़रीब-क़रीब रोज़ाना, पढ़कर अपने अधीर और उद्विग्न चित्त को शांति देने का निष्फल आयोजन करता हूँ। इस समय तो वे ही मेरी परम निधि हैं। उन्हें देखकर, पढ़कर और मनन कर तुम्हारे बारे में सोचता हूँ कि जो इन अक्षरों में छिपा हुआ प्रेममय हृदय है, क्या वही इस समय इतना शुष्क और नीरस हो सकता है। विश्वास तो नहीं होता, किंतु इसके अतिरिक्त दूसरा क्या निष्कर्ष निकालूँ।

मेरी आराध्य देवी, अगर मुझसे कोई अपराध हुआ हो, तो मैं नत-जानु होकर क्षमा की भीख माँगता हूँ। मेरा अपराध क्षमा करो।

जान या अनजान में अगर कोई अपराध हो गया हो, तो उसे प्रेम के नाते, पत्नीत्व के नाते और मनुष्यत्व के नाते भूल जाओ। अब अधिक कष्ट मत दो। अब इसके आगे परीक्षा में एक पल-भर नहीं ठहर सकता। देवी, जो कुछ हुआ हो, क्षमा करो!

बाबूजी के पत्र तो आते हैं, उनमें तुम्हारे स्वास्थ्य का समाचार रहता है, लेकिन न-जाने क्यों उस पर विश्वास नहीं होता। मेरा मन, नहीं, मेरी आत्मा आज कई दिनों से बड़ी व्याकुल है। बाहर, भीतर, सर्वत्र मैं अंधकार, केवल अंधकार देखता हूँ। मेरा मन अपने आप रोने लगता है—जी में आता है कि रोऊँ, खूब ज़ोर से रोऊँ, यहाँ तक कि मेरे रोदन से संसार गूँज उठे, दिशाएँ काँप उठें। मैं नहीं समझता, यह बेचैनी क्यों है। लेकिन मेरी मन्नी, मैं सत्य ही बहुत व्याकुल और बेचैन हूँ। जब तक तुम्हारे हाथ का लिखा पत्र नहीं मिलता, शायद यह बेचैनी कभी दूर न होगी।

इस पत्र को लिखते समय मेरे सामने वह दृश्य है, जो तुमसे विदा होते समय बांबे डाक्स पर देखा था। तुम्हारी वह करुणा और विकल मूर्ति मेरे सामने बार-बार आकर मुझे रुलाती है। क्या सचमुच तुम इतनी रुग्ण और अस्वस्थ हो गई हो कि दो लाइनें भी नहीं लिख सकतीं। अगर ऐसा है, तो मेरा विदेश में रहकर अपने यश और मान के लिये परिश्रम करना व्यर्थ है, और ऐसी ख्याति के लिये धिक्कार है। मन्नी, तुम्हें दुखी कर मेरा मान मेरे लिये अपमान है, मेरी कीर्ति मेरे लिये बदनामी है। क्या तुमने अभी तक मुझे नहीं पहचाना। मैं तो समझता था कि मैं तुम्हारे में इतना मिल गया हूँ, और तुम मुझमें इतना मिल गई हो कि पार्थक्य असंभव है। एक हृदय की पीड़ा दूसरे को अनुभव होती है, यहाँ का दर्द वहाँ खटकता है, और वहाँ का दर्द यहाँ। मेरे मन में कोई बार-बार कहता है कि तुम दुखी हो, किसी महान्

पीड़ा से व्याकुल हो। मन अनुभव करता है, किंतु आँखें देख नहीं सकतीं। तुम्हारी सिसकियों की आवाज़ तो ज़रूर कभी-कभी सुनता हूँ, किंतु भ्रम समझकर हृदय को बोध देता हूँ। मगर हाय, अधीर मन किसी तरह नहीं मानता! यह समझ लेना कि अगर तुम्हें मेरे इस प्रवास के कारण ज़रा भी दुख हुआ, तो मैं अपने को कभी क्षमा नहीं करूँगा, और अगर कहीं तुम्हें कुछ हो गया—ईश्वर न करे कि कोई अघट घटना घट जाय—तो तुम मुझे आत्मघात करने के लिये उत्तेजित करोगी। मैं नहीं जानता कि मैं क्या लिख रहा हूँ। कोई ज़बरदस्त शक्ति मेरी क़लम को चला रही है, और मैं रोता हुआ लिख रहा हूँ।

मन्नी, जीवन से भी अधिक प्रिय मन्नी, मेरी इस दयनीय दशा पर रहम करो, मैं केवल दया की भिक्षा माँगता हूँ। जैसा भी हो, अपनी दशा का सच्चा हाल लिखो। मुझे किसी पर विश्वास नहीं है—स्वयं अपने ऊपर नहीं है—केवल तुम पर है। संसार मिथ्या है, केवल तुम भगवान् की तरह सत्य हो। तुरंत तार से इत्तिला दो, नहीं तो मैं पंजाबमेल से आता हूँ। अब मैं यह पीड़ा नहीं सहन कर सकता। संसार की कोई शक्ति मुझे तुम्हारे पास आने से रोक नहीं सकती।

और क्या लिखूँ...?

तुम्हारा ही
राजेंद्र

इसके बाद केवल वेदना की बूँदों के चिह्न थे, जो प्रकाश में धूमिल होकर मौन भाषा में लेखक के घोर विलाप की साक्षी दे रहे थे। मनोरमा अपने को सँभाल न सकी, बड़े वेग से रो पड़ी।

रुदन का शब्द सुनकर राजेश्वरी दौड़ी आई, और रोने का कारण पूछने लगी।

मनोरमा ने वह पत्र उन्हें देते हुए कहा—"अम्मा, मैं नहीं मरूँगी, उनको इस तरह छोड़कर नहीं मर सकती। वह सब जानते हैं, सब सुनते हैं, केवल देखते नहीं। अब मैं उन्हें दुखी नहीं रख सकती। धिक्कार है मेरी पवित्रता पर, धिक्कार है मेरे जीवन पर। ऐसे देवता को दुखी कर मैं क्या करूँगी। तुम उन्हें आज ही तार देकर बुला लो। वह अब एक दिन भी ख़ुद न ठहरेंगे, लेकिन तार मिलने से उन्हें कुछ शांति मिल जायगी। मेरे लिये वह इतना कातर हैं, देखो, देखो, पत्र-भर आँसुओं से भीगा हुआ है। मैं जानती हूँ कि वह कितने दुखी हैं। हाय भगवान्, मेरा ऐसा कौन भयंकर अपराध था, जो ऐसा कठोर दंड दिया है।"

मनोरमा बालकों की भाँति बिलख-बिलखकर रोने लगी। राजेश्वरी के आँसू तो थमते ही न थे। पत्र पढ़कर वह भी फूट-फूट-कर रो रही थी।

इसी समय बाबू राधारमण ने आकर कहा—"तुम दोनो रोना बंद नहीं करोगी।"

राजेश्वरी ने रोते-रोते कहा—"ऐसा ही पत्थर का कलेजा होगा, जो न रोए। मैं क्या करूँ, भगवान् ने रोने के लिये ही हमारी सृष्टि की है। रोना ही पड़ेगा।"

बाबू राधारमण ने वह पत्र लेकर देखा, और कहा—"यह तो राजेंद्र बाबू का पत्र है, इसमें क्या कोई अशुभ समाचार है?"

बाबू राधारमण के स्वर में व्यग्र चिंता का आभास था।

राजेश्वरी ने कहा—"समाचार तो कोई अशुभ नहीं है, भगवान् की दया से इतना ही कौन कम है, मगर तुम आज ही तार देकर उन्हें हवाई जहाज़ से बुला लो। उन्हें अधिक दिनों तक अंधकार में रखने से कहीं उनके जीवन पर न आ बने। जाओ, अभी जल्दी जाओ।"

मनोरमा ने अपने दोनो हाथों से मुँह ढककर कहा—"नहीं पापा, तार देने की कोई ज़रूरत नहीं।"

बाबू राधारमण किंकर्तव्य-विमूढ़ होकर राजेश्वरी की ओर देखने लगे। राजेश्वरी ने उन्हें नेत्रों के संकेत से जाने का आदेश दिया। वह कमरे से बाहर हो गए।

मनोरमा ने रोते हुए कहा—"मैंने क्षणिक आवेश में कह दिया कि उन्हें बुला लो, और तुमने पापा को तार देने के लिये भेज दिया। तुम्हीं कहो, मैं यह कलुषित मुख उन्हें कैसे दिखाऊँगी? मैं अपवित्र क्या उनके योग्य हूँ? वह देवता हैं, और मैं पाप-पंक में फँसी हुई राक्षसी! उन्हें छूकर क्या उन्हें भी अपवित्र बना दूँ। नहीं, मैं ऐसा नहीं होने दूँगी। उनकी पवित्रता को अक्षुण्ण बनाए रक्खूँगी। उनके आने के पहले ही मैं प्रस्थान कर जाऊँगी। भगवान् दीनानाथ अब तो मेरी प्रार्थना सुन लो। दैव, उनके आने के पहले-पहले मुझे अपने पास बुला लो।"

राजेश्वरी ने उसे दोनो हाथों से दबाकर कहा—"मन्नी, मन्नी, ईश्वर के लिये चुप रहो, उत्तेजित न हो। ऐसे अमंगल शब्द न निकालो। तुम्हारे जीवन के ऊपर हम तीन आदमियों का जीवन निर्भर है। ऐसी निठुर मत बनो, कुछ तो दया करो। क्या अपने पापा को, मुझे और अपने पति को रुलाने में तुम्हें आनंद मिलता है? तुम्हारे पापा सब काम-काज छोड़कर तुम्हारे लिये अपना जीवन होम कर रहे हैं। मेरी आँखों से आँसू कभी सूखते नहीं, और तुम्हारे पति की, तुम्हारे सर्वस्व की कराहट की गुंजार यहाँ तक आती है। मन्नी, क्या कर रही हो। जिसे तुम पवित्रता कहती हो, क्या वह हम तीन व्यक्तियों का बलिदान लेकर संतुष्ट होगी? अगर ऐसा है, तो मैं आज ही, नहीं, अभी तुम्हारे सामने इस पवित्रता पर बलिदान होती हूँ, तुम्हारे पापा भी एक क्षण देर नहीं करेंगे।"

हिचकियों ने राजेश्वरी का गला दबा दिया।

मनोरमा ने राजेश्वरी को दोनो हाथों से दबाकर कहा—"अम्मा, मैं नहीं मरूँगी, तुम शांत हो। मैं जानती हूँ कि तुम मुझे कितना चाहती हो, तुम्हारी-जैसे सौतेली मा का सुख भोगने की अभी और इच्छा होती है। मैं आज से नहीं रोऊँगी, और इस रोग से युद्ध करूँगी।" तुम्हारे आशीर्वाद से अब भी मैं विजय-लाभ करूँगी।"

मनोरमा शांत होकर लेट गई। राजेश्वरी प्रेम के साथ उसके सिर पर हाथ फेरने लगी।

मनोरमा ने धीमे स्वर में कहा—"अम्मा, मुझे अपने हृदय से लगा लो, मुझे बड़ा डर मालूम होता है।"

राजेश्वरी ने उसके बग़ल में लेटकर दुधमुँहे बच्चे की भाँति उसे छाती से लगा लिया। भाग्य-विधाता मुस्किराने लगे।

(६)

रानी मायावती ने उत्सुकता से पूछा—"मिस्टर वर्मा, आजकल आपकी तबियत क्या ख़राब है ? आप दिन-पर-दिन सूखते जाते हैं, इसका क्या कारण है ?"

रानी मायावती के स्वर में आत्मीयता का भाव था।

राजेंद्रप्रसाद ने उत्तर दिया—"नहीं, शरीर तो स्वस्थ ही है, लेकिन.... ."

रानी मायावती ने उत्सुकता से पूछा—"लेकिन क्या ?"

राजेंद्रप्रसाद ने जवाब दिया—"मन स्वस्थ नहीं है। न-मालूम क्यों आज कई दिनों से मन अपने आप विकल होकर छटपटाने लगता है। मैं कल ही एयरमेल से स्वदेश लौटने की इच्छा कर रहा हूँ, इसीलिये आपसे बिदा होने आया हूँ।"

रानी मायावती ने आशंका-पूर्ण स्वर में कहा—"ख़ैरियत तो है ? यों अचानक और हवाई जहाज़ से जाने का क्या कारण है ? भाभी तो सकुशल हैं ?"

राजेंद्रप्रसाद ने बालक चंद्रकिशोर को अपनी गोद में लेते हुए कहा—"उन्हीं के लिये तो मैं चिंतित हूँ। आज नौ महीने से उनका कोई पत्र नहीं आया। उनके पिता के पत्र तो प्रति सप्ताह आ जाते हैं, लेकिन उनका एक भी नहीं आता। यह रहस्य कुछ समझ में नहीं आता। आज कई दिनों से बुरे-बुरे स्वप्न दिखाई देते हैं, और चिंता भी दिनोंदिन बढ़ती जाती है। मैं इस रहस्य का मूलोच्छेद करना चाहता हूँ।"

रानी मायावती ने चिंतित स्वर में उत्तर दिया—"बेशक, यह विचारणीय बात है।"

राजेंद्रप्रसाद ने रानी मायावती के पुत्र चंद्रकिशोर का मुख चूमते हुए कहा—"मैंने उनको सैकड़ों पत्र लिखे, लेकिन एक का भी जवाब नहीं। उनके पिता यह लिखते हैं कि 'तुम्हारे पत्र पहुँच गए', लेकिन जवाब एक का भी नहीं आता। अब यह वेदना सहन नहीं होती। मैंने कल ही जाने का निश्चय किया है। आज से छठे दिन बंबई पहुँच जाऊँगा, और सातवें दिन लखनऊ। मुझे तो ऐसा मालूम होता है कि कोई अनिष्ट घटनेवाला है। जैसे तूफ़ान आने के पहले प्रकृति कितनी स्तब्ध और शांत हो जाती है, मगर थोड़ी ही देर बाद तूफ़ान के भयंकर झोंके नाव को उलट देते हैं, वैसे ही मेरी जीवन-नौका को डुबाने के पहले दैव ने यह मौन का विधान निश्चित किया है।"

कहते-कहते राजेंद्रप्रसाद के नेत्रों के पीछे दो आँसू झाँककर रानी मायावती के सामने वेदना की माया का प्रसार करने लगे।

रानी मायावती ने सांत्वना-पूर्ण स्वर में कहा—"भैया, क्यों दुखी होते हो। दुख संसार का एक परमप्रिय सहचर है, जो मनुष्य का कभी साथ नहीं छोड़ता, लेकिन हमेशा मनुष्य को महत् बनाता है। कब, जब कि वह उसके अधीन नहीं होता। जो दुख पर विजय प्राप्त करता है, वही सच्चा सुखी है।"

राजेंद्र ने अपने आँसुओं को रूमाल में संचित कर लिया। सुख-दुख से परे, निर्मल शिशु प्रश्न-सूचक दृष्टि से राजेंद्रप्रसाद की ओर देखने लगा।

रानी मायावती कहने लगी—"तुम मुझे भाई की तरह प्यारे हो, और मेरे परिवार में तुम इतने मिल गए हो कि उसमें किसी प्रकार का भेद-भाव रखना असंभव है, और वह केवल कृत्रिम

होगी। तुम्हारे इस शोक से मैं उतनी ही दुखी हूँ, जितना कि तुम। भाभी का यह व्यवहार कुछ समझ में नहीं आता। इसमें अवश्य कोई रहस्य है। दुखी भाई को बहन इस प्रकार अकेले नहीं जाने देगी। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी, और भाभी को इसका उलाहना दूँगी। ठहरो, मैं मा से जाकर सब हाल कहती हूँ, और तुम्हारे साथ वापस स्वदेश लौटने की बात चलाती हूँ। तब तक तुम यह इलस्ट्रेटेड वीकली जो अभी डाक से आया है, देखकर मन बहलाने का उद्योग करो। यह पत्र बंबई से टाइम्स ऑफ् इंडिया आफ़िस से, निकलता है, और इसमें 'क्रासवर्ड्स पज़ल्स' की भरमार रहती है। कोई 'पज़ल' हल करने की कोशिश करो।"

यह कहकर, वह अपने शिशु को लेकर अपनी माता रानी किशोरकेसरी से मिलने चली गई। राजेंद्रप्रसाद पत्र पर लगी हुई मोहर तोड़कर चित्रों को देखने लगे। वह पृष्ठ के बाद पृष्ठ लौटते जा रहे थे, और किसी चित्र की ओर ध्यान नहीं दे रहे थे। एकाएक एक पृष्ठ पर आकर उनके नेत्र अपने आप अटक गए, और वह उस चित्र की ओर देखने लगे। उनके हाथ की गति बंद हो गई, और वह स्थिर होकर उस चित्र के नीचे लिखे हुए परिचय को पढ़ने लगे—"लखनऊ में आदर्श विवाह। मिस ट्रैवीलियन और राजा प्रकाशेंद्रसिंह, राजा रूपगढ़ का विवाह-संबंध गत तारीख़ १२ अगस्त को निश्चित हो गया है। विवाह सिविलमैरेज ऐक्ट के अनुसार तारीख़ १२ सितंबर को होगा। वधू लखनऊ की प्रसिद्ध समाज-सेविका हैं, जिनके अदम्य उत्साह के कारण ही प्रसिद्ध 'इंडो-योरपियन वीमेंस-एसोसिएशन' की स्थापना हुई, और आज दिन भारत की अशिक्षित नारी-जनता में जागृति पैदा कर रही हैं। वर राजा साहब रूपगढ़ एक आदर्श समाज-सुधारक नेता हैं, और हिंदू-धर्म को ग़ुलामी से

छुड़ानेवाले अवध के ताल्लुक़ेदारों में सर्वप्रथम हैं। हम ऐसे विवाह का स्वागत करते और प्रार्थना करते हैं कि दंपती भगवान् के सर्वोत्तम आशीर्वाद को प्राप्त करें, और हिंदू-समाज का मुख उज्ज्वल करें।"

राजेंद्रप्रसाद निस्तेज नेत्रों से मिस ट्रैवीलियन का वह चित्र देखने लगे। इसी समय डेविड ने चाय का प्याला सामने रखते हुए कहा—"लीजिए, चाय पीजिए।"

डेविड मायादास की दृष्टि उस खुले हुए पृष्ठ पर पड़ गई। उसके भी नेत्र मिस ट्रैवीलियन के चित्र पर जाकर अटक गए। उसने सवेग वह पत्र राजेंद्र के हाथ से छीन लिया, और विस्फारित नेत्रों से उसकी ओर देखने लगा। राजेंद्रप्रसाद शून्य दृष्टि से डेविड की ओर देखने लगे।

डेविड ने चिल्लाकर कहा—"यही है, यही है, आज पता चल गया, यही है। इसी राक्षसी ने मेरा सत्यानाश किया है। मेरी विवाहित पत्नी होकर मेरा सत्यानाश करने के बाद इस राजा का ख़ून चूसने के लिये अपना दूसरा विवाह कर रही है। मैं इसका भयंकर प्रतिशोध लूँगा।"

यह कहता हुआ वह रानी किशोरकेसरी और रानी मायावती के कमरे की ओर दौड़ा। राजेंद्र उसके पीछे-पीछे सवेग रवाना हुए।

रानी किशोरकेसरी और रानी मायावती, दोनो स्वदेश लौटने के लिये परामर्श कर रही थीं कि डेविड ने वहाँ पहुँचकर कहा—"रानी साहबा, मैंने अपनी स्त्री का पता लगा लिया। वह आजकल लखनऊ में है, और अपने को मिस ट्रैवीलियन कहती है।"

रानी मायावती ने बीच ही में बात काटकर कहा—"क्या कहा, मिस ट्रैवीलियन, यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

डेविड ने इलस्ट्रेटेड वीकली का वह पृष्ठ दिखलाते हुए

कहा—"देखिए इसमें, यही नाम लिखा है। मिस ट्रेवीलियन, और यह लखनऊ के कोई राजा प्रकाशेंद्रसिंह हैं !"

रानी किशोरकेसरी ने चकित होकर शंकित स्वर में पूछा—"क्या कहा, प्रकाशेंद्रसिंह, देखूँ तो ज़रा।"

रानी किशोरकेसरी ने काँपते हुए हाथों से रानी मायावती के हाथ से वह पत्र छीन लिया। रानी मायावती बेहोश होकर गिरने-वाली थीं कि राजेंद्रप्रसाद ने उन्हें अपने हाथों पर ले लिया।

रानी किशोरकेसरी भी घबराईं। राजेंद्रप्रसाद ने रानी मायावती को उठाने का प्रयत्न किया, लेकिन वह सफल न हो सके। अविराम चिंतन ने उन्हें बिलकुल कमज़ोर बना दिया था। डेविड ने उन्हें सहायता दी, और दोनो ने रानी मायावती को सोफ़े पर लिटा दिया। राजेंद्रप्रसाद पानी के छींटे देने लगे, और डेविड डॉक्टर बुलाने को फ़ोन करने चला गया।

---

(७)

राजा भूपेंद्रकिशोर ने सक्रोध कहा—"मैं उस बदमाश का पिस्तौल से सिर उड़ा दूँगा।"

रानी किशोरकेसरी ने जवाब में आहिस्ता से कहा—"इससे फ़ायदा?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने वक्र भृकुटियों से रानी किशोरकेसरी की ओर देखा। उनकी दृष्टि नत हो गई। उन्होंने कहा—"मैं कोई प्रतिवाद सुनना नहीं चाहता। अब असह्य हो गया। बदमाश यहाँ तक कर गुज़रने का साहस रखता है। एक वेश्या को रूपगढ़ की गद्दी पर बिठाना चाहता है—मेरी माया का अधिकार छीनकर एक सड़क की भिखारिनी को देना चाहता है—इससे अधिक और क्या अप-मान-जनक होगा? तुम क्या समझती हो कि मैं मूर्ख, कापुरुष की तरह अपनी माया को भिखारिनी होते देखूँगा?"

रानी किशोरकेसरी ने शांत स्वर में कहा—"इस तरह घबराने से काम नहीं चलेगा, और न धींगा-धींगी से। कौशल और उपाय से ही यह विवाह रोका जा सकता है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"हाँ, मेरा भी यही अनुमान है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने वक्र दृष्टि से उन्हें भी देखा। हालाँकि राजेंद्रप्रसाद उस परिवार से इतना हिल-मिल गए थे कि वह उसी के एक अंग थे, और गंभीर-से-गंभीर तथा पारिवारिक मंत्रणा में वह घर की तरह सलाह देते थे, और वैसे ही उनके विचार माँगे भी जाते थे, परंतु इस समय की सलाह राजा भूपेंद्रकिशोर को युक्ति-संगत प्रतीत नहीं हुई।

रानी किशोरकेसरी ने सहारा पाकर कहा—"बेशक, नीति और कौशल से ही काम बनेगा, अन्यथा सब मिट्टी में मिल जायगा।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने व्यंग्य के साथ कहा—"तुम्हारी नीति तो ज़रा सुनें। ऐसा कौन-सा कौशल विचारा है, जिस पर इतना नाज़ है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"डेविड जन्म से ईसाई है, और ट्रैवीलियन भी जन्म से ईसाई है। ट्रैवीलियन डेविड की परिणीता स्त्री है। डेविड ने तलाक़ देकर अपनी स्त्री को स्वतंत्र नहीं किया है। डेविड को निरुद्देश हुए अभी छ वर्ष के लगभग हुए हैं, कम-से-कम अभी तक सात वर्ष पूरे नहीं हुए, इसलिये वह क़ानून की रू से मृत नहीं माना जा सकता। क़ानूनन् जब पति-पत्नी में कोई लगातार सात वर्ष तक पूर्णतया निरुद्देश रहे, और किसी को कुछ पता न मिले, तब दंपती में कोई भी दूसरा विवाह कर सकता है, और वह क़ानूनन् दुरुस्त भी समझा जायगा। दूसरी शर्त यह है कि पति या पत्नी अपनी स्त्री या स्वामी के अदृश्य पता होने की बात अपनी भावी पत्नी या स्वामी से कह देगी। लेकिन इस मामले में प्रथम तो एलिनर रोज़ उर्फ़ ट्रैवीलियन अपने को 'मिस' कहकर अविवाहित सिद्ध करती है, और दूसरे उसके पति डेविड को अज्ञातवास में केवल छ वर्ष हुए हैं, इसलिये ईसाई-धर्म के अनुसार ट्रैवीलियन ईसाई-धर्म रखते राजा प्रकाशेंद्र से विवाह नहीं कर सकती। किसी क़िस्म का विवाह क़ानूनन् नाजायज़ होगा। हम लोगों के विवाह की तारीख़ के पहले पहुँचने से यह विवाह रोका जा सकता है। डेविड पुलिस की सहायता से इस विवाह को रोक सकता है। भगवान् के मंगलमय संकेत से ही डेविड आज एक वर्ष से इस परिवार में नौकर है। अगर इसे विधि का विधान न कहेंगे, तो फिर क्या कहेंगे।"

रानी किशोरकेसरी ने प्रसन्न कंठ से कहा—"कितना युक्ति-पूर्ण उपाय है, डेविड भी अपना प्रतिशोध ले लेगा, और विवाह भी रुक जायगा। एक गोली में दो शिकार होंगे। राजेंद्र जैसा कहता है, वैसा ही करना चाहिए। आज माया स्वदेश लौटने के लिये कह रही थी, राजेंद्र को भी जाना है, अब हमें भी चलना चाहिए। आज सितंबर की तीसरी तारीख़ है, १० दिन के पहले हमें पहुँचना है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने मुस्किराकर कहा—"अभी तुम्हारा प्रस्ताव पास कहाँ हुआ है, जो मनसूबे बाँधने लगीं।"

रानी किशोरकेसरी ने तिनककर कहा—"तो तुम्हारा भी प्रस्ताव कभी पास नहीं होने का। ऐसे अमानुषिक और घृणित प्रस्तावों को तुम अपने तक ही रक्खो।"

राजेंद्र हँसने लगे। राजा भूपेंद्रकिशोर भी हँसने लगे।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने डेविड को बुलाकर कहा—"डेविड, क्या तुम अपनी पिशाचिनी स्त्री से प्रतिशोध लेना चाहते हो?"

डेविड ने सतेज स्वर में कहा—"भूखा शेर सामने आहार को देखकर उसको भले ही छोड़ दे, लेकिन मैं रोज़ उर्फ़ ट्रैवीलियन को नहीं छोड़ सकता। मैं आज पाँच-छ साल से संसार के लिये मृत हूँ, अब यदि मेरा प्रकट होना केवल फाँसी के फंदे के लिये होगा, तो भी मुझे कोई शोक नहीं है। मैंने पाँच वर्ष तक जो दुख भोगा है, उसका अनुभव केवल मुझे है। मुझे अब केवल एक चिंता है, वह यह कि आपके उपकार का कैसे बदला दूँ, और यह बोझ लेकर स्वर्ग में जाने से मुझे पुनः इस भयावह संसार में अवतीर्ण होना पड़ेगा, और डर है कि रोज़-जैसी स्त्रियों से साक्षात् होगा।"

राजा भूपेंद्रकिशोर मुस्किराने लगे। फिर कहा—"तुम इतना

अधीर क्यों होते हो। तुम्हें केवल प्रकट होना पड़ेगा, तुम वैध रूप से पुलिस की सहायता प्राप्त कर सकते हो। उसे विवाह करने से मना कर सकते हो, और फिर उसे तलाक़ देकर, पथ की भिखारिनी बनाकर वही दंड दो, जो तुमने इतने दिनों तक भोगा है। उसका प्राण लेने से तो उसकी निष्कृति हो जायगी।"

डेविड ने उत्तेजित स्वर में कहा—"लेकिन वह ख़ूबसूरत अव्वल दरजे की है, तलाक़ लेकर, स्वतंत्र होकर वह किसी अन्य का सर्व-नाश करेगी। आज तक लखनऊ में कितने लोगों को सत्यानाश किया है, इसकी ख़बर लखनऊ जाकर आप लोगों को होगी। नागिन का विष-दाँत उखाड़कर उसे भले ही निकम्मा कर दो, लेकिन उसकी संतान के तो विष-दाँत साबित बने रहेंगे। ऐसी पापिन को, जिसके स्पर्श-मात्र से पाप लगता है, देखने से पाप लगता है, उसका तो मरण ही श्रेयस्कर है। समाज के लिये, मानवता के लिये उसका निधन ही श्रेष्ठ है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"उसे दग़ाबाज़ी के लिये सज़ा मिल सकती है, और दूसरे अन्य अपराध लगाने से उसकी सज़ा काफ़ी दिनों के वास्ते हो सकती है। भले समाज में ऐसे अधम गुनाहों के सज़ायाफ़्ता लोगों के लिये कोई स्थान नहीं। क़ानून के ज़रिए ही उसे सज़ा देना ठीक होगा। किसी भी व्यक्ति को मारने का अधिकार या तो न्यायाधीश को है, या भगवान् को। मैं डेविड को ऐसा अमानुषिक कर्म करने के लिये कभी प्रोत्साहन नहीं दूँगा।"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"मैं राजेंद्र से पूर्णतया सहमत हूँ। डेविड, भगवान् के घर में न्याय है। उसे तुम उसी के न्याय पर छोड़ दो, दैविक न्याय सदा मंगलकारी होता है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"ठीक है। अब तो हम लोग

हवाई जहाज़ द्वारा चलने से ही समय पर लखनऊ पहुँच सकते हैं। जल-मार्ग से जाने से पूरे दो हफ़्ते लग जायँगे, और उस वक्त तक वह विवाह समाप्त हो जायगा।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"हाँ, हवाई जहाज़ से ही जाना ठीक है। मैंने तो एयरमेल में अपने लिये एक सीट रिज़र्व करा ली है। कल प्रातःकाल एयरमेल जायगा। फ़ोन से क्या पूछूँ, अगर कोई जगह ख़ाली हो। आप लोगों को तो चार सीट चाहिए, इतनी जगह मिलना मुश्किल है। और, क्या मा हवाई जहाज़ पर चल सकेंगी?"

रानी किशोरकेसरी ने कहा—"मैं हवाई मार्ग से क्या, अग्नि के मार्ग से भी चल सकती हूँ। अपनी लड़की को भिखारिनी होते नहीं देख सकती। राजेंद्र, मैं हवाई जहाज़ पर चल सकूँगी। मुझे कोई भय नहीं है। अब रह गया माया और चंदू का सवाल, उनको भी किसी तरह लेना होगा।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"तुम माया के लिये मत चिंता करो, माया में तुमसे ज़्यादा साहस है। जानती हो, वह मेरी लड़की है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर के स्वर में अभिमान की झलक थी।

रानी किशोरकेसरी ने उत्तर दिया—"अपनी तारीफ़ अपने आप करते ज़रा भी संकोच नहीं होता!"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने हँसकर कहा—"जब कोई नहीं करता, तो ख़ुद ही करनी पड़ती है।"

रानी किशोरकेसरी और राजेंद्रप्रसाद हँसने लगे।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"अगर एयरमेल में जगह न मिले, तो कोई प्राइवेट जहाज़ किराए पर ले लेंगे। मैं अभी इंडिया ऑफ़िस में जाकर कोई-न-कोई प्रबंध कर लेता हूँ। राजेंद्र,

मैं कल तुम्हारे साथ ही स्वदेश लौटूँगा। अपनी बुढ़िया मा को ज़रा सामान बँधाने में मदद दे दो, वरना हाँफ-हाँफकर..."

रानी किशोरकेसरी ने चिढ़कर कहा—"जाते हो कि फ़िज़ूल वक़्त ख़राब करोगे। समय थोड़ा है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर सवेग कमरे से बाहर हो गए।

कुसुमलता का जीवन उसके लिये भार हो गया। जब से डॉक्टर आनंदीप्रसाद की वास्तविक दशा का पता चला, तब से वह व्याकुल है। आज कई दिनों से वह अपने से युद्ध कर रही है, परंतु उसका मन सिवा रोने के और कोई बात नहीं सुनता। कुसुमलता परेशान होकर आज अपनी चिंता में विभोर है। वह सोचने लगी—

"वह कितने महत् हैं, मैं उनका असली रूप अब निरख पाई हूँ। मैं जानती हूँ कि उन्होंने संसार से वैराग्य किसके लिये और किस कारण से लिया है। आज विवाह हुए पूरे पंद्रह महीने हो गए, लेकिन इतने दिनों में मैं उनको नहीं पहचान पाई। आज पहचान पाई, जब कि उन्होंने यात्रा का आयोजन कर लिया है। मैं पहले उनसे बिलकुल उदासीन रही, जब वह मेरे हाथ में थे, और जब वह मुझसे दूर हो रहे हैं, तब उनके प्रति आसक्ति पैदा हुई है। यह है विधाता का खेल!

"एक समय था, जब मैं ईश्वर में विश्वास नहीं करती थी, उस शक्ति से लड़ने के लिये तैयार थी, उस अजेय को जय करने की प्रतिज्ञा कर चुकी थी, परंतु आज, आज मैं हारकर उसकी शरण में आई हूँ। देव, मेरा अपराध क्षमा करो, मैं अनजान थी, मैंने अज्ञानता में बहुत कुछ कहा है, मुझे क्षमा करो। मेरा धन मुझे लौटा दो। मैं उनके जीवन की भीख माँगती हूँ। मेरा सुहाग अचल करो।

"इन पंद्रह महीनों में मैंने कुमारी-जीवन ही व्यतीत किया है, पति के सहवास का सुख नहीं जानती। उन्होंने मुझे

उदासीन देखकर कभी उस ओर संकेत तक नहीं किया। उन्होंने पूर्ण ब्रह्मचर्य पालन किया, और यही ब्रह्मचर्य मैंने भी। इतना त्याग इतना इंद्रियों पर अधिकार क्या किसी से संभव है। तभी तो कहती हूँ कि वह देवता हैं। ऐसे देवता को मैंने नहीं पहचाना।

"राजेंद्र, हाँ, राजेंद्र ने मेरा सत्यानास किया है। उसने ही मेरे जीवन में आग लगाई है, जो मेरा सर्वस्व लेकर बुझेगी। पहले मैं इनकी तुलना उससे करती थी, तब राजेंद्र इनसे उच्च दिखाई देता था, परंतु आज की तुलना में यह राजेंद्र से कहीं उच्च हैं। राजेंद्र इनकी पद-धूलि के भी बराबर नहीं। लेकिन अब मैं क्या करूँ ?

"विवाह के दिन मैंने उनसे कहा था कि विवाह का अर्थ इंद्रिय-सुख-भोग नहीं है। उन्होंने उत्फुल्ल होकर कहा था—'ठीक है, यही मेरा विचार है।' उस दिन से उन्होंने मेरा अंग, यहाँ तक कि हाथ भी स्पर्श नहीं किया। अगर धोखे में मेरा कोई अंग उनके अंग से स्पर्श हो गया, तो वह बड़े संकुचित हो जाते थे, और तुरंत क्षमा-याचना करते थे। मैं भी उनकी इस तपस्या का अंत देखना चाहती थी, परंतु उसका अंत मेरे लिये घातक हुआ। वह फिर भी विजयी हुए, और मेरी हार हुई।

"शायद उनको यह मालूम हो गया कि मैं राजेंद्र पर अनुरक्त हूँ, इसी विचार से उन्होंने मेरे साथ बिलकुल अपरिचित ही सा व्यवहार किया, और अंत तक निबाहा। जहाँ तक मेरा अनुमान है, वह आत्मघात उसी ख़याल से कर रहे हैं। उफ़! कितना ज़बरदस्त त्याग है, यह भी मेरे लिये, केवल मुझको सुखी करने के लिये।

"उनका मेरे प्रति कितना गंभीर प्रेम है। देखने में जैसा सागर ऊपर से शांत होता है, लेकिन उसकी गहराई की थाह नहीं मालूम

होती, उसी तरह उनके प्रेम की भी थाह मुझे नहीं मिली। जिसे मैंने उदासीनता समझा, वह उनका बाह्य रूप था, परंतु उसके नीचे प्रेम का सागर हिलोरें मार रहा था। मैं अंधी थी, मैं नहीं देख पाई। इतना निकट रहते हुए भी उनको नहीं पहचाना।

"उन्होंने एक दिन मुझसे कहा था कि हमारा वैवाहिक जीवन माता-पिता के शाप से अभिशापित है। मैंने उस दिन उनके कथन को मूर्ख का प्रलाप समझा था, फ़िलॉसफ़र की बहँक ख़याल किया था, लेकिन आज मुझको उसकी सत्यता पर स्वतः विश्वास करना पड़ता है। अवश्य ही इसी अभिशाप से हमारा जीवन सुखमय न हो सका। मैं जन्म से विधवा थी। ब्रह्मचर्य-व्रत पालन करने के लिये ही मेरा जन्म हुआ था। वही व्रत विवाह के बाद भी पालन किया, और सारे जीवन-भर पालन करना पड़ेगा। क्या इसमें विधाता की क्रूर हँसी की प्रतिध्वनि नहीं है ?

"मैं भी वह उपाय क्यों न ग्रहण करूँ, जो उन्होंने किया है। मैं भी आत्मघात क्यों न कर डालूँ। कुछ क्षण-भर के साहस की आवश्यकता है, और फिर सब दुखों का अंत है। जन्म-भर पश्चात्ताप की अग्नि में जलकर, कुढ़-कुढ़कर मरने से तो यह कहीं सुखद है। तो मैं भी आत्महत्या करूँगी ?

"संसार में कौन सुखी है ? कोई नहीं। सुख की तलाश में संसार, अभागा, निर्बोध संसार भ्रमता रहता है, लेकिन सुख किसे मिलता है। सुख केवल मरीचिका है, जो अभागे मनुष्यों को अपनी स्वर्ण-छाया दिखलाकर पुनः अदृश्य हो जाता है, और जिसका कहीं भी अंत नहीं मिलता। तब मैं ही किस तरह सुखी हो सकती हूँ। इस धरातल में सुख की इच्छा करना मूर्खता है, एक असंभव कल्पना है, जो कभी सत्यता में परिणत नहीं हो सकती।

"मनोरमा आज महीनों से बीमार है। मैं एक दिन भी उसे देखने नहीं गई। यह मेरा अपराध है। जिस मनोरमा के बग़ैर मैं एक दिन भी न रह सकती थी, उसी को आज नौ महीने से बीमार जानकर देखने तक न गई! मुझे अपने ऊपर स्वयं विश्वास नहीं होता। मैं क्या एकदम से पिशाचिनी हो गई। मैं अपने लिये स्वयं एक न सुलझनेवाली पहेली हो रही हूँ, किसी दूसरे को क्या दोष दूँ।"

इसी समय डॉक्टर दास ने आकर कहा—"कुसुम, तुमने क्या आज दवा नहीं पिलाई?"

कुसुमलता ने चौंककर कहा—"दोपहर को पिलाई थी, आपने तो सिर्फ़ एक ही ख़ूराक दी थी।"

डॉक्टर दास ने उसके पास आकर उसे तेज़ निगाहों से देखते हुए कहा—"कुसुम, तुम्हें अपनी संतान समझता हूँ। इंदु और तुममें कोई भेद नहीं जानता, इसलिये मेरे निकट तुम्हें सत्य बोलना उचित है। मैं एक चिकित्सक की हैसियत से और दूसरे तुम्हारे परिवार का हितेच्छुक की हैसियत से दो-एक बातें जानना चाहता हूँ। मैं इसीलिये तुम्हारे पास आया हूँ। आशा है, तुम सत्य ही जवाब दोगी।"

कुसुमलता ने दृढ़ता के साथ कहा—"डॉक्टर साहब, आप पूछिए, मैं उत्तर देने को तैयार हूँ। मैं सत्य ही उत्तर दूँगी।"

डॉक्टर दास ने पृथ्वी की ओर देखते हुए धीमे स्वर में कहा—"क्या तुम्हारा वैवाहिक जीवन सुखप्रद नहीं हुआ? क्या तुममें और प्रोफ़ेसर प्रसाद में किसी कारण मनोमालिन्य है?"

कुसुमलता ने दबी ज़बान से उत्तर दिया—"शायद आपका अनुमान सत्य है। उनके मन में कोई निर्मूल धारणा ने जड़ जमा ली है। वैसे तो बाह्य रूप में हम दोनो शांत हैं, परंतु आंतरिक

शांति न कभी उन्हें मिली, और न कभी मुझे। इसका कारण केवल यही है कि न वह मुझे कभी समझ सके, और न मैं कभी उनको। मैं अब उनका असली रूप समझी हूँ, जब उनको खोने के लिये......"

कहते-कहते कुसुमलता की आँखों में आँसू भर आए।

डॉक्टर दास ने उसके सिर पर पिता की भाँति हाथ फेरते हुए कहा—"दुखी मत हो, मैं अब भी तुम्हारा धन तुम्हें लौटा लाने का भगीरथ प्रयत्न करूँगा, और मुझे उम्मीद है कि मैं इसमें सफल भी हो जाऊँगा।"

कुसुमलता ने शांत होकर कहा—"आपका विचार बिलकुल ठीक है। वह मुझे समझ नहीं सके, मेरी मुक्ति के लिये उन्होंने अपने को बलिदान किया है। हिंदू-धर्म में स्त्री की मुक्ति बग़ैर स्वामी के निधन हुए नहीं हो सकती, इसलिये उन्होंने धीरे-धीरे अपने लिये मौत को आमंत्रित किया है। डॉक्टर साहब, मैं सब जानती हूँ। वह कितने महत् हैं।"

कहते-कहते कुसुमलता फिर अधीर हो गई।

डॉक्टर दास ने कहा—"यही मेरा अनुमान था। उनकी असावधानी और लापरवाही इसी बात की सूचना देती है। मेरा तो यह अनुमान है कि वह दवा नहीं पीते। आज उन्होंने दवा नहीं पी। क्या तुमने अपने हाथ से दवा पिलाई थी?"

कुसुमलता ने विस्मित होकर कहा—"दवा नहीं पीते! और रोज़ तो मैं उन्हें स्वयं पिलाती थी, आज दवा गिलास में डालकर पीने को कहा, तो उन्होंने कहा—"अभी रख दो, मैं थोड़ी देर में पी लूँगा।" इसके बाद ही बाबूजी आ गए, और मैं कमरे से बाहर आ गई। बाबूजी के आने के बाद जब गई, तो देखा, दवा

का गिलास ख़ाली है। मैंने समझा, दवा पी ली होगी। हाँ, कोई प्रश्न नहीं किया।"

डॉक्टर दास ने कहा—"नहीं, उन्होंने दवा नहीं पी। आज उनका ज्वर तेज़ है। मैं अपनी ख़ास तौर पर बनाई हुई ओषधियाँ इन्हें खिला रहा हूँ, जो किसी तरह नाकामियाब नहीं हो सकतीं, परंतु आश्चर्य है कि मैं कोई उनका प्रभाव नहीं देखता। इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि या तो वह दवा नहीं पीते, या रोग का निदान ग़लत है। रोग का निदान ग़लत नहीं है, क्योंकि भारत के पाँच विशेषज्ञ यही निश्चय कर चुके हैं, जो मैंने किया है, इसलिये या तो इन्हें दवा पिलाई नहीं जाती, या ख़ुद पीते नहीं।"

कुसुमलता ने आहत दृष्टि से डॉक्टर दास की ओर देखा, और कहा—"डॉक्टर साहब, मैं इतनी नीच नहीं हूँ।"

डॉक्टर दास ने दुखी होकर कहा—"अरे राम - राम, मेरा मतलब यह नहीं। कौन हिंदू-स्त्री अपने हाथ से अपना सुहाग नष्ट करेगी। तुमसे पूछने का मेरा यही तात्पर्य था कि तुम सावधान होकर उन्हें दवा पिलाया करो। यदि दवा बराबर पहुँचती रहेगी, तो मुझे अब भी आशा है।"

यह कहकर डॉक्टर दास उसे आश्वासन देकर चले गए।

कुसुमलता शून्य आकाश की ओर देखने लगी। ऊपर शून्य था, और उसके चारो ओर शून्य था। शून्य का हास्य शून्य को कंपित कर रहा था।

---

(६)

दीपक प्रज्वलित हो गए । किंतु कुसुमलता की विचार-समाधि फिर भी न टूटी । एक वेग से जाती हुई मोटर के हार्न ने उसकी विचारावलि को भंग कर उसे सचेत किया । वह घबराहट से उठ बैठी । उसकी आँखें रोते-रोते लाल थीं, और मुख कांति-विहीन था । वह खड़ी हो गई, और डॉक्टर आनंदीप्रसाद के कमरे की ओर जाने लगी ।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद अपने नेत्र बंद किए हुए लेटे थे । मालूम होता था कि वह सो रहे हैं । कुसुमलता धीमे-धीमे पद से उनके पास आकर उन्हें देखने लगी । ज्यों-ज्यों वह उनकी ओर देखती थी, त्यों-त्यों उसके देखने की लालसा बढ़ती थी । वह एकटक उन्हें देख रही थी । डॉक्टर आनंदीप्रसाद के मुख से असीम शांति चारो ओर प्रस्फुटित हो रही थी । एक अजीब आकर्षण था, एक अद्भुत शक्ति कुसुमलता को खींचने लगी । वह खिचकर दो क़दम और आगे बढ़ गई । उसमें और डॉक्टर आनंदीप्रसाद में केवल थोड़ा-सा अंतर रह गया । वही अदृश्य शक्ति उसे फिर खींचने लगी । इस बार का वेग पहले से अधिक ज़ोरदार था । वह झुक गई । उसका मुख उनके कपोलों के पास आ गया । उसकी गर्म निःश्वास उनकी निःश्वास के साथ परिचित होने लगी । आकर्षण, वह अदृश्य आकर्षण उसको त्रिगुणित शक्ति से खींचने लगा । उसके ओष्ठ उनके कपोल से लग गए, और उस चिह्न को धोने के लिये उसकी आँखों का एक बिंदु गिर पड़ा ।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद चौंक पड़े। उन्होंने भय-विह्वल दृष्टि से कुसुमलता की ओर देखा। वह संकुचित हो गई। उसके नेत्र नत हो गए, और वह भागने के लिये तैयार हुई, लेकिन उसके पैरों को पृथ्वी ने पकड़ लिया। वह अपराधिनी की भाँति खड़ी रही।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने मलिन मुस्कान-सहित कहा—"तुम हो।"

विवाह के बाद यह पहला अवसर था, जब डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उसे तुम शब्द कहा।

कुसुमलता रोमांचित हो गई।

कुसुमलता ने साहस कर डॉक्टर आनंदीप्रसाद के पैरों पर सिर रख दिया, और कहा—"मुझे क्षमा करो।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने घबराकर उठते हुए कहा—"यह क्या, यह क्या?"

कुसुमलता ने उनके पैर पकड़े हुए कहा—"मुझसे अब सहन नहीं होता, तुम जीते, और मैं हारी। अब तुम्हारी शरण में आई हूँ, मेरी रक्षा करो।"

कुसुमलता के गर्म-गर्म आँसू उनके पैरों को धोने लगे।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने अधीर होकर कहा—"कुसुम, क्या करती हो, छोड़ो। मैं नहीं जानता कि तुमने कौन अपराध किया है?"

कहते-कहते डॉक्टर आनंदीप्रसाद के भी नेत्रों से दो बूँदें खारी जल की गिर पड़ीं, जो कुसुमलता के साथ समवेदना प्रकट करने लगीं।

कुसुमलता ने रोते-रोते कहा—"मुझे इतना रुलाकर क्या तुम्हारे मन में दया नहीं जाग्रत् होती? तुम संसार को ठगने में समर्थ हुए हो, लेकिन मुझे ठग नहीं सकते। मैं तुम्हारा त्याग जानती हूँ। तुम समझते हो कि मैं किसी अन्य पर अनुरक्त हूँ, इसलिये मेरी निष्कृति के लिये तुम अपना आत्मघात कर रहे हो?"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उसका हाथ प्रेम के साथ दबाते हुए कहा—"हाँ, कुसुम, मेरा यही अनुमान है। मैं भी तुमसे झूठ नहीं बोलूँगा।"

कुसुमलता ने सिसकते हुए कहा—"क्या तुम मुझे मार्ग पर नहीं ला सकते थे? मैं भी आज कुछ छिपाऊँगी नहीं। मैं स्वीकार करती हूँ कि विवाह के समय मैं किसी अन्य पर अवश्य अनुरक्त थी, लेकिन मैं उस भावना से अहर्निश लड़ती थी, उस ओर से विजय प्राप्त करके फिर तुम्हारे चरणों में आत्मसमर्पण करती, परंतु तुम मेरी प्रतीक्षा न कर सके।"

कुसुमलता के स्वर में उपालंभ की झलक थी।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने शांत स्वर में उत्तर दिया—"मैंने प्रतीक्षा की, और बहुत समय तक की। किंतु तुम पर मैं विजय प्राप्त नहीं कर सका। तब इसे पिता का अभिशाप समझा, और यह सोचा कि अपने लिये तुम्हारा जीवन, तुम्हारे अरमान और तुम्हारी उमंगें क्यों नष्ट करूँ। इसी संघर्षण ने मुझे बिलकुल कमज़ोर कर दिया। मैं अपनी ओर से बिलकुल निराश हो गया, और धीरे-धीरे तुम्हारी मुक्ति का मार्ग निर्माण करने लगा। कुसुम, हिंदू-धर्म में स्त्रियों की मुक्ति जीवन के बलिदान के बिना नहीं है। इसीलिये यह......"

कुसुमलता ने बीच ही में टोककर कहा—"इसीलिये यह आयोजन किया है। लेकिन यह भली भाँति तुम भी समझ लो कि मैं भी तुम्हारे पीछे रहनेवाली नहीं हूँ। मैं भी अपना कर्तव्य समझती हूँ। मैं अब तुमसे विनय करती हूँ कि अपना हठ छोड़ दो, और दवा नियमित रूप से पीकर स्वास्थ्य लाभ करो। मैंने अपने ऊपर विजय प्राप्त कर ली है। अब अपना कर्तव्य पालन करूँगी। बोलो, बोलो, मेरे रूठे हुए प्राण-धन, बोलो।"

कहते-कहते कुसुमलता रोने लगी, और उसने अपना सिर उनके वक्षःस्थल में छिपा लिया।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उसकी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"कुसुम, अब अंत समय मोह मत उत्पन्न करो। मुझे यही विश्वास लिए मरने दो कि मैंने विवाह कर भूल की है, और मेरा वैवाहिक जीवन अभिशापित है। कुसुम, तुम्हारा मोह का अंकुर मेरे जीवन की तपस्या को निष्फल कर देगा, इस संसार में पुनः अवतीर्ण होना पड़ेगा।"

कुसुमलता ने सिसकते हुए कहा—"मेरा अपराध क्षमा करो, मुझको अपने हृदय में स्थान दो। नारी का जीवन पुरुष के साथ कितना संलिप्त है, यह मुझे अब मालूम हुआ। मेरी भूल का अंतिम परिणाम तो मंगलप्रद करो।"

कहते-कहते उसने अपने दोनो हाथों से उनको दबा लिया। आवेग से उसका कंठ अवरुद्ध हो गया।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने उसके सिर को अपने हाथ में लेकर उसका मुख ऊपर किया, और उसकी आँखों के भीतर देखते हुए कहा—"कुसुम, मैं तुम्हारा हूँ, तुमने अंत में मुझ पर विजय प्राप्त कर ली। मैं अब नहीं मरूँगा, अब मैं ज़िंदा रहने की कोशिश करूँगा, किंतु नहीं मालूम कि अंत क्या होगा।"

यह कहकर उन्होंने अपना प्रथम प्रेम-चिह्न उसके उन्नत ललाट पर अंकित कर दिया। कुसुमलता ने नव-वधू की भाँति उनके वक्षः-स्थल में अपना मुँह छिपा लिया।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद आँखें बंद कर धीरे-धीरे उसकी शुष्क और बिखरी केश-राशि पर हाथ फेरकर उसके सुहाग का सिंदूर भरने लगे।

❀ ❀ ❀

दूसरे दिन डॉक्टर दास ने उत्फुल्ल होकर कहा—"आज तो प्रोफ़ेसर साहब की तबियत बड़ी अच्छी मालूम होती है।"

जस्टिस रामप्रसाद ने प्रसन्न होकर पूछा—"क्या सचमुच कोई आशा-जनक परिवर्तन मालूम होता है?"

डॉक्टर दास ने जवाब दिया—"आशा-जनक तो है ही, एक ही रात में इतना फ़ायदा कल्पनातीत है। मैं नहीं समझता कि यह कैसे हुआ।"

जस्टिस रामप्रसाद ने कहा—"यह तो अच्छा ही है, भगवान् ने इस अभागे पर दयादृष्टि की है।"

कहते-कहते उनके नेत्रों में कृतज्ञता का जल भर आया, वह गद्‌गद होकर आकाश की ओर देखने लगे।

शराब का दौर चल रहा था। राजा प्रकाशेंद्र ख़ूब खुलकर पी रहे थे। रूपगढ़ के कर्मचारियों की महफ़िल थी, जिसमें ख़ुशामदी ही ज़्यादा थे।

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसते हुए कहा—"दुनिया में कई तरह की परी हैं, लेकिन लालपरी का क्या कहना! उसे कोई नहीं पहुँचता।"

एक कर्मचारी ने हँसते हुए कहा—"बहुत ठीक है हुज़ूर! लालपरी का हुस्न ही निराला है। जो इसके इश्क़ में फँसा, वह फँसा, फिर निकल नहीं सकता।"

दूसरे ने कहा—"हाँ, ग़रीब-परवर, इससे फँसने के लिये चाहिए हाथ-भर का कलेजा।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"बहुत ठीक है, बहुत ठीक। तुमने बावन तोला पाव रत्ती, बिलकुल काँटे में तौलकर कहा है। मैं तुम्हें इनाम दूँगा। अरे कोई है?"

नौकर आकर खड़ा हो गया।

राजा प्रकाशेंद्र ने झूमते हुए कहा—"जाओ, रामविलास को २००) इनाम दिला दो। जाता नहीं, हमारा हुक्म है।"

कहते-कहते ज़बान लड़खड़ाने लगी। नौकर बाहर चला गया।

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"तुम लोगों की दूसरी रानी आनेवाली हैं, इसका हाल तो तुमने अख़बारों में पढ़ा ही होगा।"

रामविलास नाम के कर्मचारी ने कहा—"हुज़ूर, सुना है, हुज़ूर

का इक़बाल बुलंद हो, ग़रीब-परवर का नाम तमाम आलम में रोशन हो रहा है।"

एक दूसरे अहलकार ने कहा—"आसफ़ुद्दौला का तो सानी भी था, मगर हुज़ूर लासानी हैं। रूपगढ़ की रियाया का सितारा आजकल बुलंदी पर है, जो ऐसी मुल्क-परस्त, क़ौम-परस्त देवी हम लोगों की रानी होंगी।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"अपनी प्रजा का दुख दूर करने के लिये, उसे तालीमयाफ़्ता करने के लिये ही मैं यह शादी कर रहा हूँ। आज लखनऊ का बच्चा-बच्चा मिस ट्रैवीलियन को जानता है।"

एक तीसरे कर्मचारी ने कहा—"उनकी जितनी भी तारीफ़ की जाय, थोड़ी होगी। वह तो सख़ावत की पुतली और रहम की अवतार हैं। उन्होंने न-मालूम कितने लँगड़े-लूलों को निहाल कर दिया है। इसमें कोई शक नहीं कि उनकी तशरीफ़आवरी से हम लोगों की ग़रीबी दूर हो जायगी, और रियाया हुज़ूर को तहे-दिल से दुआ देगी।"

राजा प्रकाशेंद्र ने प्रसन्न होकर कहा—"तुम्हारा बिलकुल ठीक ख़याल है। तुम्हें भी राज से इनाम मिलेगा।"

उस कर्मचारी ने उठकर पुराने बादशाही ढंग से मुजरा किया। राजा प्रकाशेंद्र ने अपने हाथ की अँगूठी निकालकर उसके पास फेंक दी। अँगूठी का हीरा बिजली के प्रकाश में अपने स्वामी की निष्ठुरता पर विचार करने लगा। उस कर्मचारी ने अँगूठी उठाकर दुबारा मुजरा किया। दूसरे लोग उत्सुकता से इनाम पाने के लिये राजा प्रकाशेंद्र की ओर चातक-दृष्टि से देखने ल गे।

राजा प्रकाशेंद्र ने फिर नौकर को बुलाया।

नौकर आकर खड़ा हो गया, और आदेश की प्रतीक्षा करने लगा।

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"जाओ, ख़ज़ांची से कहो कि हर-एक कर्मचारी को सौ-सौ रुपया इनाम बाँट दे। कल गाँवों में यह भी मुनादी करा दो कि ख़ूब जश्न करो, जिसका सारा ख़र्च राजा देगा। गाँव-गाँव में तवायफ़ नचाई जाय, और सरकारी कोठार से सबको खाने-पीने के लिये रसद गाँव-गाँव भेज दी जाय।"

नौकर सिर झुकाकर चला गया।

शराब का दौर फिर चलने लगा।

राजा प्रकाशेंद्र ने उठते हुए कहा—"अब तुम लोग जाओ, मैं आराम करूँगा। तुम लोग भी गाँवों में जाकर ख़ूब ख़ुशी और धूमधाम करो। नई रानी साहिबा बहुत जल्द गाँवों का दौरा करेंगी, और उस वक़्त वह बहुत इनाम-इकराम देंगी। उनके स्वागत में कोई ख़ामी रह गई, तो मैं सबको ठीक कर दूँगा।"

सारे अहलकारों ने एक स्वर में कहा—"ख़ुशनसीबी का वह दिन तो आए। हम लोग तो रानी साहिबा को सर-आँखों पर बिठाएँगे, उनके अहकाम की तामील फ़ौरन् होगी। ईश्वर की कृपा से वह दिन शीघ्र आवे।"

राजा प्रकाशेंद्र दूसरे कमरे में चले गए। थोड़ी देर बाद मोटर लाने का आदेश दिया। कपड़े बदलकर सीधे मिस ट्रैवीलियन के बँगले चले गए। वह उनका इंतज़ार कर रही थीं। मिस ट्रैवीलियन उस दिन भुवनमोहन रूप में थीं। सुंदर, सुडौल शरीर पर आसमानी साड़ी बहुत ही ज़ेबा मालूम हो रही थी, जिसके भीतर से उसका सौंदर्य फूट-फूटकर बाहर निकला पड़ता था।

राजा प्रकाशेंद्र सकते की हालत में हो गए। वह उसकी ओर एकटक देखने लगे।

मिस ट्रैवीलियन ने मुस्किराकर कहा—"इस तरह क्या देखते हो, क्या कभी देखा नहीं।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"मैं भ्रम में पड़ गया था, मुझे ऐसा ख़याल हुआ कि इंद्र के अखाड़े से कहीं नीलपरी तो नहीं उतर आई है।"

मिस ट्रैवीलियन एक अजीब नाज़ो अंदाज़ से हँसकर उनके गले से लिपट गईं, और कहा—"तुम्हें ख़ुशामद करना बहुत आता है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उसके अधरों का रस पान करते हुए कहा—"और तुम्हें रिझाना बहुत आता है।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"मैं रिझाती तो तुम्हीं को हूँ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने जवाब दिया—"और मैं ख़ुशामद तो तुम्हारी ही करता हूँ।"

मिस ट्रैवीलियन उनसे सटकर बैठ गईं।

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"आज मैंने अपने मवाज़ियात के अहलकारान को बुलाया था, उन्हें इनाम वग़ैरह देकर तुम्हारे स्वागत के लिये मुनादी करवा दी है। तमाम रियाया को ख़ुशी मनाने के लिये हुक्म दे दिया है।"

मिस ट्रैवीलियन के एक प्रेम-चिह्न अंकित कर रहा—"यह सब तुम्हारी मेहरबानी है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"मेरी मेहरबानी नहीं, तुम्हारा हुक्म है। मैं तो तुम्हारा ग़ुलाम हूँ, जो हुक्म दोगी, उसकी तामील बसरो-चश्म करना पड़ेगी।"

यह कहकर वह हँसने लगे। मिस ट्रैवीलियन भी हँसने लगीं।

मिस ट्रैवीलियन ने अलमारी खोलकर, सुरादेवी को निकाल-कर, एक गिलास भरकर राजा प्रकाशेंद्र को देते हुए कहा—"आओ, इस ख़ुशी में हम-तुम दोनो एक ही गिलास में बारी-बारी से पिएँ, इतना पिएँ कि होश न रहे।"

राजा प्रकाशेंद्र ने भर्राए हुए स्वर में कहा—"मुझे कभी होश में मत आने देना, नहीं तो सब खेल बिगड़ जायगा। मुझे हमेशा शराब में ग़र्क़ रक्खो। लाओ, आज थोड़ी-सी वह दवा भी पिलाओ, जो तुम्हारी ईजाद है, जिसके पीने से इंसान हैवान हो जाता है, बदसूरत-से-बदसूरत भी हसीने-आलम मालूम होती है। वह दवा पीकर मैं आज तुम्हारी ख़ूबसूरती देखना चाहता हूँ। लाओ।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"वह दवा अब नहीं रही। ख़तम हो गई।"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"मुझसे झूठ बोलना कब से सीखा। तुम्हें लाना होगा।"

राजा प्रकाशेंद्र के स्वर में आदेश था।

मिस ट्रैवीलियन आपत्ति न कर सकी। वह जाकर दो शीशियाँ ले आई। शराब में उनकी दो-दो बूँदें गिराकर कहा—"लो, पी जाओ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने संतुष्ट होकर कहा—"नहीं, तुम्हें भी पीना होगा। दो-दो बूँद और डालो।"

मिस ट्रैवीलियन ने बहुत आपत्ति की, लेकिन राजा प्रकाशेंद्र नहीं माने। दोनो उस दवा को पी गए। थोड़ी देर में उसके सुरूर ने उनको बदहवास करना शुरू कर दिया।

राजा प्रकाशेंद्र ने मिस ट्रैवीलियन से लिपटकर कहा—"तुम बड़ी ख़ूबसूरत हो, तुम्हारे लिये मैं त्रैलोक्य का भी राज निछावर कर सकता हूँ।"

मिस ट्रैवीलियन ने दूने जोश से उन्हें दबाते हुए कहा—"तुम संसार के पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ हो, तुम्हारे लिये मैं अपने को शैतान के हाथ भी बेच सकती हूँ। मैं रूपगढ़ की रानी हूँ। मायावती मेरी दासी है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उसके अधरों को पान करते हुए कहा—“माया-जैसी हज़ारों तुम्हारे क़दमों की ग़ुलाम होकर रहेंगी। तुम रूपगढ़ की ही नहीं, मेरे हृदय की रानी हो।”

मिस ट्रैवीलियन उनके हृदय से लिपट गई।

शैतान हँसता हुआ बाहर चला गया।

(११)

"अम्मा !"

राजेश्वरी ने सिर घुमाकर पूछा—"कहो, क्या है मन्नी ?"

मनोरमा ने धीमे स्वर में पूछा—"वह जीवित है, या मर गया ?"

राजेश्वरी ने नवजात शिशु को एक विश्वस्त दाई को देते हुए कहा—"मन्नी, वह तो मरा ही पैदा हुआ था।"

मनोरमा ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"यह है मातृत्व का प्रथम पुष्प, और यह है उसका भीषण अंत !"

राजेश्वरी ने मधुर कंठ से कहा—"यह तो अच्छा ही हुआ मन्नी। ईश्वर शीघ्र ही तुम्हारी गोद भरेगा।"

मनोरमा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह आँखें बंद करके सोचने लगी।

राजेश्वरी कमरे का परिष्कार करने लगी। प्रभात की प्रथम किरण यह रहस्य न देख पाई। पाप का फल अपने चिर-सहयोगी अंधकार में गिरकर उसी में लीन हो गया। मनोरमा के पेट का बोझ ख़ाली हो गया। जिस कमरे में वह पाप का फल प्रकट हुआ, उसे राजेश्वरी ने सदा के लिये बंद कर दिया। सूर्य ने उदय होकर मनोरमा को एक दूसरे परिष्कृत कमरे में नींद में बेख़बर देखा। वह अपनी सुनहरी किरणों से मनोरमा की क्षय हुई शक्ति को पुनः संचित करने लगा। उन्हीं किरणों में मिश्रित होकर, नवजीवन का मधुर रस प्लावित होकर सुषुप्ति अवस्था में उसको जीवन प्रदान करने लगा, और वे ही किरणें किसी के आगमन का संदेश भी उसे सुनाने लगीं।

मनोरमा ने आँखें खोलकर चारो ओर देखा—प्रकृति मुस्किरा रही थी। उसके मन में जीवित रहने की आशा बलवती हो उठी। सामने ही राजेंद्रप्रसाद का तैल-चित्र टँगा हुआ था। उसकी आँखें वहाँ जाकर ठहर गईं, और अपने स्वामी, जीवन-आधार के मौन प्रतिरूप को देखने में संलग्न हो गईं। वह चित्र मौन भाषा में उससे कहने लगा—"तुम यह ज़िद छोड़ दो, क्या तुम नहीं जानतीं कि तुम्हारे बिना मेरा जीवन निष्फल होगा। मेरे साथ ही अपने माता-पिता को भी जन्म-भर रोने के लिये मजबूर न करो। क्या संतान का यही कर्तव्य अपने माता-पिता की ओर होता है?"

मनोरमा सोचने लगी—"मैं मरना चाहती हूँ, मैं अपवित्र हूँ, इस अपवित्र शरीर से उनसे कैसे संबंध रक्खूँ? मेरे जीवन की मधुरता नष्ट हो गई। मेरा अभिमान धूल-धूसरित होकर लोट रहा है। संसार की दृष्टि में भले ही मैं अशुद्ध न गिनी जाऊँ, लेकिन मैं स्वयं तो अपनी दृष्टि में गिर गई हूँ। मुझे इस शरीर से घृणा है, यह पाप-रंजित शरीर बदलना ही होगा। मैं तो अमर हूँ, मेरी मौत नहीं, लेकिन इस कलेवर को तो बदलना ही पड़ेगा।

"लेकिन इस शरीर से जिनका-जिनका संबंध है, वे सब इसके छोड़ने से दुखी होंगे। अम्मा, जिनके जीवन का मैं ही आधार हूँ, ऐसी देवीरूपिणी मा, मेरे वियोग में बिलख-बिलखकर जान खो देंगी। पापा, जिनकी सारी आशाओं का मैं केंद्र हूँ, वह भी हताश होकर संसार से उदासीन हो जायँगे। और वह, वह तो मेरे बिना एक क्षण भी रह सकेंगे, इसमें संदेह है। मैं अपने मरण से तीन व्यक्तियों के मरने का कारण होऊँगी। फिर क्या किया जाय? मेरे मन में लोभ होता है, मोह होता है, और इनको छोड़ने में दुख होता है, फिर क्या करूँ?

"परंतु यह संबंध अमर तो नहीं है। जैसे शरीर क्षण-भंगुर है, वैसे ही यह संबंध भी। मान लो, आज मैं इनको न छोड़ूँ, तो क्या, कल, अभी न सही, दस-पंद्रह-बीस वर्ष बाद तो यह संबंध हरएक से क्रमशः स्वतः टूट जायगा। क्या उस समय वियोग का दुख और सहन नहीं करना पड़ेगा? मोह और ममता जितनी बढ़ाई जाय, उतना ही उसके तोड़ने में दुःख होता है।

"वह अभी तक नहीं आई। हवाई जहाज़ से तो सिर्फ़ चार ही दिन का मार्ग है, और तार दिए हुए आज छ दिन बीत गए, लेकिन अभी तक उनका कोई समाचार नहीं। वह मुझ अभागिनी के लिये कितना व्याकुल हैं। हाय! मैंने उनको व्यर्थ ही इतना कष्ट दिया। वह मुझे क्या कहेंगे? मैं उनको क्या जवाब दूँगी? अपनी पाप-कहानी किस मुख से कहूँगी। इसी चिंता ने तो मुझे उनको पत्र तक न लिखने के लिये मजबूर किया था। अब मेरा क्या होगा? और, अगर उन्होंने घृणा से अपना मुख मोड़ लिया, या मेरा विश्वास नहीं किया, तो...? मैं कैसे उनको विश्वास दिलाऊँगी कि मेरा कथन सत्य है—मैं मिस ट्रैवीलियन द्वारा बेहोश कर दी गई थी, और उस बेहोशी में उस नराधम ने मेरा सत्यानाश किया था। मिस ट्रैवीलियन से मैं कोई आशा नहीं कर सकती। मैंने उस दुष्ट का क्या बिगाड़ा था, जो ऐसा भयंकर बदला लिया। भगवान्, तुम साक्षी हो, इसका प्रतिशोध तुम लेना। अगर मैंने आज तक किसी को भी किसी प्रकार की हानि पहुँचाई हो, कष्ट पहुँचाया हो, किसी की आत्मा को दुखाया हो, तो इसका प्रतिशोध न लेना, लेकिन अगर मैं निष्कलंक हूँ, किसी को दुख न दिया हो, तो तुम इसका प्रतिशोध अवश्य लेना। द्रौपदी ने संधि-प्रस्ताव के समय तुमसे कहा था कि मेरे इन केशों का ध्यान रखना। जिसने इन केशों को भरी सभा में

उन्मुक्त कर मेरी लाज लेने की कोशिश की थी, उसे अछूता मत छोड़ देना, तो तुमने उसे आश्वासन दिया था। आज मैं भी आँचल पसारकर तुमसे प्रार्थना करती हूँ कि जिसने मेरा सर्वनाश किया है, मेरी लज्जा, मेरी पवित्रता भंग की है, और उसमें सहायता दी है, केशव, उसे अछूता मत छोड़ना। मैं नारी हूँ, अबला हूँ, तुम्हारे सिवा किसको पुकारूँ। देव, तुम जानते हो, मैं किस अग्नि में जल रही हूँ। क्या इसका प्रतिशोध न लोगे। लोग कहते हैं, ईश्वरीय प्रतिशोध बड़ा भयंकर होता है, मैं वही भयंकर प्रतिशोध चाहती हूँ।

"मैं अब नहीं मरूँगी। भीरु होकर नहीं मरूँगी। मैं प्रतिशोध देखने के लिये जीवित रहूँगी। देखूँ, क्या उनको दंड मिलता है। भगवान् की व्यवस्था, उनका न्याय देखने के लिये ज़िंदा रहूँगी। मरकर पति और माता-पिता का सुख-स्वप्न नष्ट नहीं करूँगी। केवल उनके लिये जीवित रहूँगी। अगर वह मेरा त्याग कर देंगे, तो इससे अधिक सुखदायी संबंध नहीं हो सकता। मेरा त्याग ही श्रेयस्कर है, मैं उनसे यही प्रार्थना करूँगी। उनके योग्य तो हूँ नहीं, फिर उनके द्वारा त्यक्त होने ही में उनका और मेरा कल्याण है—हिंदू-धर्म की पवित्रता है। हिंदू-नारी जीवन में केवल एक पुरुष को अपना शरीर अर्पण करती है। मैं भ्रष्ट हो गई हूँ। एक राक्षस की, नराधम की पाप-छाया से मेरा शरीर दुर्गंधित हो गया है, यह पापांग उन्हें छुलाकर कलुषित नहीं करूँगी। उनको आने दो, उनसे सब हाल कहकर मैं उनसे त्यक्त होने के लिये प्रार्थना करूँगी। अगर वह मेरी बात मान गए, तो यह शरीर रक्खूँगी, नहीं तो इसका अंत कर दूँगी। इसके लिये मुझे चाहे पाप लगे, या किसी को दुख हो, लेकिन इस अपवित्र शरीर से तो मैं अपनी भावी संतान को अपवित्र न बनाऊँगी।"

इसी समय बड़े वेग से एक मोटर आने का शब्द सुनाई दिया। घर में एक हलका गुंजन चारो ओर छा गया। राजेश्वरी का अस्फुट शब्द सुनाई देने लगा, और इसके बाद ही किसी के दौड़ने का शब्द सुनाई दिया। मनोरमा उत्सुक होकर द्वार की ओर देखने लगी। उसका हृदय बड़े वेग से धड़कने लगा। आनेवाले व्यक्ति राजेंद्रप्रसाद थे। राजेंद्रप्रसाद चिर-परिचित कमरे के द्वार पर आकर खड़े हो गए। उन्हें कहीं कुछ न दिखाई दिया। वह चारो ओर देखने लगे। वह बाहर जानेवाले थे कि मनोरमा ने धीमे स्वर में कहा—"आप आ गए!"

राजेंद्रप्रसाद ने चकित होकर फिर चारो ओर देखा। मनोरमा आहिस्ता-आहिस्ता उठकर बैठ गई थी। उसने हाथ जोड़कर प्रणाम किया।

राजेंद्रप्रसाद विस्मित और भयाकुल दृष्टि से मनोरमा की ओर देखने लगे। यह चम से ढका हुआ कंकाल ही क्या मनोरमा है, वह विश्वास न कर सके। वह उसके पास जाकर देखने लगे।

मनोरमा अपने नेत्र नीचे कर पृथ्वी की ओर देखने लगी।

राजेंद्रप्रसाद ने पहचानकर कहा—"मन्नी, यह तुम्हारी हालत कैसे हुई?" कहते-कहते उनके हृदय का बँधा हुआ आवेग बाँध तोड़कर बाहर निकलने लगा। उन्होंने उसके पलँग पर बैठना चाहा। मनोरमा ने धीमे स्वर में कहा—"नहीं, नहीं, मेरे पास मत बैठो, मुझे मत छुओ, मैं अपवित्र हूँ, आपके स्पर्श करने योग्य नहीं हूँ।"

राजेंद्रप्रसाद चकित होकर उसका मुख देखने लगे।

मनोरमा कहने लगी—"मैं सत्य कहती हूँ, कुर्सी पर बैठिए, और मुझे स्पर्श करने का प्रयत्न मत कीजिए। अगर स्पर्श करोगे, तो मैं सिर फोड़कर जान दे दूँगी।"

राजेंद्रप्रसाद ने विकल होकर कहा—"मैं इसका मतलब नहीं समझा। क्या तुम्हारा मतलब है कि मैं प्रायश्चित्त करने के बाद तुम्हें स्पर्श करूँ ? इँगलैंड जाकर मैं अपवित्र हो गया हूँ। ठीक है, धर्मानुसार प्रायश्चित्त करूँगा। मैं अलग बैठता हूँ।" यह कहकर वह एक कुर्सी पर बैठ गए।

बैठते ही उन्होंने पूछा—"हाँ, कहो, तुम्हारी यह हालत कैसे हुई ?"

मनोरमा ने आँसुओं को छिपाते हुए कहा—"अम्मा से पूछना। वह ख़ुद सब कह देंगी। तुम्हारे देखने की साध बाक़ी थी, वह पूरी हो गई। तुम स्वस्थ हो, सकुशल हो, बस, मेरा हृदय आनंद से विभोर है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"यह तो मैं तुम्हारी हालत देखकर जान गया हूँ कि तुम बहुत बीमार रहीं, लेकिन मेरी समझ में कुछ नहीं आता कि तुम क्या कह रही हो। मन्नी, क्या मैं तुम्हारे लिये इतना बेगाना और अपरिचित हो गया हूँ ?"

राजेंद्रप्रसाद के स्वर में उपालंभ का आभास था।

मनोरमा अपने उतावले मन का वेग अब सहन न कर सकी, वह फूट-फूटकर रोने लगी। राजेंद्रप्रसाद उसके आँसू पोंछने को आगे बढ़े। मनोरमा ने हाथ उठाकर मना करते हुए कहा—'मुझसे दूर रहो। मुझे स्पर्श मत करो। मैं भ्रष्ट हूँ, पाप-पंक में सनी हुई दुर्गंधित हूँ। मेरे स्पर्श से तुम्हारा अकल्याण होगा; तुम भी अपवित्र हो जाओगे। हटो, हटो, दूर हटो। मैं अपनी दुर्गंधित हवा भी तुम्हें स्पर्श नहीं कराना चाहती। कहती हूँ, हटो, दूर कुर्सी पर बैठो।"

मनोरमा के स्वर में आदेश की कठोरता थी।

मनोरमा का तीक्ष्ण स्वर सुनकर राजेश्वरी ने उस कमरे में

आकर कहा—"आप यहाँ आइए। कपड़े वग़ैरह उतारकर विश्राम कीजिए। डॉक्टरों के आने का वक़्त हो गया है।"

राजेंद्रप्रसाद किं-कर्तव्य-विमूढ़ होकर अपनी सास की ओर देखने लगे।

राजेश्वरी ने फिर कहा—"आइए, मैं सब हाल आपसे बयान करती हूँ। उसकी ज़िद तो आप जानते ही हैं।"

राजेंद्र राजेश्वरी के पीछे-पीछे चले गए। कमरे के द्वार पर ही बाबू राधारमण मिले। राजेंद्र ने उन्हें प्रणाम किया। राधारमण ने उन्हें अपने हृदय से लगाकर आशीर्वाद दिया।

राजेश्वरी ने सब कथा राजेंद्र से कह दी। राजेंद्रप्रसाद ने छाती पर पत्थर रखकर सब सुनी। मनोरमा की मिथ्या आशंका, अद्‌भुत प्रतिज्ञा सुनी, अपने पत्र न लिखने का कारण सुना। डॉक्टरों का मंतव्य सुना, और चिकित्सा का सारा हाल सुना। सब हाल सुनकर एक दीर्घ निःश्वास ली। राजेश्वरी भयाकुल दृष्टि से उनकी ओर देखने लगी।

राजेंद्रप्रसाद कहने लगे—"इस ट्रैवीलियन ने न-मालूम कितने घरों का सर्वनाश किया है। यह मानवी है, या दानवी। हे ईश्वर! तेरी दुनिया में ऐसे अधम पापी कैसे रहते हैं?"

राजेश्वरी ने कहा—"तुम्हारे बाबूजी ने पहले उस पर मुक़दमा चलाने का विचार किया, लेकिन मैंने उचित नहीं समझा।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"मुक़दमा चलाना ही चाहिए। अगर पहले नहीं चलाया था, तो अब मैं चलाऊँगा, और दोनो को सज़ा कराकर छोड़ूँगा। इस पापाचार के केंद्र को तोड़ना पड़ेगा, नहीं तो न-मालूम कितनी भोली-भाली रमणियों का सर्वनाश होगा। मुक़दमा चलाने में लज्जा किस बात की? इसी भय ने तो आज हिंदू-रमणियों को भीरु बना दिया है; और यह आततायियों को अत्याचार करने के लिये उत्तेजना देता है। किसी दवा को खाकर सुध-बुध खो देने से, उसका सतीत्व भंग होने पर भी, उसकी पवित्रता नष्ट नहीं हुई। पवित्रता आत्मा का गुण है, न कि शरीर का। मैं तो आज बाबूजी से कहूँगा कि वह मुक़दमा दायर कर दें। क़ानून उपयोग करने के लिये ही बनाया गया है।"

राजेश्वरी ने भय-विह्वल स्वर से कहा—"इससे तो हमारी बहुत बदनामी होगी। इसी बदनामी से बचने के लिये मैं बाहर घूमती रही, और किसी को भी मनोरमा के पास नहीं जाने दिया। क्या किया जाय, बदनामी से तो डरना ही पड़ता है।"

राजेंद्र ने सक्रोध कहा—"पापी को दंड देने के लिये अगर किसी तरह की बदनामी भी हो, तो उसे सहन करना चाहिए। बदनामी क्षणिक वस्तु है, लेकिन इसी डर से अगर अपराधी को दंड न दिया जायगा, तो वह अपराध करता रहेगा, और उसका प्रतिकार कभी न होगा।"

राजेश्वरी ने शांत स्वर में कहा—"ईश्वरी न्याय सर्वोपरि न्याय है। यह भगवान् की इच्छा से हुआ, और वह इसका निर्णय आप करेंगे। उनके यहाँ अन्याय नहीं होता, वह सब जानते हैं, और सब देखते हैं। वह न्याय के लिये गवाहों पर निर्भर नहीं रहते। सत्य की विजय हमेशा रही है, और रहेगी।"

राजेंद्रप्रसाद ने क्षुब्ध होकर कहा—"हम ईश्वरी न्याय की इंतिज़ारी में क्या हाथ-पर-हाथ रक्खे बैठे रहें? ईश्वर ने हमें बुद्धि दी है, शासन दिया है, क़ानून दिया है, उसका उपयोग करके हमें अपना प्राप्य लेना उचित है।"

राजेश्वरी ने कहा—"ठीक है, परंतु क्षमा ईश्वर का सबसे मनोरम आशीर्वाद है। शत्रु को क्षमा करना मनुष्यत्व की चरम सीमा है, और वास्तव में वही क्षमा है। जिसने घर जलाकर खाक कर दिया हो, उसे ही क्षमा करना वास्तविक क्षमा है। इस तरह क्षमा कर देने पर दैविक शक्तियाँ अपना प्रतिशोध लेती हैं, और तब वह प्रतिशोध मनुष्य के न्याय से, प्रतिशोध से कहीं अधिक तीव्र और गुरुतर होता है। बेटा, सब्र करो, उस पापिनी की आसक्ति पाप में है, पाप का घड़ा फूटने पर वह उसी को बहा

हो जायगा। उस समय तुम देखना, सांसारिक शक्तियाँ उसके विरुद्ध हो जायँगी, और तब उसका कल्याण न तो इस जन्म में होगा, और न पर जन्म में।"

राजेंद्रप्रसाद ने कुछ उत्तर नहीं दिया। वह उठकर मनोरमा से साक्षात् करने के लिये गए।

मनोरमा अपना सारा साहस एकत्र कर उनके आगमन की प्रतीक्षा कर रही थी। उन्हें देखते ही उसने कहा—"आइए, बैठिए।"

राजेंद्रप्रसाद चुपचाप एक कुर्सी पर बैठ गए।

मनोरमा ने कहा—"मैं आपसे कुछ बातें करना चाहती हूँ।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"मैं सब सुनकर आया हूँ। मैं कुछ सुनना नहीं चाहता। मुझे केवल इतना कहना है कि तुमने अपनी बेवक़ूफ़ी से तीन आदमियों की जान को आफ़त में डाल रक्खा है। तुम्हारे दिमाग़ में अद्भुत ख़यालात भर गए, और तुम्हारी ज़िद ने उन अद्भुत ख़यालों को सहारा देकर ज़ोरदार कर दिया। मैं तो यही कहूँगा कि तुममें प्रेम नहीं है, तुममें हृदय नहीं है, और तुममें त्याग, मोह, ममत्व कुछ नहीं है। तुम केवल अपने ख़यालों की तरह हृदय-हीन, प्रेम-हीन और ममत्व-हीन हो। तुम अपनी मा को जान से मारने में, अपने पिता को पागल करने में और मुझे जन्म-भर रुलाने के लिये बड़ी चतुर हो, बड़ी होशियार हो। क्या यही तुम्हारा कर्तव्य है? क्या यही तुम्हारी शिक्षा है? क्या यही तुम्हारा ज्ञान है? हिंदू-धर्म की पवित्रता को लेकर बैठी हो, और वह भी हिंदू-धर्म की वास्तविक पवित्रता नहीं है। यह तुम्हारी छोटी-सी बुद्धि में कभी विचार न आया कि पवित्रता का संबंध आत्मा से है, शरीर से नहीं। जब तक आत्मा पवित्र है, सब कुछ पवित्र है। यह शरीर तो केवल आत्मा का परिधान है। कपड़ों

पर अगर कोई विष्ठा डालकर अपवित्र कर देता है, तो क्या कपड़ों को जला दिया जाता है। उनको साबुन लगाकर या और किसी तरह साफ़ कर व्यवहार में लाते हैं। अगर किसी आततायी ने कोई दवा पिलाकर शरीर की शुद्धता को नष्ट कर दिया, तो क्या इसके ये माने हैं कि शरीर को नष्ट कर दो? नहीं, कभी नहीं। हमारे शास्त्र में प्रायश्चित्त, यम, नियम वग़ैरह का क्यों विधान है? क्या ये केवल सुनने या जानने की वस्तुएँ हैं—व्यवहार करने की नहीं? तुमने एक मिथ्या कल्पना में फँसकर अपना सुख नष्ट किया, अपनी माता का सुख नष्ट किया, अपने पिता की शांति भंग की, और मुझे जो पीड़ा दी है, उसे मैं किन शब्दों में व्यक्त करूँ, नहीं जानता।" यह कहकर वह ज़ोर से हँस पड़े। उनकी हँसी की प्रतिध्वनि कमरे में गूँजकर मनोरमा का परिहास करने लगी।

राजेंद्रप्रसाद फिर कहने लगे—"हाँ, मैं तैयार हूँ, कहो, मैं सुनता हूँ। तुम शायद यही कहना चाहती हो कि मैं तुम्हें त्याग दूँ, और दूसरा विवाह कर लूँ? बोलो, इसके अतिरिक्त क्या तुम्हें और कुछ कहना है? तुम्हें त्याग दूँ? यह लड़कों का खेल है। तुमको क्या त्यागने के लिये मैंने अग्नि को साक्षी देकर तुम्हारा पाणिग्रहण किया था? क्या तुम्हारी शारीरिक अपवित्रता को मैं शुद्ध नहीं कर सकता, जो मैं तुमको त्याग दूँ? मैं अपने तेज से तुम्हें शुद्ध करूँगा। आज हिंदू-धर्म का नाश क्यों हो रहा है। तुम्हारे-जैसे विवेक और तर्क से। संसार-व्यापी, नहीं ब्रह्मांड-व्यापी धर्म को तुम एक छोटे-से घड़े में भरकर रखना चाहती हो? यही कारण है कि हिंदू आज दासता में आबद्ध हैं। तुम प्रतिकार नहीं जानतीं, तुम संघर्षण से, जो जीवन का असली तत्त्व है, डरती हो, फिर तुममें जीवन कहाँ से हो। देखो, मुमूर्ष होकर हम सबको मारने का आयोजन कर रही हो। तुम्हारी-जैसी मति अगर किसी

योरपियन-समाज की महिला की हुई होती, तो जानती हो, उसका परिणाम क्या होता? मिस ट्रैवीलियन आज जेल की हवा खाती होती, और उस वीर रमणी के साहस की प्रतिष्ठा होती। उसे अप-वित्र कहने का कोई साहस न करता। परंतु तुम अपने को अपवित्र कहकर, समझकर और विश्वास कर आत्मघात कर रही हो! क्या तुम्हारी आत्मा इतने नीचे गिर गई है कि तुममें प्रतिशोध लेने की इच्छा जाग्रत् नहीं होती? उठो, साहस-पूर्वक अपने अपमान का प्रतिशोध लो। तुम हिंदू-नारी हो, लेकिन अबला नहीं हो। तुम शक्ति का भांडार हो, मेरी भी सहायता की परवा न करो, अपने अपमान का प्रतिकार स्वयं करो। दुनिया को मालूम तो हो कि हिंदू नारी अपनी रक्षा का उपाय जानती है। अपनी इज़्ज़त-आबरू की रक्षा वह स्वयं कर सकती है, उसे पुरुष की आवश्यकता नहीं। साहस के लिये तुम्हें कहीं दूर न जाना पड़ेगा, साहस तुम्हारे हृदय में है, केवल उसकी गति और रूप बदलना है। जिस साहस से तुम आत्मघात-जैसा मुश्किल कार्य कर रही थीं, उसी साहस का मुख प्रतिशोध के लिये घुमा दो। तुममें अपने आप शक्ति भर जायगी। संसार में कोई निःशक्त नहीं, केवल शक्ति के उपयोग की योग्यता और बुद्धि चाहिए।"

राजेंद्रप्रसाद तीक्ष्ण दृष्टि से मनोरमा की ओर देखने लगे।

मनोरमा के विचार राजेंद्रप्रसाद की बातों के बवंडर में उड़कर बिखर गए। वह आश्चर्य से उनकी ओर देखने लगी। उसके मुख पर मलिनता की जगह तेज का प्रकाश था, उसकी आँखों के आँसू सूख गए थे, उनमें सुहाग और हर्ष झाँक रहा था।

राजेंद्रप्रसाद ने अपनी औषधि का प्रभाव देखकर कहा—"बोलो, सखी, क्या प्रतिशोध नहीं लोगी? अपने अपमानकारी की जड़ खोदकर निर्मूल न कर दोगी? तुम यहाँ अपवित्र-अपवित्र कहकर

जान दे रही हो, और देखो, तुम्हारे अपराधी विवाह के आनंद में विभोर हो रहे हैं। तुमको मालूम है, राजा प्रकाशेंद्र और मिस ट्रैवालियन का परसों विवाह होनेवाला है। वे तो आनंद में विहार करें, और तुम हम तीनो को मारकर अपनी पवित्रता के साथ तांडव-नृत्य करो।"

मनोरमा ने खीझकर कहा—"बस करो, अब तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ, मुझे......"

राजेंद्रप्रसाद हँसने लगे।

मनोरमा ने कहा—"तुम पहले क्यों न आए। मुझे इतने दिन क्यों भुगताया, जाओ, तुम बड़े निष्ठुर हो।"

राजेंद्रप्रसाद ने हँसकर कहा—'यह लो, उलटा चोर कोतवाल को डाँटे। तुमने हृदयहीनता की परा काष्ठा दिखलाई, या मैंने?"

मनोरमा ने हँसते हुए कहा—"तुमने। तुम मुझे छोड़कर अकेले चले गए थे, उसी का मैंने यह बदला लिया है। अब मुझे छोड़कर कभी मत जाना।"

राजेंद्रप्रसाद ने उठकर, उसे अपनी गोद में बिठाकर प्यार करते हुए कहा—"नहीं, मैं ऐसी भूल दुबारा नहीं करूँगा। मेरी मनो, मुझे क्षमा करो।"

मनोरमा ने अपना सिर उनके वक्षःस्थल में छिपाकर कहा—"मुझसे अब नहीं मरा जायगा। अब मुझे अकेले छोड़कर कभी मत जाना, नहीं तो मुझे जीवित न पाओगे।"

राजेंद्रप्रसाद ने उसके शुष्क केशों पर हाथ फेरते हुए कहा—"क्या मुझे अकेले छोड़कर मरने की इच्छा होती थी? सच कहना।"

मनोरमा ने अपना मुख छिपाते हुए कहा—"यही भय तो मुझे

मरने नहीं देता था। इस भय से कि कहीं तुम मेरा त्याग कर दो, तो मैं कैसे जीवित रहूँगी, इसीलिये मैं मरना चाहती थी।"

राजेंद्रप्रसाद ने मुस्किराकर कहा—"तुमने तो अपने जीवित रहने की शर्त यही निश्चित की थी कि मैं तुम्हें त्याग दूँ।"

मनोरमा ने आश्चर्य के साथ उनकी ओर देखकर कहा—"यह तुम्हें कैसे मालूम हुआ?"

राजेंद्रप्रसाद ने उसके कपोल पर एक प्रेम की चपत लगाकर कहा—"मेरी और तुम्हारी आत्मा में अंतर कितना है?"

मनोरमा ने उत्तर दिया—"जितना परमात्मा और आत्मा में है।"

राजेंद्रप्रसाद हँसने लगे। मनोरमा भी हँसने लगी।

थोड़ी देर बाद राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"मन्नी, तुम बड़ी निष्ठुर हो।"

मनोरमा ने उसके हृदय से लिपटते हुए कहा—"जैसे तुम बड़े कोमल हो!"

फिर दोनो चुप हो गए।

थोड़ी देर बाद मनोरमा ने पूछा—"अच्छा, यह तो निर्णय करो कि विजयी कौन हुआ?"

राजेंद्रप्रसाद ने उसके शुष्क अधरों पर अपनी छाप लगाते हुए कहा—"तुम।"

मनोरमा ने प्रत्युत्तर देते हुए कहा—"नहीं, तुम।"

दोनो हँसने लगे।

(१३)

रूपगढ़-हाउस गोमती से कह रहा था—"तूने नवाबों के महलों की सजावट देखी है, लेकिन सच कहना, क्या उनकी सजावट मेरी से बढ़ी-चढ़ी थी ?"

गोमती उसके कथन पर कुछ ध्यान न देती, और मंथर गति से बहती चली जाती थी। रूपगढ़-हाउस फिर कहता—"अच्छा, बीसवीं शताब्दी में ऐसी सजावट कहीं अन्य जगह देखी है ?"

गोमती कुछ देर ठहरकर, उसका वैभव देखकर, फिर मंथर गति से बहने लगती। रूपगढ़-हाउस फिर कहता—"अरे, कुछ जवाब तो दे।"

गोमती अपनी भृकुटियाँ वक्र किए हुए ठहर गई, और पूछा—"क्या पूछता है ?"

रूपगढ़-हाउस ने कहा—"मेरी-जैसी सजावट तूने कहाँ-कहाँ, और कब देखी है, बतला ?"

गोमती झुँझला उठी। उसने कहा—"तेरे-जैसे विश्वासघाती से मैं बात करना पसंद नहीं करती।"

रूपगढ़-हाउस ने कहा—"मैं विश्वासघाती हूँ ? कैसे ?"

गोमती ने कहा—"अपने हृदय से पूछ, मैं क्या जवाब दूँ। असली स्वामिनी के वियोग में जिसे आँसू बहाना था, वही आज एक वारवनिता, नहीं, उससे भी अधम, शैतान की सहचरी के स्वागत में आनंद-विभोर है। तुझे याद नहीं लेकिन मुझे याद है। तेरी स्वामिनी ने जिस दिन तेरी प्राण-प्रतिष्ठा की थी, उस दिन तेरी

सजावट आज से भी अधिक थी।" यह कहकर गोमती बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए वेग से चल दी।

रूपगढ़-हाउस मन-मलीन होकर सोचने लगा।

मिस ट्रैवीलियन ने सजावट देखते हुए कहा—"राजा साहब, आपने सचमुच कमाल कर दिया! ऐसी सजावट तो मैंने कभी नहीं देखी।"

रामविलास-नामक कर्मचारी ने हाथ जोड़कर कहा—"हुज़ूर, यह सब सामान बड़ी रानी साहबा का मँगवाया हुआ है, उन्हें आराइश से......"

रामविलास राजा प्रकाशेंद्र की चढ़ी हुई भृकुटियाँ देखकर चुप हो गया।

मिस ट्रैवीलियन ने पूछा—"क्या यह सब रानी मायावती का है?"

राजा प्रकाशेंद्र ने मुख मरोड़ते हुए कहा—"उसका कहाँ से आया? क्या वह अपने बाप के यहाँ से लाई थी? यह सब स्टेट का है।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"कम-से-कम उनका मँगवाया हुआ तो है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने उत्तर दिया—"हाँ, रुपया उड़ाने में वह भी उस्ताद थी।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"और शायद तुम संचय करने में हो।" यह कहकर वह हँसने लगी।

राजा प्रकाशेंद्र मुँह फिराकर वेग से आती हुई मोटर की ओर देखने लगे।

वह मोटर उन्हीं के बँगले में आती मालूम हुई।

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"चलो, स्वागत करें, कोई आमंत्रित

मेहमान आया है। आज दस बजे तक सबके इकट्ठा हो जाने पर शादी के लिये लिखा-पढ़ी की जायगी। तुम तो सजावट देखने में मशगूल हो, और उधर मेहमान आ रहे हैं।"

मिस ट्रूवीलियन ने उत्तर दिया—"अभी तो आठ बजे हैं, इतनी जल्दी कौन आवेगा। वक़्त तो दस बजे दिन का दिया है।"

इसी समय मोटर पोर्टिको में आकर ठहर गई। रूपगढ़-हाउस का सुनहरी वरदी पहने हुए द्वार-रक्षक मोटर का दरवाज़ा खोल अदब के साथ एक ओर खड़ा हो गया। राजा भूपेंद्रकिशोर मोटर के बाहर निकल आए। उनके पीछे भेष बदले डेविड मायादास उतरा। राजा भूपेंद्रकिशोर ने द्वारपाल से पूछा—"क्या राजा साहब अंदर हैं?"

द्वारपाल ने अदब के साथ कहा—"जी हुज़ूर, सामने ही बड़े हॉल में विराजते हैं, आप पधारिए।"

राजा भूपेंद्रकिशोर लंबे-लंबे पगों से उनके बताए हुए स्थान की ओर चले।

ईश्वर की जगह शैतान को देखकर मनुष्य उतना चकित न होगा, जितना राजा प्रकाशेंद्र अपने ससुर को देखकर हुए। अभ्यर्थना से बढ़ा हुआ हाथ नीचे गिर पड़ा, मुख पर आई हुई स्वागत-मुस्कान उलटे पैरों उनके हृदय की उथल-पुथल में खो गई, उनकी आँखें जो क्षण-भर पहले मुस्किरा रही थीं, घबराहट और बेचैनी से उनकी ओर देखने लगीं। मिस ट्रूवीलियन भी चकित होकर, उनका भाव-परिवर्तन निरखकर परेशान होने लगी। उसकी दृष्टि घूमती हुई उस व्यक्ति पर ठहर गई, जो छाया की भाँति आगंतुक के पीछे सटा खड़ा था। उसके कोट की जेबें किसी भारी वस्तु के होने की सूचना दे रही थीं। उसकी हैट ज़रूरत से ज़्यादा नीचे खिंची हुई थी, और उसका मुख एक घनी दाढ़ी से छिपा

हुआ था। उसकी आँखों की चमक बार-बार मिस ट्रैवीलियन की ओर जाकर उसकी आँखों में चकाचौंध पैदा करती, परंतु दृष्टि-विनिमय होते ही वह नीचे की ओर देखने लगता। उन दोनो व्यक्तियों के आगमन से राजा प्रकाशेंद्र सिहिर उठे। मिस ट्रैवीलियन भी सिहिर उठी।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने व्यंग्य-भरी मुस्कान से कहा—"मैं भी आदर्श विवाह में सम्मिलित होने के लिये आया हूँ। हालाँकि मुझे निमंत्रण देना भूल गए थे, परंतु मैं अपने आदर्श जमाई की दूसरी आदर्श वधू के दर्शन का लोभ संवरण नहीं कर सका। बिना बुलाए आने की माफ़ी चाहता हूँ।"

फिर मिस ट्रैवीलियन की ओर देखा। उनकी तीक्ष्ण दृष्टि से वह सिहिर उठी।

उन्होंने मिस ट्रैवीलियन से कहा—"मिस साहबा, शायद आप ही वह आदर्श वधू हैं, जिनका पाणिग्रहण कर मेरे आदर्श जमाई हिंदू-समाज का मुख उज्ज्वल करेंगे। मैं आप दोनो आदर्श दंपती को बधाई देता हूँ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने इतने समय में साहस संचित कर लिया था। उन्होंने सिर झुकाकर कहा—"हम लोग आपको हृदय से धन्यवाद देते हैं!"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"क्या मैं बैठ सकता हूँ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"सहर्ष आए हुए मेहमान को घर से बाहर निकालना शिष्टता-विरुद्ध है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने एक कुर्सी की ओर इशारा किया। राजा भूपेंद्रकिशोर बैठ गए। डेविड मायादास उनके पीछे शरीर-रक्षक की भाँति खड़ा हो गया।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"क्या इस घर में यही एकांत स्थान है?"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"अभी तो यह एकांत ही है। हाँ, थोड़ी देर में मेहमान आ जायँगे, तब मैं इसे एकांत न कह सकूँगा।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"तब क्या मैं आपसे खुलकर बातें कर सकता हूँ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने उत्तर दिया—"यह मैं कैसे कह सकता हूँ। बातें आप करना चाहते हैं, मैं कैसे कह सकता हूँ।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने हँसकर कहा—"बेशक, बातें मैं करना चाहता हूँ। मैं सिर्फ यह जानना चाहता था कि हम लोग क्या आपकी भावी आदर्श वधू के सामने बातें कर सकते हैं? आपको कोई आपत्ति तो नहीं है?"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"मुझे तो कोई आपत्ति नहीं है, और न कोई बात मेरी आदर्श वधू से छिपी है। आप सहर्ष कहें, लेकिन जल्द कहें, क्योंकि मेरे मेहमानों के आने का समय हो गया है। साढ़े नौ बजे तक सब लोग आ जायँगे, और ठीक दस बजे भोज है। भोज के बाद ही हम लोग विवाह की लिखा-पढ़ी कर उसकी रजिस्ट्री कराने के लिये जायँगे।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"ठीक है, तो क्या यह विवाह बिलकुल तय हो गया है?"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"इसमें क्या कुछ संदेह है?"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"क्या इसे आप बंद नहीं करेंगे?"

राजा प्रकाशेंद्र बड़े ज़ोर से हँस पड़े। उनके हास्य की प्रतिध्वनि गूँजकर राजा भूपेंद्रकिशोर का परिहास करने लगी।

राजा भूपेंद्रकिशोर की भ्रू कुंचित हो गईं। उन्होंने कहा—"मैं यह विवाह बंद करने के लिये आया हूँ।"

राजा प्रकाशेंद्र फिर हँस पड़े। उन्होंने हँसते हुए कहा—"यह विवाह तो किसी तरह बंद नहीं हो सकता। हिंदू-क़ानून एक से ज़्यादा स्त्रियों के विवाह की आज्ञा देता है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने मिस ट्रेवीलियन की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—"लेकिन ईसाई-धर्म तो एक से अधिक विवाह करने की आज्ञा नहीं देता।"

केवल एक क्षण-भर के लिये मिस ट्रेवीलियन का मुख विवर्ण हो गया, परंतु दूसरे ही क्षण वह ज्यों-का-त्यों हो गया। राजा भूपेंद्रकिशोर ने वह क्षणिक परिवर्तन चाहे भले ही न देख पाया हो, लेकिन डेविड मायाराम की सतर्क दृष्टि से छिप न सका। उसकी आँखें चमक उठीं, जिन्हें देखकर मिस ट्रेवीलियन फिर काँप उठी। वह तीक्ष्ण दृष्टि से राजा भूपेंद्रकिशोर की ओर देखने लगी।

राजा प्रकाशेंद्र ने मुस्किराते हुए कहा—"हालाँकि मेरी आदर्श वधू ईसाई-मत की हैं, लेकिन वह भी अभी तक अविवाहित हैं, और मैंने ईसाई-धर्म ग्रहण नहीं किया, इसीलिये आपका परिश्रम व्यर्थ जायगा। मुझे निहायत अफ़सोस है कि आपको निराश होना पड़ेगा। आगे कहिए, मैं आपकी किस तरह सहायता कर सकता हूँ।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने शांत स्वर में कहा—"आपकी सहायता के लिये धन्यवाद! अब आप मेरे सामने अपनी आदर्श वधू से पूछें कि क्या वह अविवाहित हैं?"

मिस ट्रेवीलियन का मुख फिर विवर्ण हो गया। आँखों से घबराहट झाँकने लगी।

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर उत्तर दिया—"इसके लिये आप व्यर्थ कष्ट न करें, मुझे मालूम है कि मिस ट्रेवीलियन अविवाहित हैं।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने चौंककर कहा—"क्या कहा, मिस ट्रैवीलियन ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"हाँ, मिस ट्रैवीलियन। यही मेरी आदर्श वधू का नाम है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"अच्छा, अगर आप नहीं पूछते, तो मैं ही पूछता हूँ। हाँ, तो मिस ट्रैवीलियन, क्या आप अभी तक अविवाहित हैं ?"

मिस ट्रैवीलियन ने साहस के साथ कहा—"हाँ, मैं अभी तक अविवाहित हूँ। हम लोगों में बहुत साल तक विवाह नहीं करते। इँगलैंड, प्यारे इँगलैंड में आपको सैकड़ों वृद्ध अविवाहित मिलेंगे।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"ख़ैर, आप इँगलैंड की बातें मेरे सामने न करें। आपने तो कभी इँगलैंड देखा भी नहीं, लेकिन मेरी आधी उम्र इँगलैंड में ही बीती है।"

मिस ट्रैवीलियन ने सक्रोध कहा—"आप क्या कहते हैं, मैंने इँगलैंड देखा नहीं ? यह आप क्या कहते हैं, मैं इँगलैंड ही में पैदा हुई, और वहीं शिक्षा पाई।"

राजा प्रकाशेंद्र ने अधीर होकर कहा—"अब आप बैठिए, मोटर की आवाज़ आई है, मेरे मेहमान आ रहे हैं, मुझे क्षमा कीजिए। और, अगर आप जाना चाहें, तो शौक़ से तशरीफ़ ले जायँ। लेकिन हम लोग अब अपना समय व्यर्थ की बकवाद में नष्ट नहीं कर सकते।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने कहा—"अच्छा, तो आप अपने मेहमानों का स्वागत करें। उनके एकत्र हो जाने पर बात करूँगा। तब तक मैं आपके बग़ीचे में मन बहलाता हूँ।" यह कहकर वह उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना कमरे से बाहर हो गए।

डेविड मायादास छाया की तरह उनके पीछे-पीछे अदृश्य हो गया।

मिस ट्रैवीलियन ने एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा—"मुझे तो इस आदमी से डर मालूम होता है। इसकी गंभीरता कहती है कि यह इस शुभ अवसर में कोई विघ्न पैदा करेगा। यही माया का बाप है ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने हँसकर कहा—"हाँ, यही माया का बाप है! यह बड़ा अच्छा हुआ, जो इस मौक़े पर आ गया। यह विवाह देखकर सिर धुनेगा, और अपनी लाड़ली के लिये शुभ संवाद ले जायगा, जिसे सुनकर वह जन्म-भर आनंद मनाएगी। तुम्हें इससे भयभीत होने की कोई ज़रूरत नहीं। यह मेरा कुछ अनिष्ट नहीं कर सकता।"

मिस ट्रैवीलियन ने उत्फुल्ल होने का प्रयत्न करते हुए कहा—"मुझे माया के बाप से उतना डर नहीं, जितना उस व्यक्ति से भय लगता है, जो छाया की तरह उसके पीछे है। यह कौन है, मैं नहीं जानती, लेकिन उसकी आँखें इस तरह चमकती हैं, मानो मुझे भस्म कर देंगी। यह कौन है ?"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"मैंने इसे कभी नहीं देखा। अपनी ससुराल के सारे नौकरों को जानता हूँ, उनमें से तो यह कोई नहीं है, परंतु यह मुमकिन है कि यह कोई नया नौकर हो। तुम्हें कुछ डरने की ज़रूरत नहीं।"

मिस ट्रैवीलियन ने कहा—"उसकी जेबें भारी थीं, मुझे तो उनके अंदर पिस्तौलें मालूम होती हैं।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"पिस्तौल का डर अब नहीं है।" यह कहकर वह हँसने लगे।

राजा प्रकाशेंद्र के मेहमान आने लगे। वह उनके स्वागत में लग गए, और राजा भूपेंद्रकिशोर को थोड़ी देर के लिये भूल गए।

राजा प्रकाशेंद्र के मेहमान जमा हो गए। एक बड़ी लंबी टेबिल के चारो ओर मेहमान और मध्य में मिस ट्रैवीलियन के साथ राजा प्रकाशेंद्र बैठ गए। शराब का दौर चलने लगा। नव-दंपती की स्वास्थ्य-कामना में पेग-पर-पेग उड़ने लगे। दूसरे लोगों के बाद राजा प्रकाशेंद्र उठकर खड़े हुए, और मेहमानों ने करतल-ध्वनि की। राजा प्रकाशेंद्र ने सबको धन्यवाद देकर कहा—"रूपगढ़ की रानी का परिचय देने की आवश्यकता नहीं। उन्हें आप लोग मुझसे ज़्यादा जानते हैं, क्योंकि उनकी हमारे समाज के लिये सेवाएँ किसी से छिपी नहीं। उन्होंने जिस प्रकार हमारे हिंदू-समाज की नारी-जाति में जागृति उत्पन्न की है, वह आपसे छिपी नहीं। मैं ऐसी आदर्श समाज-सेविका को पत्नी-रूप में पाने के लिये ईश्वर को धन्यवाद देता हूँ, और साथ ही आप लोगों को भी धन्यवाद देता हूँ कि इस विवाह में आप लोगों ने योग देकर हिंदू-समाज को चुनौती दी है कि अब अगर हिंदू-समाज अपने को बदलता नहीं, तो उसका नाश अवश्यंभावी है। मैं भी एक तुच्छ समाज-सेवक हूँ। केवल समाज में अपने नवयुवकों के सामने एक उदाहरण रखने के लिये मैं जाति-पाँति की कौन कहे, धर्म, अंध-विश्वास को तोड़कर यह विवाह करने जा रहा हूँ, जिसमें आप लोगों के बतौर गवाह हस्ताक्षर होंगे। आशा है, आप हमारे साथ सहयोग कर हमें उत्साहित करेंगे। एक बार हम लोग आपको फिर धन्यवाद देते हैं!"

करतल-ध्वनि फिर होने लगी। नवयुवक ताल्लुक़ेदार और उनके सुशिक्षित राज्याधिकारी हर्ष प्रकट करने लगे।

इसी समय अकस्मात् राजा भूपेंद्रकिशोर ने प्रकट होकर कहा—"आप श्रीमानों से मेरी एक प्रार्थना है कि आप लोग शांत होकर दो मिनट का अवसर प्रदान करें, ताकि मैं भी इस आदर्श विवाह में योग दे सकूँ, और वर-वधू के सानंद जीवन की प्रार्थना करूँ। मैं आपका परिचय स्वयं देता हूँ। मेरा नाम भूपेंद्रकिशोर है। मैं बंगाल का ज़मींदार हूँ, और राजा साहब का सबसे निकट संबंधी हूँ, यानी राजा साहब मेरे जामाता हैं। मेरी लड़की माया का राजा साहब ने पाणिग्रहण करके हम सबको कृतार्थ किया था। मैं भी इस शुभ अवसर में सम्मिलित होने के लिये अकस्मात् आ गया हूँ, और नव-दंपती के लिये मैं हृदय से कल्याण-कामना करता हूँ।"

राजा भूपेंद्रकिशोर के गंभीर शब्दों और उनके रोबीले चेहरे ने उस नवयुवकों की मंडली पर अपनी धाक जमा दी।

कई लोगों ने सहर्ष कहा—"आप सहर्ष कहें, हम आपका स्वागत करते हैं, और आपका परिचय प्राप्त होने से हम लोगों को बहुत आनंद हुआ।"

राजा प्रकाशेंद्र मना न कर सके। वह चुपचाप अपने ससुर की ओर देखने लगे।

राजा भूपेंद्रकिशोर कहने लगे—"मुझे इस बात का क़तई रंज नहीं कि राजा साहब मेरी लड़की के ज़िंदा रहते दूसरा विवाह क्यों कर रहे हैं, और न मैं उसकी दाद-फ़रियाद के लिये ही आपकी सेवा में उपस्थित हुआ हूँ। मुझे तो सिर्फ़ इस आदर्श विवाह पर हर्ष प्रकट करना है, इसलिये उपस्थित हुआ हूँ। मैं चाहता हूँ कि ऐसे विवाह हमारे हिंदू-समाज में प्रचलित हों। और, सबसे ज़्यादा

ख़ुशी मुझे इस बात की है कि समाज के सामने सर्वप्रथम उदाहरण रखने का श्रेय हमारे दामाद को प्राप्त हुआ है, जो मेरे पुत्र के तुल्य हैं।"

लोगों ने हर्ष-ध्वनि प्रकट की।

राजा भूपेंद्रकिशोर फिर कहने लगे—"हाँ, मुझे इस विवाह से अतीव आनंद प्राप्त हुआ है। परंतु आपके मनोरंजन के लिये एक कहानी कहता हूँ, क्योंकि यह ऐसा ही अवसर है। पहले हमारे समाज में विवाह के अवसर पर एक दूसरे को भद्दी गालियाँ देते थे, लेकिन समय के प्रभाव से वह प्रथा उठ गई है, परंतु तो भी कुछ विनोद होना चाहिए। सबसे सरल विनोद की वस्तु कहानी होती है, क्योंकि उससे किसी का संबंध नहीं होता, परंतु फिर भी अर्थ-पूर्ण होती है। अगर आप लोग कहानी सुनना चाहें, तो एक विनोद-पूर्ण कहानी सुनाकर आपका मन बहलाने का यत्न करूँ, क्योंकि आप लोगों के मन-बहलाव का कोई साधन नहीं देखता। यह मेरे दामाद के आदर्श विवाह का शुभ अवसर है। मेरा कर्तव्य है, मैं इस कमी को पूरा करूँ।"

राजा भूपेंद्रकिशोर नवयुवक-मंडली का मंतव्य जानने के लिये ठहर गए।

राजा प्रकाशेंद्र के मेहमानों ने एक स्वर में कहा—"अवश्य कहिए। आप बड़े विनोदी मालूम होते हैं। हम सब लोग ध्यान-पूर्वक सुनेंगे। वास्तव में हमारे मनोरंजन का कोई सामान नहीं। न तो तवायफ़ है, न बाजा है, न रेडियो और न भजन-मंडली है।"

सब आमंत्रित सज्जन हँस पड़े।

राजा भूपेंद्रकिशोर कहने लगे—"एक नगर में एक नवयुवक था। उसका बाप बड़ा व्यवसायी था। अँगरेज़ी खाने के सामान की दूकान थी। उसके पिता ने एक विदेशिनी रमणी को

आश्रय दिया, या यों कहिए, उसका पालन-पोषण करने का भार उठा लिया । क्योंकि उसका पति, जो शराबी था, उसका पालन-पोषण नहीं कर सकता था । हाँ, ज़रा-सा मैं भूल गया, वह रमणी स्वयं विदेशिनी नहीं थी, बल्कि उसकी मा परियों के मुल्क यानी कोहक़ाफ़ की थी । यह रमणी एक अँगरेज़ से पैदा हुई थी, इसलिये यह भी बड़ी ख़ूबसूरत थी । इसके एक औलाद थी, वह भी एक लड़की थी, जो बहुत ही ख़ूबसूरत थी, और अपना सानी नहीं रखती थी । इस लड़की का नाम मैं 'बी' रक्खे लेता हूँ, जिससे आपको समझने में अड़चन न हो । हाँ, मिस 'बी' का पिता एक दिन अकस्मात् मर गया, और मिस 'बी' की मा बिलकुल निराश्रित हो गई । युवक जिसका नाम मैं मिस्टर 'ए' रखता हूँ, उसका पिता मिस 'बी' और उसकी मा का पालन-पोषण करने लगा । अकस्मात् एक दिन मिस्टर 'ए' के पिता भी काल-कवलित हो गए । गृहस्थी का सारा भार मिस्टर 'ए' पर आ पड़ा, क्योंकि मिस्टर 'ए' की माता का पहले ही देहांत हो चुका था । मिस्टर 'ए' ने अपने पिता के व्यवसाय को सँभाल तो लिया, लेकिन हज़रत परले दरजे के बेवक़ूफ़ थे । पढ़ाई-लिखाई कुछ की न थी, और दुनिया के रहन-सहन से, दग़ा-फ़रेब से बिलकुल बेगाना थे—गरज़ कि मिस्टर 'ए' निरे बुद्धू थे । मिस 'बी' की मा एक जहाँदीदा औरत थी, उसने मिस्टर 'ए' की बेवक़ूफ़ी से फ़ायदा उठाना चाहा । क़िस्सा कोताह यह कि मा और बेटी ने मिस्टर 'ए' को फाँस लिया, और मिस 'बी' की शादी मिस्टर 'ए' से कर दी गई । अब मिसेज़ 'ए' और उनकी मा मिस्टर 'ए' के घर में आकर रहने लगी, और उस बुद्धू के सारे माल पर क़ब्ज़ा कर लिया । मिसेज़ 'ए' भी परले दरजे की होशियार और चालाक थी, और अज़हद दरजे की ख़ूबसूरत होने के अलावा ज़रा कुछ शौक़ीन तबियत की थी । कॉलेज के

नौजवान छोकरों से उसे ख़ास दिलचस्पी थी, और कई लोगों से उसका नाजायज़ ताल्लुक़ भी हो चुका था। मैं पहले कह चुका हूँ कि मिस्टर 'ए' बिलकुल बुद्धू थे। मा-बेटी उन्हें दिन-भर और आधी रात तक दूकान में बिठाए रहतीं, और इधर घर पर मिसेज़ 'ए' अपने नए-नए दोस्तों के साथ ऐश करतीं। आख़िर कुछ दिनों बाद मिस्टर 'ए' को कुछ शक हुआ, और उनको थोड़ी ही सावधानी से पता चल गया कि उनका घर तो अच्छा-ख़ासा कॉलेज के छोकरों का अड्डा हो गया है। वह इसी हैस-बैस में थे कि एक दिन दोपहर को मिस्टर 'ए' को एक बेनाम का पत्र मिला, जिसमें लिखा था—'अगर तुम अपनी स्त्री की कलंक-कालिमा देखना चाहते हो, तो अमुक वक़्त, अमुक बाग़ की अमुक झाड़ी में मिलो।' मिस्टर 'ए' घबरा गए। भला आप ही कहिए, कौन न घबराएगा। मिस्टर 'ए' मोटर पर बैठकर, ख़ाली हाथ उस पत्र में लिखे वक़्त और पते पर चल दिए। उन्होंने अपनी मोटर एक जगह खड़ी कर दी, और ख़ुद आहिस्ता-आहिस्ता उस झाड़ी के पास चले। अभी झाड़ी के पास पहुँचे थे कि मिस्टर 'ए' को पिस्तौल चलाने का शब्द सुनाई पड़ा। मिस्टर 'ए' की घिग्घी बँध गई। इसी दरम्यान उनके पास झाड़ी के अंदर से किसी ने पिस्तौल फेंक दी। मिस्टर 'ए' उठाकर देखने लगे कि यह कौन-सी बला है। वह पिस्तौल देख रहे थे कि झाड़ी के अंदर से मिसेज़ 'ए' बरामद हुईं। उन्होंने फ़ौरन् मिस्टर 'ए' पर अपने प्यारे आशिक़ के मारने का इलज़ाम लगाया, पुलिस में पकड़ा देने की धमकी दी, और ख़ुद भी मिस्टर 'ए' के ख़िलाफ़ चश्मदीद शहादत देने को तैयार हुईं। मिस्टर 'ए' बहुत परेशान हुए, और मिसेज़ 'ए' की आरज़ू-मिन्नत करने लगे। मिसेज़ 'ए' ने साफ़-साफ़ कह दिया कि वह हरगिज़ मिस्टर 'ए' को न छोड़ेंगी, और पुलिस

में पकड़ाकर उन्हें फाँसी पर लटकावेंगी, क्योंकि उन्होंने उनके आशिक़ का ख़ून किया है, और जिससे ख़ून किया, वह पिस्तौल उनके हाथ में है, जो सुबूत में पेश होगी। मिसेज़ 'ए' तमाम आरज़ू-मिन्नत के बाद मिस्टर 'ए' को इस शर्त पर छोड़ने को तैयार हुईं कि मिस्टर 'ए' उसी वक़्त वैसे ही रूहपोश हो जायँ, और कभी भूलकर वापस आने का इरादा न करें। मिस्टर 'ए' ने इसे ग़नीमत समझा, और सर पर पैर रखकर, जिधर उनको दो आँखें ले गईं, अपनी जान की हिफ़ाज़त में भागे। हाँ, मैं यहाँ यह कह देना मुनासिब समझता हूँ कि दरअसल न तो मिस्टर 'ए' ने किसी को मारा था, और न कोई मरा ही था। यह मिसेज़ 'ए' की तीक्ष्ण बुद्धि से रचा हुआ कौशल था, जिससे वह अपने पति से छुटकारा पाना और मिस्टर 'ए' की लाखों रुपयों की जायदाद हड़प करना चाहती थीं। इसका केवल एक यही उपाय था, जिसमें कोई ख़तरा नहीं था। दूसरा उपाय यह था कि मिस्टर 'ए' को ज़हर देकर मारा जाय, मगर वह इतना निरापद नहीं था। अगर गुड़ देने से ही मर जाय, तो ज़हर क्यों दें। इसीलिये मिसेज़ 'ए' ने यह कौशल रचा। मिस्टर 'ए' बुद्धू तो थे ही, उस जाल में फँस गए। अगर ज़रा बढ़कर वह उस झाड़ी के अंदर देखते, तो उन्हें मिसेज़ 'ए' का आशिक़ या तो मिलता ही नहीं, और अगर मिलता, तो ज़िंदा मिलता। लेकिन मिस्टर 'ए' के इतनी बुद्धि या उपज कहाँ थी? मिस्टर 'ए' अपनी मोटर के लिये लपके। मगर उस पर मिसेज़ 'ए' ने पहले ही क़ब्ज़ा कर लिया था। मोटर पर मिसेज़ 'ए' बैठी थीं, और स्टार्ट कर रही थीं। मिस्टर 'ए' को आते देखकर मिसेज़ 'ए' ने कहा—'मोटर रहते तुम पकड़ जाओगे, इसलिये मैं मोटर लिए जाती हूँ, और अगर फिर कभी तुम मुझको दिखाई दिए, तो मैं तुम्हारे साथ कोई मुरौवत

नहीं करूँगी, और पुलिस में पकड़ाकर अपनी चश्मदीद शहादत देकर फाँसी पर लटकवा दूँगी।' मिस्टर 'ए' जान बचाने की फ़िक्र में भागे, और मिसेज़ 'ए' मोटर पर अपने घर रवाना हुईं। मिस्टर 'ए' की जेब बिलकुल ख़ाली थी, लेकिन जान तो प्यारी होती है, किसी तरह आप बंबई पहुँच गए, और जहाज़ की नौकरी में भरती हो गए, इस उम्मीद पर कि मुल्क को छोड़ दो, ताकि फिर पकड़े जाने का डर न रहे। लेकिन अभी मिस्टर 'ए' की मुसीबतों की यह इब्तिदा थी, प्रथम परिच्छेद था, वह जहाज़ मुल्क इटली के पास टकरा गया, और डूब गया, मगर किसी तरह सिर्फ़ मिस्टर 'ए' बच गए। उन्होंने कई दिन तो मल्लाहों की झोपड़ियों में काटे, मगर वहाँ से भी निकाले गए, और रोम-नगर के खँडहरों में छिप-छिपकर और भीख माँगकर गुज़र करने लगे। इस तरह उनको चार वर्ष बीत गए। आख़िर एक दिन उनकी मुलाक़ात एक हिंदुस्थानी राजा की रानी से हो गई, जिसने उनको अपने आश्रय में ले लिया। मैं इस हिंदुस्थानी राजा की रानी का नाम रखता हूँ 'एम'।"

यह कहकर वह कुछ देर के लिये ठहर गए। मेहमानों ने कहा—"बड़ी मनोरंजक कहानी है। कहिए, कहिए, ठहरिए नहीं।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने मिस ट्रैवीलियन की ओर छिपी दृष्टि से देखा—उसका चेहरा सफ़ेद था, और आँखें निस्तेज थीं। वह नीची दृष्टि किए अपने मन का भय छिपा रही थी। अब भी उसको आशा थी कि सारा भेद न खुलेगा।

राजा भूपेंद्रकिशोर फिर कहने लगे—"मिसेज़ 'ए' ने सब जायदाद पर क़ब्ज़ा कर लिया, और दूकान बेचकर, सब जायदाद की नक़द क़ीमत कर कई साल तक दुनिया की हवा खाती रहीं, और दुनियावी फ़रेबों से होशियार होती रहीं। एक दिन वह एक बड़े शहर में प्रकट हुईं। इस मर्तबे उनका नया जामा था, और एक

दूसरा ही खेल था। उन्होंने समाज की सेवा करने का ढोंग अख़्त्यार किया, और जैसे लोग दूकान जमाने के लिये अपनी दवाएँ मुफ़्त बाँटते हैं, उसी तरह मिसेज़ 'ए' ने भी कुछ थोड़ा-सा रुपया ख़ैरात कर हिंदुस्थान-जैसे ग़रीब मुल्क में नाम कमा लिया। एक आली-शान कोठी ख़रीद ली, और एक क्लब क़ायम किया। यह मैं पहले कह चुका हूँ कि मिसेज़ 'ए' निहायत हसीन थीं, उनका हुस्न दिन-ब दिन तरक़्क़ी पर था। वह शहर अमीरों की विलासिता या ऐयाशी का केंद्र था। नवयुवक मिस्ल परवाने के उनके चारों ओर इकट्ठा होने लगे। उन्होंने उनको उल्लू बनाकर रुपया ऐंठना शुरू किया, और फिर साथ ही समाज-सेवा का भी रंग जमाया। समाज-सेवा के बहाने वह घर-घर जाने लगीं, और अमीर घरों की बहू-बेटियों के दिल में आज़ादी के ख़याल भरने लगीं। इसमें नौजवान पढ़ी-लिखी कॉलेज की लड़कियों ने बड़ी सरगर्मी और जोश से साथ दिया। नवयुवक-दल तो पहले से ही हाथ में था—उनको उनसे मिलाने का सारा खेल तैयार कर लिया। उठती जवानी में परिणाम का तो ख़याल रहता नहीं, वे छिपे-छिपे ऐश करने लगे। उनमें से चुने-चुने अमीर हमारी मिसेज़ 'ए' के ख़ास कृपा-पात्र बने।

"ऐसे ही ख़ास कृपा-पात्रों में एक ख़ास स्थान एक राजा साहब का था, जिनके वालिद करोड़ों की जायदाद और नक़द छोड़कर फ़ौत हो गए थे। राजा साहब का नाम मैं थोड़ी देर के लिये मिस्टर 'पी' रक्खे लेता हूँ। मिस्टर 'पी' ने अपना लाखों रुपए का माल मिसेज़ 'ए' को भेंट कर दिया। जब इसकी ख़बर मिस्टर 'पी' की स्त्री को हुई, तो उसने वावैला मचाया, जिस पर उसे हटा दिया गया, या यों कहिए, मिसेज़ 'पी' ख़ुद-बख़ुद चली गई। मिसेज़ 'ए' के रास्ते का काँटा दूर हो गया, और वह खुलकर मिस्टर 'पी' के साथ ऐश

करने लगीं। मिस्टर 'पी' उसकी चालों में फँस गए। पहले तो उन्होंने मिसेज़ 'ए' की सहायता से कई कुल-कामिनियों का सर्व-नाश किया, और बाद में वह मिसेज़ 'ए' से शादी करने के लिये आमदा हो गए। यह मैं पहले कह चुका हूँ कि मिसेज़ 'ए' ने इसी दरम्यान समाज-सेवा, देश-सेवा और नारी-जाति की सेवा, गरज़ कि सारी सेवाओं का श्रेय प्राप्त कर लिया था। जब मिस्टर 'पी' की दूसरी शादी मिसेज़ 'ए' के साथ तय होने का समाचार फैला, तो मिस्टर 'पी' के रुपयों के ज़ोर से उसे आदर्श विवाह कहकर प्रसिद्ध किया गया। मेरे नौजवान दोस्तो, यही मेरा क़िस्सा है।"

राजा प्रकाशेंद्र के आमंत्रित मेहमानों में एक हलचल पैदा हो गई। वे एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

राजा भूपेंद्रकिशोर कहने लगे—"श्रीमानो, अगर आप सचमुच मिस्टर 'ए' को—जो मिसेज़ 'ए' द्वारा दर-दर मारा फिरा, अपने मुसीबत के दिन गुज़ारता फिरा, जिसकी जायदाद पर उसकी औरत ने अपनी ऐयाशी के लिये फ़रेब से क़ब्ज़ा किया—देखना चाहते हैं, तो मैं उसे आपके सामने पेश कर सकता हूँ। देखिए, वह अभागा नवयुवक यह है।" यह कहकर उन्होंने डेविड मायादास को अपने सामने खड़ा कर, उसकी नक़ली दाढ़ी उखाड़कर फेंक दी, और सिर से टोपी उतार ली।

डेविड तीक्ष्ण दृष्टि से मिस ट्रैवीलियन की ओर देखने लगा।

मिस ट्रैवीलियन उठ खड़ी हुई, और कपड़ों के अंदर से एक छोटी, ख़ूबसूरत पिस्तौल निकालकर, राजा भूपेंद्रकिशोर की ओर लक्ष्य करके घोड़ा दबा दिया। राजा भूपेंद्रकिशोर पहले से ही तैयार थे। वह नीचे फ़र्श पर मेज़ की आड़ में बैठ गए। गोली पास ही एक मेहमान के दाहने हाथ में लगी। वह चीख़कर गिर गया। मिस ट्रैवीलियन दूसरी बार गोली चलानेवाली थी कि राजा प्रकाशेंद्र ने

उसे पकड़ लिया, और रिवाल्वर छीनकर दूर फेंक दिया। राजा भूपेंद्र-किशोर ने वह उठा लिया, और कहा—"और अगर आप मिसेज़ 'ए' को देखना चाहते हैं, तो मिसेज़ 'ए' यह हैं, जिन्होंने अभी-अभी पिस्तौल चलाकर मेरी जान लेने की कोशिश में इस नवयुवक को आहत किया है। मिस्टर 'ए' का असली नाम डेविड मायादास है, यह ईसाई हैं, और मिसेज़ 'ए' का असली नाम 'एलिनर रोज़' है, लेकिन आजकल लखनऊ में वह मिस ट्रैवीलियन के नाम से मशहूर हैं।"

मिस ट्रैवीलियन बेहोश होकर राजा प्रकाशेंद्र के हाथ पर गिर पड़ी। चारो ओर एक भयंकर कोलाहल छा गया। कोई-कोई मिस ट्रैवीलियन की सेवा-सुश्रूषा में लग गए, और कोई-कोई उस आहत नवयुवक ताल्लुक़ेदार को होश में लाने का प्रयत्न करने लगे।

इसी समय एक अँगरेज़ सारजेंट आठ पुलिसवालों को लेकर आया, और कहा—"मैं राजा प्रकाशेंद्रसिंह से मिलना चाहता हूँ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"मेरा नाम प्रकाशेंद्र है, बोलिए, क्या काम है?"

सारजेंट ने कहा—"मिसेज़ डेविड मायादास उर्फ़ एलिनर रोज़ उर्फ़ मिस ट्रैवीलियन क्या यहाँ मौजूद हैं? उनको दग़ा के मुक़दमे में गिरफ़्तार करने का हुक्म है।"

राजा भूपेंद्रकिशोर ने आगे बढ़कर कहा—"इस नाम की औरत पर एक और अभियोग है, जो उसने इतने सज्जनों के सामने किया है, यानी मेरी जान लेने की कोशिश में राजा जगतसिंह को गोली से आहत किया है। वह पिस्तौल यह है, जिससे मिस ट्रैवीलियन ने गोली चलाई, जिसकी चश्मदीद शहादत में इतने आदमी मौजूद हैं। आप इनके नाम लिखकर इब्तिदाई तफ़तीश कर लें।" यह कहकर उन्होंने वह पिस्तौल पेश कर दी।

पुलिस-सारजेंट ने उसे मेज़ पर रख दिया, और पुलिसवालों को इशारा किया। लाल पगड़ी के जवान सब दरवाज़ों पर खड़े हो गए।

राजा भूपेंद्रकिशोर ने अपने नाम का कार्ड देते हुए कहा—"यह मेरे नाम का कार्ड है, आप जब चाहें मिल सकते हैं, और मेरा बयान क़लमबंद कर सकते हैं। मैं गवर्नमेंट-हाउस में ठहरा हूँ।"

सारजेंट ने कार्ड पर नाम पढ़कर सलाम किया, और कहा—"आप शौक़ से जा सकते हैं। अब मेरा काम है। आपका काम ख़तम हो गया, आप तशरीफ़ ले जायँ। आपके बारे में 'हिज़ एक्सेलेंसी' का ख़ास हुक्म है।"

सारजेंट ने फिर सलाम किया, और राजा भूपेंद्रकिशोर नवयुवक ताल्लुक़ेदारों को हैरत में डालकर, डेविड मायादास के साथ, कमरे से बाहर हो गए। पुलिस के जवान अदब से खड़े हो गए, उनको सैल्यूट दिया। राजा भूपेंद्रकिशोर और डेविड के मुख पर विजय की मुसकान थी।

उधर पुलिस अपनी तफ़तीश में लग गई।

मनोरमा ने हँसते हुए कहा—"अम्मा, तुमको दुख देने के लिये मैं फिर अच्छी हो गई।"

राजेश्वरी ने उद्दीप्त मुख से कहा—"ईश्वर करे, तुम मुझे जन्म-भर दुख दो, लेकिन ऐसा दुख फिर कभी देने का संकल्प न करना, जैसा अभी इन थोड़े दिनों में दिया है। मनी, अगर ऐसा फिर कभी करोगी, तो मैं सचमुच मर जाऊँगी।"

मनोरमा ने उसके गले से लिपटते हुए कहा—"अम्मा, जब तुमने मुझे मरने नहीं दिया, तब मैं कैसे तुम्हें मरने दूँगी।"

राजेश्वरी ने उस खोई हुई निधि को हृदय से लगाते हुए कहा—"क्यों मनी, कह तो, भला जीत किसकी हुई ?"

मनोरमा ने मुस्किराती हुई आँखों से उत्तर दिया—"मेरी।"

राजेश्वरी ने हँसकर उसे अपने हृदय से लगाते हुए कहा—"लेकिन क्या तू जानती है कि विजय तो संतान की होती है, परंतु विजय-श्री उसकी मा को मिलती है।"

इसी समय बाहर मोटर के हार्न का तीव्र स्वर सुनाई दिया। राजेश्वरी ने मनोरमा को अलग करते हुए कहा—"देखूँ, कौन आया है।"

इसी समय राजेंद्रप्रसाद ने आकर कहा—"अम्मा, आइए, रानी किशोरकेशरी आपसे मिलने आई हैं। आप तो इनको जानती हैं, जब मैं इँगलैंड जा रहा था, तब रानी मायावती ने आपका परिचय कराया था। यह रानी मायावती की मा हैं।"

रानी किशोरकेसरी भी हँसती हुई वहाँ आ गईं। आते ही उन्होंने कहा—"क्यों बहन, इतनी जल्दी भूल गईं ?"

राजेश्वरी ने उनकी अभ्यर्थना करते हुए कहा—"यह भी मुमकिन है कि आपको भूल जाऊँ ! आपने हमारे राजेंद्र बाबू को जिस तरह रक्खा है, उसका एहसान भूलने की वस्तु नहीं।"

इसी समय मनोरमा ने रानी किशोरकेसरी को प्रणाम किया।

रानी किशोरकेसरी ने उसके सिर को सूँघते हुए कहा—"हमारी पुत्र-वधू यही हैं, जिन्होंने बेचारे राजेंद्र को इतना कष्ट दिया था।"

राजेश्वरी ने हँसते हुए कहा—"हाँ, ईश्वर को धन्यवाद है कि उसका अंत मंगलमय हुआ !"

रानी किशोरकेसरी ने हँसते हुए कहा—"लेकिन यह तो कहो, विजय किसकी हुई ?"

राजेश्वरी ने मुस्किराकर कहा—"विजय आपकी हुई।"

रानी किशोरकेसरी ने चकित होकर पूछा—"मेरी कैसे ?"

राजेश्वरी ने जवाब दिया—"आप राजेंद्र बाबू की मा हैं। विजय तो संतान को प्राप्त होती है, लेकिन उसका सौख्य उसकी मा को मिलता है।"

सब लोग हँसने लगे।

रानी किशोरकेसरी ने प्रसन्न होकर कहा—"जैसा आपको सुना था, वैसा ही पाया। मैं समझती हूँ, वास्तविक विजय का आनंद तो आपको ही प्राप्त है।"

इसी समय एक दूसरी मोटर आकर खड़ी हुई, और उससे राजा प्रकाशेंद्र रानी मायावती के साथ उतरे।

रानी मायावती ने राजेंद्रप्रसाद के पास आकर विनीत स्वर में कहा—"भैया, आज मैं आपसे क्षमा की भीख माँगने आई हूँ।

मेरा साहस नहीं पड़ता कि मैं क्षमा की याचना करूँ, परंतु क्या करूँ।"

राजा प्रकाशेंद्र ने आगे बढ़कर कहा—"भाई, मैंने जो कुछ अपराध किया है, वह जानकर नहीं किया। मैं पशु था, और अब भी हूँ, लेकिन यह अपराध मैंने अपने साबित होश-हवास में नहीं किया। अगर आपको विश्वास न हो, तो इस दवा की दो बूँद पीकर स्वयं देख लें। यह उस पिशाचिनी का सबसे प्रभावशाली अस्त्र था, जिसके द्वारा वह शैतान की भाँति विजय प्राप्त करती थी। इस दवा के पीने के बाद मनुष्य मा और बहन की तमीज़ नहीं रख सकता। उस पिशाचिनी ने मनोरमा को भी यही दवा पिलाकर बेहोश किया, और फिर मुझे भी पिलाकर यह पाप-कांड घटित कराया। इसमें उसका क्या उद्देश्य था, मैं नहीं जानता। शायद आपने उसके प्रेम को ठुकरा दिया था, इसी से वह आपसे और मनोरमा से इतनी जली हुई थी। मैं अपना अपराध स्वीकार करता हूँ। अगर आप मुझे दंड देना चाहें, तो मैं सहर्ष भोगने को तैयार हूँ, परंतु इतना अवश्य कहूँगा कि मैं वास्तव में निरप-राध हूँ।"

रानी मायावती की गोद में उनका पुत्र चंद्रकिशोर राजेंद्र को देखकर किलक रहा था, और उनकी गोद में जाने के लिये अपना पूरा बल-प्रयोग कर रानी मायावती को उद्वेलित कर रहा था। राजेंद्र उसे गोद में लेकर प्यार करने लगे। अबोध शिशु उनके गले से चिपट गया, मानो अपने पिता के अपराध के क्षमा की प्रार्थना करने लगा।

राजेंद्रप्रसाद ने अपने हृदय के भाव को ज़ब्त करते हुए कहा—"राजा साहब, मैं क्या क्षमा करूँ, जिसके आप अपराधी हैं, अगर वह आपको माफ़ कर दें, तो मुझे कोई आपत्ति नहीं।"

रानी मायावती ने नतजानु होकर, आँचल पसारकर कहा—"भैया, मैं तुम्हारी बहन अपने पुत्र के कल्याण के लिये तुमसे क्षमा चाहती हूँ। मैं जानती हूँ, बिना क्षमा के हमारा कल्याण नहीं होगा।"

राजेंद्रप्रसाद ने रानी मायावती को सस्नेह उठाते हुए कहा—"बहन, तुम्हारे लिये अदेय कुछ नहीं है। राजा साहब, मैं अपनी ओर से तुम्हें हृदय से क्षमा करता हूँ।" यह कहकर वह सस्मित शिशु का मुख चूमकर अपने हृदय के आवेग को शांत करने का उपक्रम करने लगे।

इसी समय मनोरमा उस कमरे में आई। उसने रानी मायावती को देखकर प्रणाम किया, और कहने लगी—"वाह, आप भी आई हैं, लेकिन······" कहते-कहते राजा प्रकाशेंद्र को देखकर वह रुक गई। उसकी आँखों से ज्वाला निकलने लगी।

राजा प्रकाशेंद्र ने आगे बढ़कर, नतजानु होकर कहा—"देवी, आप मुझे क्षमा करें। आप स्वयं जानती हैं कि हम लोग कोई दवा पिलाकर बेहोश कर दिए गए थे, और मैंने अनजान में अपराध किया, मगर फिर भी नतजानु होकर आपसे क्षमा-प्रार्थना करता हूँ। मैं बिलकुल असहाय था।"

मनोरमा घृणा से मुख फेरकर जाने लगी।

रानी मायावती ने उसे पकड़कर कहा—"भाभी, मेरी भी प्रार्थना सुन लो। मैं इस शिशु के साथ तुम्हारी क्षमा के लिये प्रार्थना करती हूँ, अपने सुहाग की भीख माँगती हूँ, क्योंकि तुम्हारी-जैसी देवी के कोप से मेरा सब कुछ नष्ट हो जायगा। क्या तुम अपनी ननँद की माँग का सिंदूर अपने हाथ से पोंछ डालोगी?" कहते-कहते रानी मायावती की आँखों से अश्रु-धारा मनोरमा के पैर प्रक्षालन करने के लिये वेग से अग्रसर हुई।

कुँवर चंद्रकिशोर भी उसके पैरों से लिपटकर खड़े होने का प्रयत्न करने लगा। मनोरमा की आँखों से आहत अभिमान और अपमान गलकर बहने लगा। उसने रानी मायावती को उठाया, और चंद्रकिशोर को गोद में लेकर कहा—"भला, कौन भाभी अपनी ननँद का अकल्याण चाहेगी। मैंने तो कभी का क्षमा कर दिया है।"

राजा प्रकाशेंद्र ने आकुल स्वर में कहा—"देवी, मैं मानता हूँ कि मैं क्षमा का अधिकारी नहीं हूँ, लेकिन मेरा अपराध क्षमा करो। यदि क्षमा नहीं कर सकतीं, तो मुझे दंड दो। मैं ईश्वरीय प्रतिशोध से डरता हूँ।" यह कहकर वह पुनः नतजानु हो गए।

मनोरमा ने उन्हें उठाते हुए कहा—"पत्नी की इज़्ज़त-आबरू की रक्षा का अधिकारी उसका पति होता है। आप उनसे क्षमा-याचना करें। अगर वह क्षमा कर देंगे, तो मैं यह घटना भूलने की कोशिश करूँगी।"

रानी मायावती ने कहा—"भैया ने तो क्षमा कर दिया है, अब सिर्फ़ तुम्हारे मुख से मैं वह शब्द सुनना चाहती हूँ।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"कौन भाई अपनी बहन का अकल्याण चाहेगा, मैंने राजा साहब को क्षमा कर दिया। तुम भी इसे भूल जाने का प्रयत्न करो। इस प्रायश्चित्त से तुम्हारे शरीर की अपवित्रता शुद्ध हो गई, जो स्वर्ण से भी अधिक देदीप्यमान है।"

मनोरमा ने चंद्रकिशोर का मुख चूमते हुए कहा—"बहन, मैं तुम्हारे सुहाग की निष्कपट हृदय से प्रार्थना करती हूँ। मंगलमय भगवान् की कृपा से जब तक पृथ्वी पर गंगा-यमुना की धार बहे, तब तक तुम्हारा सुहाग अटल-अचल हो।"

रानी मायावती ने उसे हृदय से लगाते हुए कहा—"भाभी का आशीर्वाद मैं नत-मस्तक होकर ग्रहण करती हूँ।"

इसी समय एक तीसरी मोटर बाहर पोर्टिको में आकर खड़ी हुई, और उससे जस्टिस सर रामप्रसाद अपने परिवार के साथ उतरे। जस्टिस सर रामप्रसाद तो बाबू राधारमण से मिलने के लिये चले गए, और डॉक्टर आनंदीप्रसाद तथा कुसुमलता घर के अंदर प्रविष्ट हुए। कुसुमलता के हाथ में एक सोने की तश्तरी थी, जिसमें एक केसरिया धागा, कुंकुम, केसर और अक्षत चावल थे।

मनोरमा ने आगे बढ़कर कहा—"अरे, आज तो भगवान् सचमुच हम लोगों पर प्रसन्न हुए हैं। अरे, कुसुम और डॉक्टर साहब तशरीफ़ लाए हैं!" यह कहकर वह प्रसन्नता के साथ कुसुमलता से लिपट गई।

कुसुमलता ने अपने हाथ की तश्तरी मेज़ पर रखकर रानी मायावती, राजा प्रकाशेंद्र और राजेंद्रप्रसाद को प्रणाम किया।

डॉक्टर आनंदीप्रसाद, राजा प्रकाशेंद्र और राजेंद्रप्रसाद एक दूसरे से हाथ मिलाने लगे।

मनोरमा ने हँसकर कहा—"आज बहुत दिनों में नहीं, कई महीनों में आपके दर्शन हुए। मैं तो समझती थी कि कुसुम हम लोगों को भूल गई।"

कुसुमलता ने मुस्किराकर कहा—"यही हमने भी अनुमान किया था। मैं समझती थी कि आपने मिस्टर वर्मा के वियोग में अज्ञातवास किया है!"

सब लोग हँसने लगे।

रानी मायावती ने हँसते हुए कहा—"लेकिन इस अज्ञातवास में यह शर्त नहीं थी कि अगर बीच में अज्ञातवास का भंडाफोड़ हो जायगा, तो दुबारा वनवास या इँगलैंड-प्रवास करना पड़ेगा।"

सबके हास्य की तुमुल-ध्वनि आकाश का परिहास करने लगी।

मनोरमा ने उस सोने की तश्तरी को देखते हुए कहा—"कुसुम, यह क्या सौगात लाई हो। तुम हमेशा से मेरे लिये अनबूझ पहेली रही हो; और डॉक्टर साहब के सहवाससे भी कोई विशेष उन्नति तुममें नहीं हुई।"

कुसुमलता ने मुस्किराकर कहा—"अब तुमको यह शिकायत न रहेगी। मैं आज ही उसका अंत कर दूँगी।"

फिर राजेंद्रप्रसाद से कहा—"क्या आप थोड़ी देर के लिये इस कुर्सी पर विराजेंगे।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"हाँ-हाँ, मुझे क्षमा कीजिएगा, मैं, ऐसा ख़ुशी में मग्न हो गया था कि आप लोगों से बैठने को भी न कहा। आइए, सब लोग विराजिए।"

सबके बैठ जाने पर कुसुमलता ने राजेंद्रप्रसाद के पास जाकर कहा—"आज मैं आपको अपना धर्मभाई बनाने के लिये आई हूँ। मेरे कोई भाई नहीं है, भाई के बिना बहन के जीवन में एक बड़ी कमी रहती है, आप उस कमी को पूरी करने का भार उठावें।"

राजेंद्रप्रसाद ने प्रसन्न होकर कहा—"इससे अधिक और मेरा क्या सौभाग्य होगा। बहन कुसुमलता, जब तुमको भाई की आवश्यकता हो, तो मेरा स्मरण करना, मैं वह कमी पूरी करूँगा।"

यह कहकर उन्होंने अपना हाथ आगे बढ़ा दिया। कुसुमलता ने तिलक कर, वह राखी उनके हाथ में बाँधकर प्रणाम किया।

राजेंद्रप्रसाद ने उसके सिर को सूँघकर आशीर्वाद दिया।

रानी मायावती ने कहा—"जिसे व्यवहार में तो मैं बहुत दिनों से ला रही हूँ, लेकिन भाई को सूत्र से कभी नहीं बाँधा, आज मेरे मन में आता है कि मैं भी बहन कुसुमलता की भाँति वह हविस पूरी कर लूँ। राजेंद्र भैया, लाओ अपना हाथ, अब तो कभी

बहकने का नाम नहीं लोगे। इस जन्म-भर तुमको अपने स्नेह-पाश में आबद्ध रक्खूँगी—आगे की भगवान् जाने।"

राजेंद्रप्रसाद ने हाथ बढ़ाकर कहा—"इस पवित्र संबंध की कौन हिंदू-युवक अवहेलना करेगा। हिंदू ही क्यों, मुसलमान भी इसकी अवहेलना नहीं कर सके। इतिहास साक्षी है।"

रानी मायावती ने तिलक कर वह भाई बनाने का पवित्र सूत्र उनके हाथ में बाँध दिया।

कुसुमलता ने मुस्किराते हुए मनोरमा से पूछा—"भभी, अब कहो, विजय किसकी हुई?"

मनोरमा ने कहा—"ननँदजी, अब तो विजय तुम्हारी ही है।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"नहीं, विजय तो रानी मायावती की ही हुई है। आज के अख़बार में सब समाचार था। मिस टू वीलियन का भयानक भंडा फोड़ हुआ, और उसकी कहानी तो एक विचित्र घटना-वैचित्र्य से अलंकृत उपन्यास के तुल्य ही प्रतीत हुई। रानी मायावती की जो कुछ प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।"

राजेंद्रप्रसाद ने कहा—"हमारा हिंदू-समाज बहुत भोला है, इसे ठगना कोई मुश्किल नहीं। जब तक हिंदू-समाज अपने पैरों खड़े होने का प्रयत्न नहीं करेगा, तब तक इसका उद्धार न होगा। जात्यभिमान रखते हुए हमें संसार के साथ चलने के लिये संस्कृत होना पड़ेगा।"

डॉक्टर आनंदीप्रसाद ने कहा—"बेशक, धर्म का संबंध विश्वास से है। धर्म कोई खो जाने की वस्तु नहीं है, और न भ्रष्ट होने की। आचार, व्यवहार और रीति-रस्म को वास्तविक धर्म से अलाहिदा करना पड़ेगा।"

राजा प्रकाशेंद्र ने कहा—"हमें परंपरा के अंध-विश्वास को

मिटाकर तर्क-पूर्ण, संस्कृत-धर्म का प्रचार करना आवश्यक है, जिसमें सब समाविष्ट हो जाय, क्योंकि हिंदू-धर्म एक जगद्व्यापी धर्म है।"

कुसुमलता ने कहा—"हिंदू-धर्म स्त्रियों को पराधीन रहना नहीं सिखाता। स्त्रियों का स्थान हिंदू-धर्म में सर्वोपरि है।"

रानी मायावती ने कहा—"हिंदू नारी स्नेह, प्रेम और वात्सल्य की प्रतिमा है। हिंदू-धर्म में उच्चता और नीचता, स्वतंत्रता और गुलामी का प्रश्न नहीं है। समत्व का स्पष्टीकरण तो इसी धर्म में मिलेगा। हाँ, वह स्पष्टीकरण समय के साथ अस्पष्ट ज़रूर हो गया, जिसे स्पष्ट करने की आवश्यकता है।"

मनोरमा ने कहा—"त्याग, पवित्रता, तपस्या और क्षमा का उच्चतम रूप हिंदू-धर्म में ही मिलेगा। हिंदू नारी पिता के लिये, पति के लिये और संतान के लिये सब कुछ त्याग कर सकती है। हिंदू पति अपनी प्रियतमा के लिये हँसते-हँसते प्राण विसर्जन कर देगा। हिंदू पुत्र अपने माता-पिता को संतुष्ट करने के लिये त्रैलोक्य के वैभव पर लात मार देगा। हिंदू माता अपनी संतान के लिये एक मर्तबे काल से भी टक्कर लेगी। हिंदू पिता अपनी संतान के लिये भूखों मर जायगा। ऐसा त्याग, ऐसी पवित्रता और ऐसी तपस्या कहाँ मिलेगी? तभी तो कहते हैं, ईश्वर का आशीर्वाद हिंदू-धर्म है। हिंदू-धर्म की विजय ईश्वरत्व की विजय है।"

सब लोग चकित होकर मनोरमा के उद्दीप्त मुख की ओर देखने लगे। उसकी आँखों से विजय-श्री निकलकर सबको चकाचौंध करने लगी।